न. क. क्रूप्स्काया

शिक्षा

चुने हुए लेख एवं भाषण

विदेशी भाषा प्रकाशन गृह
मास्को १९५९

अनुवादक : डॉ० नारायणदास खन्ना

Н. К. Крупская

О ВОСПИТАНИИ.

ИЗБРАННЫЕ СТАТЬИ И РЕЧИ

विषय-सूची

युवक संघटन

स्कूल और पोलीटेक्निकल शिक्षा

स्वाध्याय

मेरा जीवन

अतीत-काल

मेरा जन्म १८६९ में हुआ। मेरे माता-पिता कुलीन घराने के थे, फिर भी उनके न घर था, न ज़मीन-जायदाद। अपने विवाह के बाद तो उन्हें भोजन का सामान खरीदने तक के लिए प्रायः क़र्ज़ लेना पड़ता था।

मां अनाथ थीं। वज़ीफ़े से उनकी पढ़ाई-लिखाई चलती थी। इन्स्टीट्यूट की पढ़ाई समाप्त होते ही वे अध्यापिका बन गईं।

पिता

मेरे पिता के माता-पिता की मृत्यु बहुत पहले, उनके बालकाल में ही, हो चुकी थी। उनकी शिक्षा-दीक्षा पहले एक मिलिटरी स्कूल में और फिर मिलिटरी कालेज में हुई थी। यहीं से उन्होंने अफ़सरी की स्नातकी परीक्षा पास की थी। वे दिन थे जब अफ़सरों में असन्तोष की आग भड़का करती थी। पिता पढ़ते बहुत थे। वे नास्तिक थे और पश्चिम में सामाजिक आन्दोलनों के बारे में बहुत कुछ जानते थे। जब तक वे ज़िन्दा रहे हमारा घर क्रान्तिकारियों का अड्डा बना रहा (पहले निहिलिस्ट आये, फिर नरोदवादी* और उसके बाद 'नरोदनया वोल्या' के सदस्य)। मैं स्वयं नहीं जानती कि क्रान्तिकारी आन्दोलन में पिता खुद भाग लेते थे या नहीं—जब पिता की मृत्यु हुई उस समय मैं केवल १४ वर्ष की थी। उन दिनों

*रूस के एक नरोदवादी (लोकवादी) आन्दोलन के सदस्य।—सं०

के क्रान्तिकारी कार्यों को अत्यधिक गुप्त रखना पड़ता और सच्चे क्रान्तिकारी अपने कामों के बारे में मुंह तक न खोलते। जब कभी घर में इस विषय की चर्चा शुरू होने लगती तो मुझे किसी काम से खिसका दिया जाता। फिर भी बहुत-सी बातें मेरे कानों में पड़ ही जातीं। बस इन्हीं कारणों से मैं क्रान्तिकारियों से सहानुभूति रखने लगी थी।

पिता कुछ भावुक क़िस्म के व्यक्ति थे। वे अन्याय नहीं सह सकते थे। तरुण अफ़सर के रूप में उन्हें, १८६३ में, पोलैण्ड का उपद्रव शान्त करने के लिए वहां जाना पड़ा था। लेकिन वे एक ख़राब अफ़सर थे: उन्होंने पोलिश क़ैदियों को मुक्त किया, निकल भागने में उनकी सहायता की और वह सब कुछ किया जिससे पोलिश लोगों पर ज़ारशाही सेना की विजय का कम से कम असर पड़ सकता था। कारण स्पष्ट था। पोलिश जनता रूसी ज़ारशाही के असह्य दमन-चक्र के ख़िलाफ़ जिहाद कर रही थी। इस सैनिक कार्यवाही के पश्चात् पिता मिलिटरी क़ानून-अकादमी में भरती हुए, वहां की पढ़ाई पूरी की और ज़िला अफ़सर के रूप में पोलैंड चले गये। उनकी हमेशा यही धारणा बनी रही कि सिर्फ़ ईमानदार लोग ही वहां भेजे जायं। जिस समय वे ज़िले में पहुंचे उस समय वहां दमन-चक्र ज़ोरों पर था। यहूदियों को घसीट घसीट कर चौराहों पर लाया जाता और सारे बाज़ार उनकी दाढ़ी मूंछें काट ली जातीं। पोलिशों को उनके क़ब्रिस्तानों के इर्द-गिर्द बाड़े बनाने की अनुमति न थी। वहां सूअर छोड़ दिये गये थे जो उनकी क़ब्रों को अपनी नाकों से खोदा करते थे। पिता ने ये सारी बातें बन्द कर दीं! उन्होंने वहां एक आदर्श अस्पताल की स्थापना की और घूस लेने वालों को दंड दिया। फलतः एक ओर वे सशस्त्र पुलिस और रूसी अधिकारियों की आंख के कांटे बने तो दूसरी ओर जनता की, खासकर पोलिशों और ज़रूरतमन्द यहूदियों की, आंख के तारे।

शीघ्र ही पिता पर शिकायतों की बौछारें की जाने लगीं। परन्तु किसी भी शिकायत-पत्र पर लेखक का नाम न होता। उन्हें राजनीतिक

संदिग्ध व्यक्ति घोषित किया गया, बिना कारण बताये नौकरी से बरख़ास्त किया गया और उनपर मुक़दमा चलाया गया। (उनपर २२ जुर्म थे: पोलिश भाषा बोलना, मज़ूरका नाच नाचना, ज़ार के जन्मदिन पर अपने दफ़्तर में जगमगाहट न करना, गिरजे जाने से इनकार करना, आदि।) फ़ैसले में उन्हें सरकारी दफ़्तरों में काम करने की मनाही कर दी गई। यह मुक़दमा दस वर्ष तक खिंचता रहा। अन्त में पुनर्विलोकन के लिए उसे सीनेट भेजा गया जिसने पिता को दोषमुक्त घोषित कर दिया। किन्तु ये आदेश उनकी मृत्यु से कुछ ही पहले प्राप्त हुए थे।

मुझे निरंकुशता से नफ़रत कैसे हुई

अपने बचपन में ही मुझे राष्ट्रीय दमन से घृणा हो गई थी क्योंकि मैंने देखा था कि यहूदी, पोल तथा दूसरे लोग किसी भी दशा में रूसियों से ख़राब न थे। यही कारण था कि जब मैं बड़ी हुई तो तन-मन-धन से रूसी कम्यूनिस्ट पार्टी के कामों में जुट गई। पार्टी ने राष्ट्रों के उस अधिकार की घोषणा की जिसके अधीन वे अपनी इच्छानुसार अपना शासन चला सकते हैं और रह सकते हैं। मैं ख़ुद इस बात से पूर्णतः सहमत थी कि आत्मनिर्णय का उनका अधिकार सर्वमान्य होना चाहिए।

मैंने अपने छुटपन में ही यह अनुभव कर लिया था कि ज़ार के अधिकारी बहुत अधिक स्वेच्छाचारी और अत्याचारी बन गये थे। बड़ी होने पर मैं ख़ुद क्रान्तिकारी बन गई और निरंकुशता के विरुद्ध लड़ने लगी।

सरकारी नौकरी से बरख़ास्त कर दिये जाने के बाद पिता को वे सारे काम करने पड़े जो उन्हें सुलभ हो सके थे। वे बीमे के एजेन्ट और फ़ैक्ट्री के इन्स्पेक्टर बने; उन्होंने न्यायालय में मुक़दमों की पैरवी की, इत्यादि। हमें हमेशा नगर नगर की ख़ाक छाननी पड़ती। फलतः मुझे सभी क़िस्म के लोगों के सम्पर्क में आने का मौक़ा मिला।

मां प्रायः मुझे बताया करतीं कि वे किस प्रकार एक ज़मींदार-परिवार में शिक्षिका के रूप में काम करती थीं, ज़मींदार किसानों से कैसा व्यवहार करते थे, उनपर क्या क्या अत्याचार करते थे। गर्मी के दिनों में एक बार, जब पिता अभी नौकरी की ढूंढ़-तलाश में ही लगे हुए थे, मां मुझे उस ज़मींदार परिवार में ले गईं जहां वे शिक्षिका का काम कर चुकी थीं। यद्यपि उस समय मेरी उम्र यही कोई पांच वर्ष की रही होगी, फिर भी मैंने वहां बड़ा उत्पात मचाया, खाने के बाद न तो मैंने किसी को धन्यवाद ही दिया और न उनसे नमस्ते ही की। अतएव अन्ततः जब पिता जी आये और हमें रुसानोवो से (ज़मीनदार की जागीर का यही नाम था) वापस ले गये तो मां को बड़ी ख़ुशी हुई। उस समय तक सर्दी पड़ने लगी थी। रास्ते में किसानों ने हमारी बन्द गाड़ी रोकी और यह समझ कर कि हम सब ज़मींदार परिवार के हैं उन्होंने गाड़ीवान की मरम्मत की और हमें भी बर्फ़ में दफ़ना देने की धमकी दी।

पिता को उनपर कोई क्रोध न आया। उन्होंने तो यही कहा कि ये किसान ज़मींदारों से, आज से नहीं सदियों से, घृणा करते आये हैं और सच पूछो तो ज़मींदार उसके पात्र भी हैं।

रुसानोवो में मेरी दोस्ती किसानों के बच्चों और उनकी माताओं से हो गई। वे सब मुझे चाहती थीं, मुझसे प्रेम करती थीं। मैं किसानों के पक्ष में थी। मुझे पिता की बात कभी न भूलती। जब मैं बड़ी हुई उस समय मैं ज़मींदारों की ज़मीन-जायदाद ज़ब्त करने और उसे किसानों में बांटने पर ज़ोर देती रही थी।

बचपन में ही, अर्थात् जब मैं सिर्फ़ छः वर्ष की थी, मैं फ़ैक्ट्री मालिकों से भी घृणा करने लगी थी। उन दिनों पिता उगलिच की हावर्ड फ़ैक्ट्री में इन्स्पेक्टर थे। जब वे वहां की भयानक घटनाओं, श्रमिकों के शोषण आदि की बातें करते तो मैं भी उन्हें टुकुर टुकुर सुना करती।

मैं श्रमिकों के बच्चों के साथ खेलती थी, और जब कभी हमें

फ़ैक्ट्री का मैनेजर जाता दिखाई पड़ जाता तो हम पीछे से उसपर बर्फ़ का गोला फेंकते थे।

जब तुर्की से युद्ध आरम्भ हुआ तब मैं आठ वर्ष की थी। उस समय हम किएव में रह रहे थे। मैंने लोगों में उग्र राष्ट्रवादी भावनाओं का प्रस्फुटन देखा था और तुर्की अत्याचारों की कहानियां सुनी थीं। मैंने जख्मी तुर्की क़ैदियों को देखा था, और उस तुर्की बच्चे के साथ खेली थी जिसे हमारे सैनिक पकड़ लाये थे। उस समय मुझे मालूम हुआ कि युद्ध कितनी भयानक चीज़ है।

एक दिन पिता मुझे वेरेश्चागिन के चित्रों की नुमाइश दिखाने ले गये। एक चित्र में एक बड़ा राजा और कुछ अधिकारी दिखाये गये थे। वे सफ़ेद वर्दियां पहने और दूरबीनें लिये, किसी सुरक्षित स्थान से, लड़ाई में जूझने और मरने वाले सैनिकों को देख रहे थे। उस समय मेरी समझ में कुछ न आया। लेकिन बाद में, प्रथम विश्व-युद्ध के समय, जब सेना ने लड़ने से इनकार किया था, मेरी सारी सहानुभूति उन्हीं के पक्ष में उमड़ पड़ी थी।

'तिमोफ़ेइका'

एक बार वसन्त ऋतु में, जब मैं कोई ११ साल की थी, मुझे गांव भेज दिया गया। उस समय पिता कोस्यकोव्स्की नामक ज़मींदारिनों की जायदाद की देख-भाल किया करते थे। प्स्कोव प्रदेश में कोस्यकोव्स्की की एक छोटी-सी फ़ैक्ट्री थी जहां लेखन-सामग्री तैयार की जाती थी। यहां का काम बड़ा उलझा हुआ था और पिता उसकी समुचित व्यवस्था कर रहे थे। कोस्यकोव्स्की को उनकी बड़ी जरूरत थी और वे पिता के साथ व्यवहार भी अच्छा करते थे।

उसी वसंत ऋतु में मैं सख्त बीमार पड़ गई और कोस्यकोव्स्की ने मुझे अपनी जागीर में ले जाने का प्रस्ताव किया। इस जागीर का नाम था

'स्तुदेनेत्स' ग्रौर यह बेलया स्टेशन से कोई २५ मील दूर थी। मेरे माता-पिता राज़ी हो गये। अपरिचितों के सामने मुझे झिझक तो ज़रूर लगी लेकिन जंगल, मैदानों, अक्षय पुष्पों से लदे हुए पहाड़ी ढालों तथा भूमि की सुगंध ग्रौर हवा में लहराती हुई हरीतिमा ने मुझे मस्त कर दिया।

पहली रात मैंने एक सजे-सजाये अतिथि-कक्ष के गुदगुदे पलंग पर बिताई। परन्तु इस समय काफ़ी गर्मी पड़ रही थी, इसलिए मैंने उठकर खिड़की खोल दी ग्रौर फिर तत्काल ही सारा कमरा लिलक पुष्पों की सुरभि से भर गया। दूर कहीं बुलबुल अलाप रही थी। मैं खिड़की पर खड़ी हो गई ग्रौर देर तक खड़ी रही। दूसरे दिन प्रातःकाल मैं बड़े तड़के उठी ग्रौर नदी के किनारे ढाल पर स्थित बाग़ में निकल गई। वहां मुझे साधारण सूती लिबास पहने हुए एक लड़की दिखाई दी। उसकी अवस्था यही कोई १८ की रही होगी। नीचा माथा ग्रौर लहराते हुए काले काले बाल। उसने मुझे अपना परिचय दिया। वह एक स्थानीय अध्यापिका थी। नाम था अलेक्सान्द्रा तिमोफ़ेयेव्ना अथवा 'तिमोफ़ेइका'। दस ही मिनट में हम गहरे दोस्त बन गये ग्रौर मैंने उसके सामने वे सारी बातें कह डालीं जिनका असर वहां मुझपर हुआ था। वह ज़मींदारिनों के स्कूल में पढ़ाती थी। स्कूल की उच्च कक्षा के विद्यार्थी परीक्षा की तैयारी कर रहे थे। इस कक्षा में पांच छात्र थे—इल्यूशा, सेन्या, मीत्या, वान्या ग्रौर पावेल। मैं प्रायः वहां जाया करती, उनके साथ सवाल लगाती या पढ़ती। कितना मज़ा आता था इन सब में।

'तिमोफ़ेइका' के कमरे में बालोपयोगी बहुत-सी पुस्तकें थीं। मैं इन पुस्तकों को जोड़-जाड़ कर ठीक करने में उसकी मदद करती थी। उसके यहां इतवारों को मेल-मुलाक़ाती आते—किशोर भी, जवान भी, ग्रौर हम सब नेक्रासोव की रचनाएं पढ़ते। 'तिमोफ़ेइका' हमें कहानियां सुनाती ग्रौर मेरा यह अनुभव ग्रौर भी दृढ़ हो जाता कि ज़मींदार ख़राब लोग हैं, वे कभी किसानों की मदद नहीं करते। उल्टे उन्हें लूटते हैं,

उनका शोषण करते हैं। इससे मेरा यह विश्वास भी पक्का हो जाता कि किसानों की मदद करनी चाहिए। मुझे कोस्यकोव्स्की लोग पसन्द न थे। वे अपनी शान ही में चूर रहते। उनकी मां हमेशा सफ़ेद लिबास में रहती, दांत दबा कर मिमियाती और नौकरों पर बरसा करती। मुझे उसकी ये आदतें अच्छी न लगतीं।

ज़मींदारिन नज़ीमोवा और उसके कुत्ते

निकटवर्ती जागीर में हो आने के बाद से तो मुझे ज़मींदारों के प्रति और भी घृणा हो गई थी। इस जागीर में मैं, कोस्यकोव्स्की, 'तिमोफ़ेइका' तथा उच्च कक्षा के उन पांचों विद्यार्थियों के साथ गई थी जिन्हें वहां अपनी परीक्षाएं देनी थीं।

जागीर की मालकिन थी नज़ीमोवा। वह धनी थी इसलिए सभी उसकी चापलूसी में लगे रहते। जब गिरजे जाती तो पादरी का हाथ चूमने के बाद उसे २५ रूबल का नोट थमा देती और इसी लिए पादरी भी बिना उसके प्रार्थना आरम्भ न करता।

परीक्षाएं स्कूल में हुई थीं और पादरी तथा स्कूलों के एक इन्स्पेक्टर द्वारा ली गई थीं। विद्यार्थी घबड़ा गये थे। इल्यूशा तो इतना डर गया था कि उसने 'श्ची'* तक के हिज्जे ग़लत कर दिये। मैं यह न सह सकी। मैंने सोचा कि जा कर उससे कह दूं कि वह अपनी ग़लती ठीक कर ले। लेकिन 'तिमोफ़ेइका' ने मुझे चुप रहने और हस्तक्षेप न करने के आदेश दिये। वह ख़ुद परेशान थी। विद्यार्थियों ने परीक्षाएं ज़रूर पास कर लीं लेकिन इल्यूशा को अपने उस डर से छुटकारा पाने में बहुत समय लग गया था। वह पीला पड़ गया था और पत्ती की तरह कांपता था। परीक्षा के बाद नज़ीमोवा ने हमें खाने पर बुलाया। यह देख कर तो मुझे बहुत ही

*रूस में इस्तेमाल किया जाने वाला पत्ता गोभी का शोरबा। — सं०

आश्चर्य हुआ कि उसके यहां ढेरों पालतू कुत्ते थे। वे कुर्सियों पर उछलते-कूदते और कमरे भर में दौड़ लगाते। जब हम मेज़ पर बैठे उस समय दो लड़कियां आकर खड़ी हो गईं। उनके पैर नंगे थे। नज़ीमोवा ने पहले अपने कुत्तों के लिए शोरबा उड़ेला और लड़कियों ने हर कुत्ते के आगे एक एक प्लेट रख दी। उसके बाद खाना हमारे सामने आया। हर चीज़ में क्या शानोशौक़त थी! बढ़िया ख़ूबसूरत-सा बाग़, बीच में तालाब और तालाब के चारों ओर गुलाब के बड़े बड़े फूल। फिर भी मेरा दिल वहां न लगा और जब घर वापस जाने का समय आया तो मैं बड़ी ख़ुश हुई। मैंने सोचा, "'तिमोफ़ेइका' ठीक कहती है कि बिना ज़मींदारों के हमारा काम बड़े मज़े में चल सकता है, बड़ी आसानी से।" पिता से भी मैंने यही बात सुन रखी थी।

जब कभी 'तिमोफ़ेइका' किसानों के लिए पुस्तकें ले कर पास-पड़ोस के गांवों में जाती तो मुझे भी अपने साथ ले लेती। वह किसानों से बातें करती, लेकिन मुझे उसकी सारी बातें समझ में न आतीं।

इसके बाद एक महीने के लिए 'तिमोफ़ेइका' कहीं चली गई।

फ़ैक्ट्री के श्रमिकों के साथ

इसी बीच पिता और मां फ़ैक्ट्री के निकट रहने आ गये। मैं भी उनके साथ गई थी। फ़ैक्ट्री कोस्यकोव्स्की की जागीर से लगभग एक मील दूर थी। वहां मेरी दोस्ती फ़ैक्ट्री में काम करने वाले बहुत-से तरुणों से हो गई। (इल्यूशा भी वहां काम करता था।) मैं लपेटने के काम आने वाले काग़ज़ों के दस्ते और रीम बनाने में उनकी मदद करती। मेरी दोस्ती उस बूढ़े से भी हो गई जो फ़ैक्ट्री में ईंधन लाया करता था। उसने मुझे गाड़ी में जुता हुआ अपना घोड़ा हांकने की अनुमति दे दी थी। मुझे यह काम बड़ा अच्छा लगता। हम गाड़ी पर जंगल में जाते। मैं गाड़ी लादने में बूढ़े की मदद किया करती। फिर

हम लोग गाड़ी के साथ साथ चहलक़दमी करते हुए फ़ैक्ट्री चले आते और ईंधन की लकड़ियां गोदाम में डाल देते। मां और पिता मेरे इस उत्साह और मेरे खुरदरे हाथों को देख कर हंसा करते।

वहां ऐसी स्त्रियां भी थीं जो फ़ैक्ट्री के निकट दिन भर एक सायबान के नीचे बैठी रहतीं और गंदे चीथड़ों को छांटते समय तरह तरह के गीत गाया करतीं। फटे-चिथड़े, पुराने कपड़े, नीली कमीज़ें आदि खास खास फेरीवालों से गांवों में खरीदी जातीं और फ़ैक्ट्री में काग़ज़ बनाने के काम आतीं। मैं भी स्त्रियों में मिल जाती। उनके साथ गाने गाती और चिथड़े बीनती।

एक स्त्री ने मुझे एक पालतू खरगोश दे रखा था। वह घर में ज़ीने के नीचे रहा करता था। मेरा एक और अच्छा दोस्त था—एक दोगली नस्ल का कुत्ता कर्सोन। खाने के बाद मैं उसकी प्लेट शोरबे, खट्टे, दूध, हड्डियों और रोटी से भर देती और फिर उसे बुलाती। कर्सोन भागता हुआ चला आता और खाने पर टूट पड़ता।

आखिरकार जाने का समय आ गया। मुझे 'तिमोफ़ेइका', जो उस समय तक वापस आ चुकी थी, बच्चों, बूढ़े गाड़ीवान, चची मार्या और कर्सोन को छोड़ने का बड़ा अफ़सोस रहा। जब गाड़ी दरवाज़े पर लगी और हम सब उसमें बैठ गये तब कर्सोन आकर उसके नीचे लेट गया और हमें उसे खींच-खांच कर वहां से हटा कर ही अपनी गाड़ी आगे बढ़ानी पड़ी।

जाड़े में मुझे सूचना मिली कि भेड़िये कर्सोन को खा गये। इससे मुझे बड़ा दुख हुआ। मैं अक्सर 'तिमोफ़ेइका' के बारे में भी पूछताछ किया करती। एक दिन पिता ने हमें बताया कि पुलिस ने उसके कमरे पर छापा मारा और कुछ निषिद्ध साहित्य तथा गिनतियों से भरी हुई ज़ार की एक तस्वीर उठा ले गये। 'तिमोफ़ेइका' ने सवाल हल करने के लिए इस तस्वीर को एक काग़ज़ के रूप में इस्तेमाल किया था। बाद

में मैंने सुना कि 'तिमोफ़ेइका' को प्स्कोव जेल में दो वर्षों के लिए एक ऐसी काल-कोठरी में डाल दिया गया था जहां खिड़की तक न थी। बाद में मेरी उसकी मुलाक़ात कभी न हुई। उसका कुलनाम था यवोस्कीया। उन दिनों जाड़े के मौसम में मैं दर्जे में बैठी बैठी छोटे छोटे मकानों के चित्र बनाया करती और उनपर 'स्कूल' लिख कर एक साइनबोर्ड-सा लटका दिया करती।

इस प्रकार मैं गांवों की अध्यापिका बनने के स्वप्न देखा करती। उन दिनों के बाद से मैं हमेशा ही गांवों के स्कूलों में और गांवों के बच्चों को पढ़ाने में दिलचस्पी लेने लगी।

पहली मार्च १८८१

क्रांतिकारियों के प्रति मैं सहानुभूति कैसे न प्रकट करती!

मुझे पहली मार्च १८८१ की वह शाम अच्छी तरह याद है जब 'नरोदनया वोल्या' के सदस्यों ने अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या की थी। उस दिन, पहले मेरे कुछ संबंधी आये थे। वे डरे हुए थे। उनके मुंह से बोल तक न फूट रहे थे। इसके बाद मेरे पिता का एक पुराना सहपाठी, जो एक अफ़सर था, हांफता हुआ आया और हत्या का सारा ब्योरा हमें सुना डाला, कैसे गाड़ी उड़ा दी गई, इत्यादि। "हाथ पर बांधने वाली पट्टी के लिए मैंने थोड़ा क्रेप खरीद लिया है," हमें क्रेप दिखाते हुए वह बोला। मुझे याद है कि मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि वह व्यक्ति ज़ार की मृत्यु पर शोकसूचक काला कपड़ा बांधने का कितना इच्छुक था। यह वही ज़ार था जिसकी उसने हमेशा आलोचना की थी। यह अफ़सर निहायत कंजूस था और इसी लिए मैंने भी सोचा, "अगर इसने क्रेप ख़रीदने में पैसा ख़र्च किया है तो ज़रूर ही वह सच कह रहा होगा।" उस रात मुझे ज़रा भी नींद न आई। मैं सोच रही थी, "अब ज़ार मर चुका है तो हर चीज़ बदलेगी। लोग आज़ाद होंगे।"

लेकिन मेरी सोची हुई बात ठीक न निकली। हर चीज़ वैसी ही बनी रही जैसी कि चली आई थी, बल्कि उससे भी बदतर। पुलिस ने 'नरोदनया वोल्या' के सदस्यों को गिरफ़्तार करना शुरू किया। ज़ार के हत्यारों को फांसी दे दी गई। फ़ांसी के लिए वे लोग उसी रास्ते से ले जाये गये थे जिसपर मेरी पाठशाला पड़ती थी। शाम को मेरे चचा ने मुझे बताया था कि जब मिख़ाइलोव को फांसी दी जा रही थी उस समय रस्सा ख़ुद चर्र से टूट पड़ा था।

हमारे कई क्रान्तिकारी दोस्तों को भी नज़रबन्द कर दिया गया। सामाजिक क्रियाशीलता ठप हो गई।

अध्ययन

पहले पहल मैंने पढ़ाई-लिखाई घर पर ही शुरू की। उस समय मां ही मेरी अध्यापिका थीं। मैंने बहुत छुटपन से ही पढ़ना शुरू कर दिया था। मुझे पुस्तकें प्यारी थीं क्योंकि वे मेरे लिए एक नयी दुनिया का निर्माण करती थीं। और मैं एक के बाद दूसरी, और फिर तीसरी, किताब ख़त्म करने लगी।

मैं पाठशाला जाने की इच्छुक थी, लेकिन जब मैंने दस वर्ष की उम्र से वहां जाना शुरू किया तो वह मुझे अच्छी न लगी। दर्जा बड़ा था—वहां हम लगभग पचास विद्यार्थी थे। मैं बहुत ही शर्मीली लड़की थी और बात बात में परेशान हो उठती। किसी ने भी मेरी ओर कोई ध्यान न दिया। अध्यापक हमें काम देते, नाम ले ले कर पुकारते, पाठ दुहरवाते और अंक देते। प्रश्न पूछना क़ायदे के ख़िलाफ़ था। हमारे दर्जे की अध्यापिका बेईमानी से काम लेती—उन धनी लड़कियों की लल्लो-चप्पो करती जो अपनी अपनी गाड़ियों में बैठ कर स्कूल आया करती थीं, और ग़रीबों जैसे कपड़े पहने हुई लड़कियों पर भौंकती और उनके नुक्स निकाला करती। लेकिन वहां एक चीज़ इससे भी ख़राब थी—

लड़कियों में परस्पर मित्रता न थी और इसी कारण मेरा जी भी खिन्न हो उठता और मैं अकेलापन महसूस करने लगती। मैं बड़ी मेहनत से पढ़ती, और दूसरी लड़कियों से तेज़ थी। लेकिन दर्जे में मैं अपने पाठों को ठीक ठीक न पढ़ पाती क्योंकि मेरे दिमाग़ में तो दूसरी बातें घूमा करती थीं।

पिता ने देखा कि मुझे वह पाठशाला अच्छी नहीं लगती। फलतः उन्होंने मुझे दूसरी ओबोलेंस्की प्राइवेट पाठशाला में भेज दिया।

वहां की बात दूसरी थी। वहां हमपर न कोई चीख़ता, न चिल्लाता। वहां के बच्चों को काफ़ी आज़ादी मिली हुई थी। वे ख़ुश थे। वहां मेरे बहुत-से दोस्त बन गये। वहां मेरा पढ़ने में भी मन लगा। उस पाठशाला की सुखद स्मृतियां आज भी मेरे दिमाग़ में चक्कर लगा रही हैं। इस पाठशाला से मैंने बहुत कुछ सीखा था। इसी ने मुझे काम करना सिखाया था और इसी की वजह से मैं सार्वजनिक कार्यकर्त्री भी बन सकी थी।

गुज़र-बसर के साधन

पिता मेरे सब से बड़े मित्र थे। उनसे मैं अपने दिल की सारी बातें कह सकती थी। वे चल बसे उस समय जब मेरी उम्र सिर्फ़ चौदह की थी। अब मां और मैं अपने परिवार में ये ही दो प्राणी रह गये। मां का स्वभाव बड़ा मधुर था। वे उत्साही थीं लेकिन मुझे हमेशा बच्ची ही समझती रहीं। लेकिन मैं थी कि आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र होने की ही बात सोचा करती। हां जब उन्होंने मुझे अपने बराबर का समझना शुरू किया तो हम दोनों सहेलियां भी बन गईं। लेकिन ऐसा काफ़ी समय बाद हुआ था। वे मुझे बहुत प्यार करतीं और हम बड़े सुख से रहतीं-बसतीं। वे मेरे क्रान्तिवादी कार्यों से सहानुभूति प्रकट करतीं और मेरी मदद करतीं। पार्टी के जो साथी मुझसे मिलने आते वे मां को ख़ूब चाहते। वे भी किसी को भूखा न लौटने देतीं और हर शख़्स का ध्यान रखतीं। जब पिता

की मृत्यु हो गई तो गुज़र-बसर की ज़िम्मेदारी भी हमारे ही कन्धों पर आ पड़ी। मैं पढ़ाने का काम करने लगी। मैं और मां कुछ लिखा-पढ़ी का काम कर लेतीं। फिर हमने एक बड़ा मकान किराये पर लिया और उसके कमरे किराये पर दिये। हमारा सम्पर्क सभी तरह के लोगों से रहा – विद्यार्थी, बुद्धिजीवी, टेलीफ़ोन आपरेटर, दर्ज़िनें, डाक्टरों के सहायक आदि। चूंकि मैं पाठशाला में प्रथम रहा करती थी इसलिए पाठशाला की सिफ़ारिश से मुझे पढ़ाने का काम मिल गया। यह काम कोई सुखकर न था। धनी लोग अध्यापिकाओं को हेय दृष्टि से देखते और उनके अध्यापन-कार्यों में बाधाएं डालते। स्नातक बनने के बाद मैंने स्कूली अध्यापिका होने के स्वप्न देखे थे लेकिन मुझे कोई जगह न मिली।

कोई चारा नहीं

उन दिनों मुझे लेव तोलस्तोय पढ़ना बहुत भाता था। उसने विलासिता और काहिली का जीवन व्यतीत करने वालों की कड़ी निन्दा की थी, देश के तत्कालीन प्रशासन की आलोचना की थी और यह दिखाया था कि ज़मींदारों और धनियों के जीवन को सुखद और समृद्ध बनाने के लिए क्या क्या किया जा रहा था। उसने यह उल्लेख भी किया था कि किस प्रकार हाड़-तोड़ मेहनत के कारण श्रमिक मरे जा रहे हैं और किसान खेतों में जी तोड़ काम कर रहे हैं। तोलस्तोय हर चीज़ का स्पष्ट एवं सजीव विवरण प्रस्तुत करना ख़ूब जानता था। मैंने अपने चतुर्दिक होने वाली घटनाओं पर सोचा-विचारा था और अनुभव किया था कि उसने जो कुछ भी लिखा है वह बिल्कुल ठीक है। उस समय के बाद से मैंने क्रान्तिवादी संघर्ष को एक दूसरी ही दृष्टि से देखा था और उसके कारणों की गहराई में भी प्रवेश किया था। लेकिन किया क्या जाय? भ्रष्ट अधिकारियों और ज़ारों की हत्या तथा आतंक से समस्याएं हल नहीं हो सकतीं। तोलस्तोय ने मार्गदर्शन किया था – अब ज़रूरत रह गई

थी मेहनत करने की श्रौर श्रात्म-विकास की। मैंने घर-गृहस्थी के काम शुरू कर दिये। गर्मियों में मैं किसानों की तरह खेतों में काम करती। विलासिता के जीवन को मैंने तिलांजलि दे रखी थी। श्रब मैंने लोगों की श्रोर श्रधिक ध्यान देना शुरू किया। उनकी बातें बड़े संयम के साथ सुनीं। लेकिन शीघ्र ही मुझे मालूम हो गया कि मैं चाहे भी जो कुछ क्यों न करूं इससे न तो वस्तु-स्थिति में ही परिवर्तन होगा श्रौर न श्रन्याय ही मिटेगा। यह ठीक है कि मैंने किसानों के रहन-सहन के तरीक़े देखे थे श्रौर यह सीखा था कि किसानों श्रौर श्रमिकों के साथ मृदुता से कैसे बातचीत करनी चाहिए। मगर इससे भी क्या लाभ हो सकता था? मैंने सोचा था कि रहन-सहन की दशाश्रों को बदलने श्रौर शोषण को निर्मूल करने की शिक्षा मुझे उच्च शिक्षा-संस्था में मिलेगी।

उन दिनों न तो यूनिवर्सिटियों में ही स्त्रियों को भर्ती किया जाता था श्रौर न उच्च शिक्षा की श्रन्य संस्थाश्रों में ही। ज़ारीना का कहना था कि स्त्रियों को घर पर रहना चाहिए श्रौर पढ़ने के बजाय श्रपने पतियों श्रौर बच्चों की देखरेख में लगना चाहिए। स्त्रियों के चिकित्सा-पाठ्यक्रमों श्रौर उच्चतर कोर्सों को बन्द करने के श्रादेश दे दिये गये थे। इसलिए मुझे खुद ही श्रपनी पढ़ाई-लिखाई चलानी पड़ी श्रौर मैंने इस श्रोर यथासम्भव श्रधिक से श्रधिक ध्यान दिया।

कुछ समय बाद पीटर्सबर्ग में स्त्रियों के उच्चतर कोर्स फिर श्रारम्भ हो गये। मगर उन्हें देख कर तो बहुत श्रधिक निराशा होती थी। दो ही महीनों के भीतर मुझे मालूम हो गया कि जो कुछ भी मैं जानना चाहती हूं उसकी शिक्षा कभी न ग्रहण कर सकूंगी क्योंकि इन कोर्सों में जो भी बताया जाता था उसका वास्तविक जीवन से कोई मेल न था।

मैं मार्क्सवादी कैसे बनी

उस समय ज़माना और था। सामाजिक समस्याओं पर न तो अच्छी पुस्तकें ही थीं, और न सभाएं ही होती थीं। श्रमिक संघटित न थे। उनकी अपनी कोई पार्टी भी न थी। यद्यपि मैं बीस साल की हो चुकी थी फिर भी मार्क्स के बारे में कुछ न जानती थी। श्रम आन्दोलन या कम्यूनिज़्म का तो नाम भी मैंने न सुना था।

उन दिनों विद्यार्थी आन्दोलन अपनी शैशवावस्था में था। एक दिन मुझे एक विद्यार्थी-मंडल का निमंत्रण मिला और उससे मेरी आंखें खुल गईं। मैंने कोर्सों में जाना बन्द कर दिया और मार्क्स और दूसरी ज़रूरी किताबें पढ़ने लगी। मैंने समझ लिया था कि सिर्फ़ श्रमिकों का क्रान्तिवादी आन्दोलन ही जीवन को एक नया मोड़ दे सकता है और यदि कोई सचमुच जनता के लिए उपयोगी बनना चाहता है तो उसे श्रमिकों की भलाई के लिए अपनी बलि देनी होगी।

वसन्त ऋतु में मैंने अपने एक दोस्त से मार्क्स की 'पूंजी' और दूसरी उपयोगी पुस्तकें ला देने का अनुरोध किया। उन दिनों सार्वजनिक पुस्तकालय तक में मार्क्स की पुस्तकें न मिल सकती थीं। फिर उन्हें इधर उधर से जुटाना तो एक बड़ी ही टेढ़ी खीर थी। 'पूंजी' के अलावा मुझे न० सीबर की 'आदिकालीन आर्थिक संस्कृति संबंधी लेख', व० व० (व० प० वोरोनत्सोव) की 'रूस में पूंजीवाद का भविष्य' और येफ़ीमेन्को की 'उत्तर की खोज' नामक पुस्तकें भी मिल गई थीं।

उसी वर्ष वसन्त के आरम्भ में मैंने तथा मां ने गांव में एक छोटा-सा मकान किराये पर लिया। मैं इन पुस्तकों को अपने साथ वहां ले गई। गर्मी भर मैंने अपने मालिक मकान—स्थानीय किसानों—की सहायता की। उसके पास काम करने के लिए काफ़ी लोग न थे। मुझे बच्चों को

नहलाना-धुलाना पड़ता, शाक-सब्ज़ियों के बाग़ में बुआई आदि करनी होती, घास इकट्ठी करनी होती और फ़स्ल काटनी होती। उन दिनों ग्राम-जीवन मेरे आकर्षण का केन्द्र बन रहा था। प्रायः आधी रात को मेरी आंख खुल जाती और मुझे चिन्ता होने लगती कि कहीं घोड़ों ने जई के खेत को तो नहीं रौंद डाला है। अपने ख़ाली समय में मैं बड़े मनोयोग के साथ 'पूंजी' पढ़ा करती। पहले दो अध्याय समझने में बड़ी कठिनाई हुई, लेकिन उसके आगे के अध्याय आसानी से समझ में आ गये। यह अध्ययन ऐसा लगता जैसे वसन्त ऋतु का पानी पिया जा रहा हो। मैंने अनुभव किया कि तोलस्तोय का आत्म-विकास का सिद्धान्त भी समस्या का सही हल नहीं है। समस्या का हल था एक सशक्त श्रम आन्दोलन।

एक दिन सायंकाल मैं दालान में बैठी ये पंक्तियां पढ़ रही थी: "पूंजीवाद अपनी आख़िरी घड़ियां गिन रहा है। स्वामित्वहरण करने वालों का स्वामित्व हरण किया जा रहा है।" मेरा दिल धड़कने लगा और यह धड़कन मुझे साफ़ सुनाई देने लगी। मैं अपने ही विचारों में इतनी तल्लीन थी कि मालिक के बच्चे के साथ मेरे पास बैठी हुई युवती नर्स क्या कह गई मेरी समझ में न आया: "हम उसे श्ची कहते हैं तुम कहती हो शोरबा, हम उसे नाव कहते हैं और तुम तरणी, हम उसे पतवार कहते हैं और तुम क्या कहती हो भगवान जाने।" और वह मेरी चुप्पी से परेशान हो कर न जाने क्या क्या बकती गई। क्या तब मैं यह जानती थी कि मैं "स्वामित्वहरण करने वालों के स्वामित्वों का हरण होते हुए" देखने के लिए जीवित रहूंगी। उन दिनों इस प्रश्न में मेरी कोई दिलचस्पी न थी। बस, लक्ष्य स्पष्ट था और उस लक्ष्य को प्राप्त करने का मार्ग भी वैसा ही स्पष्ट, वैसा ही साफ़ था। और उसके बाद से यत्र-तत्र श्रमिक आन्दोलन की मुठभेड़ें सुनाई पड़ने लगीं – १८९६ में (पीटर्सबर्ग की सूती वस्त्र मिल की हड़ताल), ९ जनवरी को, १९०३ – १९०५,

१६१२ (लेना नदी का हत्याकांड)* और १६१७ में—मैं पूंजीवाद की मौत की घड़ी के बारे में सोच रही थी, जो तेज़, और तेज़, बढ़ती ही चली आ रही है। मैंने सोवियतों की दूसरी कांग्रेस में भी उसके बारे में सोचा विचारा था उस समय जब भूमि और उत्पादन के साधन जनसम्पत्ति घोषित किये जा चुके थे। अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने के पूर्व अभी कितनी बाधाएं पार करनी थीं। क्या मैं अन्तिम बाधा देखने के लिए जीवित रहूंगी? मैं नहीं जानती थी। उसे मैं ज़रूरी भी नहीं समझती थी। हम जानते थे कि हमारे स्वप्न का साकार हो सकना सम्भव है और इसमें विलम्ब की कोई गुंजाइश नहीं। सभी उसे आसानी से समझ सकते हैं। हमारे स्वप्न फलीभूत होंगे ऐसा प्रत्यक्ष दिखाई पड़ रहा था। पूंजीवाद अन्तिम सांसें ले रहा था।

नेवस्काया ज़स्तावा

मैं तीन वर्षों तक मंडल की मीटिंगों में गई। वहां मैंने बहुत कुछ देखा, अनुभव किया। चीज़ों को देखने का मेरा दृष्टिकोण बदल रहा था। लेकिन सिर्फ़ जानना ही तो काफ़ी न था। मैं काम करना चाहती थी, उपयोगी बनना चाहती थी। विद्यार्थियों और श्रमिकों के सम्पर्क बालू की भित्ति थे। श्रमिकों के साथ उठने-बैठने के कारण विद्यार्थियों को तंग किया जाता था। ज़ारशाही हुकूमत ने उन दोनों के बीच एक पत्थर की दीवार खड़ी करने की कोशिश की थी। इसलिए जब कभी विद्यार्थियों को श्रमिकों के साथ बातचीत करने के लिए जाना होता तो उन्हें अपना हुलिया बदलना

*४ अप्रैल १६१२ को ज़ारशाही सरकार ने साइबेरिया की लेना नदी की सोने की खानों के श्रमिकों की हत्या की थी। रूसी सर्वहारा वर्ग ने इस हत्याकांड का जवाब बड़ी बड़ी राजनीतिक हड़तालों और प्रदर्शनों द्वारा दिया था और इन्हीं हड़तालों और प्रदर्शनों ने १६१२-१४ में एक नये क्रान्तिवादी संघर्ष का सूत्रपात किया था।—सं०

होता। विद्यार्थियों और श्रमिकों के बीच जो सम्पर्क था वह नगण्य था। इसलिए मैंने नेवस्काया ज़स्तावा से कुछ दूर स्मोलेन्स्कोये ग्राम में एक रविवारीय सन्ध्या स्कूल में अध्यापिका बनने का निश्चय किया। (नेवस्काया ज़स्तावा का नाम आजकल वोलोदार्स्की ज़िला पड़ गया है।)

स्कूल काफ़ी बड़ा था। वहां कोई ६०० विद्यार्थी थे जिनमें मैक्सवेल, पाल, सेम्यान्निकोव और दूसरी मिलों के श्रमिक थे। मैं वहां प्रायः प्रतिदिन जाती थी।

मैंने स्कूल में लोगों के साथ घनिष्ठता स्थापित की, श्रमिकों से परिचय प्राप्त किया और उनके जीवन का अध्ययन किया। उन दिनों के विनियम बड़े कठोर होते थे। एक दौरा-इन्स्पेक्टर ने एक रिफ़ेशर कोर्स महज़ इसलिए बन्द कर दिया कि वहां के विद्यार्थी पाठ्यक्रम में निर्दिष्ट जोड़-बाक़ी के बजाय सही-बटों के सवाल लगाया करते थे, एक श्रमिक को इसलिए निर्वासित कर दिया गया कि उसने, मैनेजर के साथ बातचीत में 'श्रमसाधिता' शब्दों का इस्तेमाल किया था। और फिर भी इस स्कूल में काम किया जा सकता था क्योंकि यहां हर कोई हर कुछ कह सकता था बशर्ते कि वह 'ज़ारशाही', 'हड़ताल', 'क्रान्ति' जैसे शब्दों का प्रयोग न करे। अगले वर्ष स्कूल में और भी अधिक मार्क्सवादी भरती हो गये थे। हमने अपने विद्यार्थियों को, बिना मार्क्स का नाम बताये हुए, मार्क्सवाद पढ़ाने का प्रयत्न किया। मुझे यह देख कर आश्चर्य होता था कि मार्क्सवादी दृष्टिकोण से बातचीत करते समय श्रमिकों को कठिन से कठिन विषय समझाना भी कितना आसान हो जाता था। वातावरण मार्क्सवाद सीखने के अनुकूल बनता जा रहा था। यदि पतझड़ के दिनों में किसी गांव से कोई छोकरा आ जाता, तो पहले तो, 'भूगोल' या 'व्याकरण' के घंटे में अपने कान बन्द कर लेता और रुदाकोव के पुराने और नये टेस्टामेन्ट* पढ़ा करता, फिर वसन्त आते

*बाइबिल के दो भाग।—सं०

आते, स्कूल बन्द होने के बाद, मंडल की बैठक के लिए भागा जाता और अगर पूछा जाता कि वह जा कहां रहा है तो बड़ी सारगर्भित हंसी हंस देता। 'भूगोल' के घंटे में अगर कोई श्रमिक यह कहे कि "दस्तकारियां बड़े बड़े उत्पादनों की प्रतिद्वन्द्विता नहीं कर सकतीं" या यह पूछ बैठे कि "अर्खांगेल्स्क मुजीक (किसान) और इवानोवो-वोज्नेसेन्स्क श्रमिक में क्या फ़र्क़ है?" तो यह आसानी से समझा जा सकता है कि वह मार्क्सवादी मंडल का सदस्य है और इन वाक्यों का अर्थ समझता है। ये वाक्य दोस्तों में सम्पर्क स्थापित करने के लिए निर्देश-चिह्न होते थे। इनका प्रयोग करने वाला आपका स्वागत कुछ ऐसे ढंग से करता मानो आपसे कह रहा हो "आप हमीं में से एक हैं।" और जो लोग मंडल की बैठकों में नहीं जाते थे और "अर्खांगेल्स्क मुजीक और इवानोवो-वोज्नेसेन्स्क श्रमिक का फ़र्क़" नहीं जानते थे खुद वे लोग भी हमारी इज्ज़त करते और हमारे साथ बड़े स्नेह से पेश आते।

"आज पुस्तकें मत बांटें," एक दिन मेरे एक विद्यार्थी ने मुझे चेतावनी दी (ये पुस्तकें प्रायः पुस्तकालय से आती थीं), "आज यहां कोई नये साहब बैठे हैं। पहले वे कोई साधू-सन्यासी थे। कौन जाने वे कौन हों। हम उनके बारे में बाद में कुछ और जान जायेंगे..."

"जब वह काला-सा आदमी इधर उधर घूम रहा हो तो आप कुछ न कहा करें," एक अधेड़ श्रमिक मुझे सचेत कर देता, "उसका संबंध खुफ़िया पुलिस से है।"

एक विद्यार्थी को सैनिक सेवा के लिए बुलावा आ पहुंचा। विदाई से दो-एक दिन पूर्व वह अपने एक दोस्त को लाया जो पुतीलोव कारखाने में काम करता था।

"उसके लिए रोज़ शाम को यहां आना बड़ा कठिन है क्योंकि वह दूर रहता है। लेकिन 'भूगोल' पाठ के लिए वह रविवारों को आ सकता है।"

मैंने उस स्कूल में पांच साल तक पढ़ाया और फिर जेल भेज दी गई।

इन पांच वर्षों में मार्क्सवाद संबंधी मेरे ज्ञान का विकास हुआ और मैं हमेशा के लिए श्रमिक वर्ग के साथ बंध गई।

इसी बीच सक्रिय मार्क्सवादियों ने एक संघटन की स्थापना की जो पहले बड़ा कमज़ोर लग रहा था। वे अपने को सामाजिक-जनवादी कहते थे ठीक वैसे ही जैसे कि जर्मनी की श्रमिक पार्टी के लोग अपने को कहा करते थे। व्लादीमिर इल्यीच लेनिन १८९४ में पीटर्सबर्ग पहुंचे और वहां के कार्यों में जान आ गई। संघटन और मज़बूत हुआ। मैं और व्लादीमिर इल्यीच एक ही ज़िले में काम करते थे। शीघ्र ही हम गहरे दोस्त बन गये। पत्रकों की सहायता से हमारे संघटन ने व्यापक संघर्ष के बीज बो दिये। हम अवैध पैम्फ़्लेट निकालने लगे। हमारा विचार एक लोकप्रिय किन्तु अवैध पत्रिका निकालने का भी था। जैसे ही इस संबंध में सारे कार्य प्रायः पूरे हुए कि व्लादीमिर इल्यीच और उनके साथियों को गिरफ़्तार कर लिया गया। संघटन के लिए यह एक बहुत बड़ा आघात था। लेकिन हमने अपनी शक्ति जुटाई और हम पत्रकों का प्रकाशन करते रहे। अगस्त १८९६ में हमने बुनकरों में हड़ताल कराने का आन्दोलन किया और इसे एक संघटित ढंग पर चलाने में बुनकरों की सहायता की। हड़ताल के बाद बहुत-से लोग गिरफ़्तार किये गये। मैं भी उनमें से एक थी। निर्वासन काल में मैंने व्लादीमिर इल्यीच से विवाह कर लिया। उसके बाद मेरा जीवन उनके जीवन से बंध गया। जहां तक मुझसे हो सकता था मैंने उनके कामों में सहायता की। इसके बारे में चर्चा करने के माने यह हैं कि मैं आपको व्लादीमिर इल्यीच के जीवन और कार्यों की कहानी सुनाऊं। जिन वर्षों में मुझे देश से बाहर रहना पड़ा था उनमें मेरा मुख्य कार्य रूस के साथ सम्पर्क स्थापित करना था। १९०५-१९०७ में मैं केन्द्रीय समिति की सेक्रेटरी थी। १९१७ के बाद से मैं लोक-शिक्षा

के कार्यों में व्यस्त रही हूं। मुझे अपना काम प्रिय है और मैं उसे बहुत महत्वपूर्ण समझती हूं। अक्तूबर क्रान्ति को सफल बनाने के लिए यह ज़रूरी है कि श्रमिक और किसान ज्ञान प्राप्त करें। बिना इसके किसान, सचेतन रूप से, श्रमिक वर्ग का अनुसरण न कर सकेंगे और न इतनी तेज़ी से सामूहिक खेतों में एक दूसरे के साथ मिल-जुल कर काम ही कर सकेंगे। लोक-शिक्षा विषयक मेरा कार्य पार्टी के प्रचार कार्य से संबद्ध है और यह संबंध निकट का है।

पुनश्च

यह मेरा सौभाग्य है कि मैंने श्रमिक वर्ग की बढ़ती हुई शक्ति देखी है, पार्टी को उन्नति करते हुए देखा है, दुनिया भर की सबसे बड़ी क्रान्ति देखी है, एक नये समाजवाद का जन्म देखा है और देखा है मानव जीवन का पूर्णतः पुनरुद्धार होते।

मुझे इस बात का हमेशा दुख रहा कि मेरे अपने कोई बच्चे नहीं। लेकिन अब मुझे कोई दुख नहीं। मेरे तो बहुत-से बच्चे हैं—कम्यूनिस्ट लीग के तरुण सदस्य, तरुण पायोनियर, सभी तो। वे सभी लेनिनवादी हैं, सभी लेनिनवादी बनना चाहते हैं।

अपने तरुण पायोनियरों के अनुरोध से ही मैंने यह आत्मकथा लिखी है।

और यह आत्मकथा मैं उन्हीं को समर्पित करती हूं अपने उन्हीं प्यारे प्यारे बच्चों को।

व्ला० इ० लेनिन से संबंधित लेख

इल्यीच का बचपन तथा प्रारम्भिक वर्ष

व्लादीमिर इल्यीच के बचपन के बारे में लिखते समय मैं मुख्यतया उन्हीं बातों का उल्लेख करूंगी जो उन्होंने मुझे हमारे वैवाहिक जीवन के दौरान में बताई थीं। यह ठीक है कि क्रान्तिकारी कार्यों में लगे रहने के कारण उन्हें अपने विगत जीवन पर प्रकाश डालने का अवसर कम मिलता था फिर भी हम थे तो एक ही पीढ़ी के (मैं उनसे एक वर्ष बड़ी थी) ; और न्यूनाधिक एक ही वातावरण में बड़े भी हुए थे। हम इस वातावरण को विभिन्न प्रकार के बुद्धिजीवियों का वातावरण कह सकते हैं। उन्होंने हमें समय समय पर अपने बारे में जो थोड़ी-सी बातें बताई थीं उनसे मैं बहुत कुछ समझ सकती थी।

व्लादीमिर इल्यीच वोल्गा पर स्थित सिम्बीर्स्क नगर में २२ अप्रैल १८७० को पैदा हुए थे। वे वहां १७ वर्ष की उम्र तक रहते रहे। सिम्बीर्स्क एक गुबेर्निया का नगर था और आज जब हम उन दिनों के सिम्बीर्स्क की सड़कों, मकानों तथा वातावरण के नक़्शे देखते हैं तो हमें ऐसा लगता है कि वह स्थान बड़ा शान्तिपूर्ण रहा होगा। उस समय वहां न तो कोई कल-कारख़ाने थे और न कोई रेलवे लाइन ही। रेडियो तथा टेलीफ़ोन की तो बात ही क्या।

इल्यीच का वास्तविक नाम उल्यानोव था। लेनिन नाम तो उन्होंने बहुत बाद में उस समय अपनाया था जब वे क्रांतिकारी हो चुके थे और जब उन्होंने लेखादि लिखना आरम्भ कर दिया था। नाम बदलने का मुख्य कारण यह था कि उन्हें प्रायः अपने गुप्त कार्यों के लिए एक कल्पित नाम का सहारा लेना पड़ता था। अब लेनिन की यादगार में सिम्बीर्स्क नगर का नाम उल्यानोव्स्क पड़ गया है। आज उल्यानोव्स्क शिक्षा का एक केन्द्र है जहां बहुत से विद्यार्थी अध्ययन करते हैं। वहां लेनिन संग्रहालय की भी एक शाखा है।

व्लादीमिर इल्यीच के पिता इल्या निकोलायेविच आस्त्राखान के एक मध्यम श्रेणी के परिवार के व्यक्ति थे। वे ग़रीबी में गुज़र-बसर करते थे इसी लिए शिक्षा का मार्ग उनके लिए अवरुद्ध था। ७ वर्ष की अवस्था में वे अनाथ हो गये थे और उनके भरण-पोषण का भार उनके बड़े भाई के कन्धों पर पड़ गया था, जिन्होंने उन्हें पढ़ाने-लिखाने में अपनी सारी पूंजी लगा दी थी। इल्या निकोलायेविच प्रतिभाशाली तथा स्वभाव से परिश्रमी व्यक्ति थे। इसी कारण उन्होंने अपने जीवन में बड़ी तरक़्क़ी की थी। वे पाठशाला के स्नातक थे और बाद में कज़ान विश्वविद्यालय में भी दाख़िल हुए थे। विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम उन्होंने १८५४ में पूरा किया था। तत्पश्चात् वे कुलीन लोगों के पेन्ज़ा कालेज में भौतिकशास्त्र के और गणित के अध्यापक हुए। इसके बाद उन्होंने निज्नी-नोवगोरोद में लड़कों और लड़कियों की पाठशालाओं में भी कार्य किया। बाद में वे पहले सिम्बीर्स्क की सार्वजनिक पाठशालाओं के इन्स्पेक्टर और अन्ततः डाइरेक्टर बना दिये गये। इल्या निकोलायेविच ने कज़ान विश्वविद्यालय में उस समय स्नातक परीक्षा पास की थी जब क्रीमिया का युद्ध अपनी चरम सीमा पर था। इस युद्ध ने यह बात पूर्ण रूप से स्पष्ट कर दी थी कि कम्मीगिरी की प्रथा अत्यधिक भ्रष्ट है और निकोलाई प्रथम के अधीन ज़ारशाही क्रूरता की सीमा पार कर चुकी थी।

यह वह काल था जबकि कम्मीगिरी की कड़ी आलोचनाएं की जाती थीं। परन्तु अभी तक क्रान्तिकारी आन्दोलन को कोई बल नहीं मिला था।

इल्या निकोलायेविच की प्रतिभा तथा उनके स्वभाव की जानकारी के लिए 'सोव्रेमेन्निक'* नामक पत्रिका पढ़ना चाहिए। इस पत्रिका का सम्पादन नेक्रासोव तथा पनायेव ने संयुक्त रूप से किया था तथा इसमें बेलीन्स्की, चेरनिशेव्स्की तथा दोब्रोलूबोव ने अपने अपने लेख प्रकाशित करवाये थे। व्लादीमिर इल्यीच तथा उसकी सबसे बड़ी बहन आन्ना प्रायः बताया करती थी कि इल्या निकोलायेविच नेक्रासोव की कविताओं को कितना पसन्द करते थे। अध्यापक के रूप में दोब्रोलूबोव की कृतियां वे विशेष रूप से पढ़ा करते थे। उस काल में अध्यापन का पेशा कम्मीगिरी के विरुद्ध मोर्चा संघटित करने का एक अखाड़ा था। १८५६ में व्ला० दाल ने जिसने 'महान जीवित रूसी भाषा का कोष' का संकलन किया था, कृषकों के मध्य अपनाई जाने वाली शिक्षा-पद्धति का तीव्र विरोध किया था। स्कूलों में बूर्सा पद्धति** के अनुसार शिक्षा दी जाती थी। स्वयं पाठ-शालाओं में भी, जहां समृद्ध लोगों तथा अधिकारियों के बच्चों को ही शिक्षा मिलती थी, बेंत लगाने की प्रथा आम तौर से प्रचलित थी।

हम सब जानते हैं कि उन दिनों दोब्रोलूबोव ने कम्मीगिरी के ज़माने में दी जाने वाली शिक्षा-प्रणाली के खिलाफ़ कितनी सख्त आवाज़ उठाई थी। १८६१ में, २५ वर्ष की अवस्था में उसकी मृत्यु हो गई। १८५७ में प्रकाशित उसके 'शिक्षा के क्षेत्र में अधिकार का महत्व' शीर्षक लेख

*'सोव्रेमेन्निक'—एक प्रगतिशील, सामाजिक एवं राजनीतिक मासिक पत्रिका, जिसकी संस्थापना पुश्किन ने, १८३६ में, पीटर्सबर्ग में की थी।—सं०

**बूर्सा—ज़ारकालीन रूस की एक धार्मिक शिक्षण संस्था जिसकी विशेषताएं थीं—सख्ती करना, दंड देना और क्रूरता बरतना।—सं०

में कम्मीगिरी की प्रथा के अधीन स्कूलों में व्याप्त गुलामी की दशाओं में अध्यापक के अधिकार की तुलना उस अधिकार से की गई थी जो किसी ऐसे अध्यापक को मिला हो जिसने अपने विद्यार्थियों का सम्मान पाया हो। दोब्रोलूबोव ने अपने लेख में विश्वास उत्पन्न करने के संबंध में पिरोगोव का उद्धरण दिया था जो इस प्रकार है: "... किसी व्यक्ति में विश्वास आसानी से नहीं उत्पन्न किया जा सकता। विश्वास केवल उन्हीं व्यक्तियों में पैदा हो सकता है **जिन्हें बाल-काल से ही स्वयं अपना सूक्ष्म निरीक्षण करने की शिक्षा मिली हो**, जिन्हें बचपन से इस बात की शिक्षा मिली हो कि **सत्य क्या है, ईमानदारी के साथ उसे किस प्रकार व्यवहार में लाया जा सकता है और उन्हें अपने अध्यापकों तथा स्कूल के साथियों के साथ किस प्रकार खुल कर तथा निष्कपटता से बर्ताव करना चाहिए**।" दोब्रोलूबोव ने आगे कहा है कि "प्रायः विद्यार्थियों को अध्यापकों के विद्याभिमान के कारण नुक़सान उठाना पड़ता है। अध्यापक होने के नाते वह विद्यार्थी को अपनी ऐसी निजी वस्तु समझने लगता है जिसके साथ इच्छानुसार कोई भी सुलूक किया जा सकता है।" परन्तु ऐसा करने में "वह एक आवश्यक बात भूल जाता है– जिन बच्चों को वह शिक्षा दे रहा है उनका वास्तविक जीवन और उनका स्वभाव..." इस लेख में दोब्रोलूबोव ने इस बात की बड़े तीव्र शब्दों में भर्त्सना की थी कि विद्यार्थियों को ग़ुलामों और अंधों की भांति अध्यापकों की अधीनता में क्यों रखा जाता है? उसने लिखा था, "क्या यह बताने की भी कोई ज़रूरत है कि **बिना शर्त** आज्ञा पालन कराने की ज़िद से बच्चे के आचरण का स्वाभाविक विकास कितना अवरुद्ध हो जाता है।"

इसी लेख में दोब्रोलूबोव ने कहा था कि यदि बिना शर्त आज्ञा पालन वाली बात पर दृष्टि डाली जाय तो यह आवश्यक है कि अध्यापक भी सर्वथा निर्दोष होना चाहिए। उसने लिखा था: "यदि हम यह मान भी लें कि अध्यापक सदा ही विद्यार्थी के व्यक्तित्व से ऊपर रहेगा

(परन्तु ऐसा सदा नहीं होता) तो वह समस्त पीढ़ी से तो ऊपर नहीं उठ सकता। बच्चे को नये वातावरण में रहना है। उसके जीवन-यापन की दशाएं वही नहीं होंगी जो २०-३० साल पहले थीं जब स्वयं उसका अध्यापक विद्यार्थी के रूप में पढ़ रहा था। साधारण अध्यापक नये युग की आवश्यकताओं का न केवल पूर्वानुमान ही नहीं कर सकता अपितु उन्हें समझ भी नहीं पाता और उन्हें बेकार की चीज़ मान लेता है।"

इस लेख में दोब्रोलूबोव ने शल्य-चिकित्सक तथा शिक्षक प्रोफ़ेसर पिरोगोव के सुविचारों को अपनाये जाने पर ज़ोर दिया था। परन्तु जब प्रतिक्रियावादियों से प्रभावित हो जाने के बाद पिरोगोव ने इस बात पर ज़ोर दिया कि शान्ति और व्यवस्था के प्रति सम्मान की भावना पैदा करने के निमित्त विद्यार्थियों को सज़ा दी जानी चाहिए (जिसमें बेंत लगाने और स्कूल से निकाले जाने की सज़ा भी सम्मिलित है) तो दोब्रोलूबोव ने अपनी पूरी शक्ति से उसका भी विरोध किया था।

नेक्रासोव ने, जिनकी रचनाओं के शौक़ीन लेनिन के पिता, इल्या निकोलायेविच थे, 'दोब्रोलूबोव की स्मृति में' एक कविता लिखी थी जिसका भाव इस प्रकार था—

कभी न पूरी कीं इच्छाएं अपने मन की,
तुम स्वदेश को प्यार रहे करते नारी सा—
अपनी चाहें,
अपनी कला,
और श्रम-कौशल जैसे उसपर वार दिया था;
शुद्ध और निर्मल आत्माएं
तुमने कर दीं एकत्रित मां के मंदिर में,
और त्रस्त, संतप्त देश का आवाहन कर
स्वप्न कि सौंपे नव-जीवन के,
सुख-समृद्धि के,

स्नेह-प्यार के,
और, अलौकिक-स्वतंत्रता के।
किन्तु, न समय अधिक मिल पाया
और, दुखद-अंतिम क्षण आया—
हाय, मृत्यु ने प्राण हर लिये—
रह न गया मस्तिष्क कि जिसकी
वाणी में थी शक्ति अनूठी—
रह न गया वह हृदय कि जो
कलपा-तड़पा
इस मानवता को मुक्ति दिलाने के
हित सत्वर।

इल्या निकोलायेविच दोब्रोलूबोव की बड़ी प्रशंसा करते थे, जिसकी विचारधारा ने सिम्बीर्स्क गुबेर्निया में सार्वजनिक स्कूलों के डाइरेक्टर के रूप में उनके कार्य में, तथा उनके पुत्र, लेनिन और अन्य बच्चों की, जो सभी क्रान्तिकारी हो गये थे, पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था करने में उनकी बड़ी मदद की थी और वे उस विचारधारा से बड़े प्रभावित हुए थे।

जिस समय इल्या निकोलायेविच ने सिम्बीर्स्क गुबेर्निया में काम करना आरम्भ किया उस समय वहां के प्रायः सभी किसान निरक्षर थे। परन्तु उनके प्रयासों के फलस्वरूप उस गुबेर्निया के स्कूलों की संख्या बढ़ कर ४५० हो गई। उन्होंने अध्यापकों के बीच रह कर भी बहुत काम किया। स्कूल केवल आदेश दे कर ही नहीं खोले जा सकते थे। इसके लिए बहुत कुछ करना पड़ता था। एतदर्थ इल्या निकोलायेविच को गांव गांव की ख़ाक छाननी पड़ती, बैलगाड़ियों पर सफ़र करना पड़ता और रात कहीं किसी गन्दी सराय में काटनी पड़ जाती। साथ ही स्कूल खोलने के लिए उन्हें स्थानीय अधिकारियों से घंटों बहस करनी पड़ती तथा किसानों

को भी समझाना-बुझाना पड़ता। इल्यीच ग्राम-जीवन के बारे में अपने पिता से कहानियां सुना करते थे। गांव के बारे में बालक इल्यीच ने अपनी आया से, जिससे वह बड़ा स्नेह करता था, और अपनी माता से जो गांव में ही बड़ी हुई थी, विभिन्न प्रकार की जानकारी प्राप्त की थी।

इस वातावरण के बीच इल्यीच ने ग्राम-जीवन की ओर विशेष ध्यान दिया। क्रान्तिकारी के रूप में उनके द्वारा किये गये सभी कार्यों पर गांवों ने अपना विशेष प्रभाव डाला था और जब उन्होंने मार्क्सवाद का अध्ययन कर लिया उस समय भी ग्राम-जीवन संबंधी अपने ज्ञान के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि हमारे पिछड़े हुए देश रूस में भी जहां ग़रीब किसानों की संख्या अत्यधिक है, समाजवाद की विजय होगी। इसी ज्ञान के कारण उन्होंने अपने संघर्ष की ठीक ठीक रूपरेखा तैयार करने में भी, जिसके कारण हमारे देश को विजय मिली, सफलता प्राप्त की।

इल्या निकोलायेविच आस्त्राख़ान में बड़े हुए थे। वे सामाजिक प्राणी थे। सार्वजनिक स्कूलों के डाइरेक्टर के रूप में उन्होंने बहुसंख्यक 'इनारोद्त्सी' (पराये) लोगों में ज्ञान का प्रसार करने की ओर विशेष ध्यान दिया था।

'१६३७ में मुझे इवान ज़ैत्सेव का एक पत्र मिला था। ज़ैत्सेव पोलेवो-सुन्दिर (चुवाश स्वायत्त जनतंत्र) में अध्यापक थे। उन्होंने अपने जीवन के ७७ वर्षों में से ५५ वर्ष चुवाश स्कूलों में अध्यापन कार्य करने में बिताये थे। अब उन्हें 'श्रम-वीर' तथा 'प्रतिष्ठित शिक्षक' की पदवियों से सम्मानित किया गया है। वे सक्रिय सार्वजनिक कार्यकर्ता हैं। उन्होंने उन कक्षाओं को पढ़ाया है जिनका उद्देश्य निरक्षरता तथा अर्द्ध-साक्षरता दोनों ही के स्थान पर साक्षरता लाना था। वे शिक्षा क्षेत्र में काम करने वालों के संघ के चेयरमैन और ग्राम सोवियत तथा स्थानीय ट्रेड-यूनियन समिति के सदस्य थे। उन्होंने कृषि आंकड़े एकत्र किये थे, संगणना काल में

अनुदेशक के रूप में कार्य किया था और अन्तरिक्ष-विज्ञान-केन्द्रों को भी सहायता दी थी, आदि आदि।

इवान ज़ैत्सेव एक खेतिहर मज़दूर के पुत्र थे। १३ वर्ष की अवस्था तक वे बतख़ों को चराते रहे। उन्हें पढ़ने-लिखने का चाव था। अतएव स्कूल में भर्ती होने के लिए वे घर से भाग गये। सिम्बीर्स्क पहुंचने में उन्हें दो दिन लगे और यद्यपि शिक्षण-वर्ष आरम्भ हो चुका था फिर भी उन्हें इल्या निकोलायेविच उल्यानोव की सहायता से जिन्हें उस बच्चे पर दया आ गई थी, एक स्कूल में दाखिला मिल गया। अपने पत्र में ज़ैत्सेव ने एक घटना का उल्लेख किया है। यह घटना उसके स्कूल के प्रथम वर्ष की है। एक दिन जब गणित का घंटा चल रहा था इल्या निकोलायेविच कक्षा में आये। उन्होंने ज़ैत्सेव को बुलाया और उन्हें बोर्ड पर एक प्रश्न हल करने को दिया। जब ज़ैत्सेव सवाल को हल कर चुके और उसे हल करने का तरीक़ा भी उन्हें समझा दिया तो इल्या निकोलायेविच ने उससे कहा था: "शाबाश, अब अपनी जगह पर जाओ"।

इस पत्र में आगे लिखा था कि "विश्राम के घंटे के बाद हम लोगों से एक निबन्ध लिखने को कहा गया जिसका विषय था 'आज की कोई बात जिसका तुमपर प्रभाव पड़ा हो'। अध्यापक ने हमें बताया था कि हम स्कूल जीवन की किसी ऐसी घटना पर कुछ लिखें जिसे हम महत्वपूर्ण समझते हों। संक्षेप में, हम अपनी इच्छानुसार अपने भाव व्यक्त कर सकते थे।

"विद्यार्थियों ने विषय सोचने में कुछ मिनट लगा दिये। कुछ लोगों ने कुछ हास्यात्मक घटनाएं उठाईं तो कुछ ने किसी अन्य बात पर लेखनी चलाई। मुझे विषय चुनने में कोई कठिनाई नहीं हुई क्योंकि मैं इल्या निकोलायेविच का अपनी गणित कक्षा में आना और उन्हें सवाल हल करने का तरीक़ा बताना न भूल पाया था। अतएव मैंने उसी घटना के बारे में लिखने का निश्चय किया।

"मैंने लिखा: 'आज प्रातः नौ बजे डाइरेक्टर उल्यानोव पधारे। मुझे ब्लैक-बोर्ड पर बुलाया गया और एक सवाल करने को दिया गया जिसमें एक शब्द 'ग्रीवेनिक'* बार बार आया था। मैंने सवाल लिख लिया, उसे पढ़ा और इस बात पर विचार करने लगा कि इसे कैसे हल करना चाहिए। डाइरेक्टर उल्यानोव ने मुझसे कई सवाल किये और मैंने देखा कि जब भी वे 'ग्रीवेनिक' शब्द पर आते तो उन्हें 'र' का उच्चारण करने में कठिनाई होती। 'ग्रीवेनिक' के स्थान पर वे 'घीवेनिक' कहते थे। यह मुझे कुछ विचित्र-सा लगा। मैं सोचने लगा कि यहां विद्यार्थी हूं फिर भी 'र' का शुद्ध उच्चारण कर लेता हूं जबकि डाइरेक्टर, जो एक महत्वपूर्ण और विद्वान व्यक्ति हैं, 'र' का उच्चारण नहीं कर पाते और 'घ' कहते हैं।'

"इसके बाद मैंने कुछ छोटी-मोटी बातें और लिखीं और निबन्ध पूरा कर दिया। कापियां इकट्ठा की गईं और अध्यापक कलाशनिकोव को दे दी गईं।

"दो दिन बाद हमें किसी ऐसे लेख के बारे में संक्षेप में लिखना था जिसे हमने पढ़ा हो। जब हमें कापियां दी गईं उस समय हमने अपने पिछले निबन्ध के अंक देखे। कुछ विद्यार्थी खुश थे, कुछ के चेहरों से ऐसा मालूम हो रहा था कि न वे खुश हैं और न दुखी।

"कलाशनिकोव ने मेरी कापी जान-बूझ कर रोक ली थी। बाद में उन्होंने उसे मेरे ऊपर फेंकते हुए गुस्से से चिल्ला कर कहा था: 'सुअर!'

"मैंने अपनी कापी उठा ली और देखा कि मेरा निबन्ध लाल स्याही से पूरा काट दिया गया था और उसमें मुझे जीरो मिला था। नीचे अध्यापक के हस्ताक्षर थे। मैं रुआंसा-सा हो गया और मेरी आंखों

* १० कोपेक का एक सिक्का। —सं०

में आंसू छलछला आये। स्वभाव से मैं सीधा-सादा, भावुक और सच्चा व्यक्ति था। सारे जीवन मैं ऐसा ही रहा हूं।

"इल्या निकोलायेविच कक्षा में आ गये थे। हमने उनका स्वागत किया और अपना काम करते रहे। वे कक्षा में इस डेस्क से उस डेस्क की ओर जाते, कभी कहीं खड़े हो जाते और फिर काम में लगे हुए बच्चों को देखने लगते। वे मेरे डेस्क के पास भी आये। जब उन्होंने मेरा पहला निबन्ध, जो लाल स्याही से कटा था और जिसपर मुझे ज़ीरो मिला था, देखा तो मेरे कन्धे पर हाथ रखते हुए मेरी कापी उठा ली। वे उसे पढ़ने लगे। वे उसे पढ़ते जाते और मुस्कराते जाते। आख़िर उन्होंने अध्यापक को बुलाया और उससे पूछा: 'ज़रा मुझे यह तो बताइये कि आपने इस बच्चे को लाल क्रॉस से क्यों सम्मानित किया है और यह बड़ा-सा अंडा क्यों दिया है? निबन्ध में व्याकरण की कोई अशुद्धियां नहीं हैं, यह तर्कसंगत है, उसमें कोई कृत्रिमता नहीं है और उसे ईमानदारी के साथ निभाया गया है। इसका विषय भी वही है जो आपने निश्चित किया था।'

"अध्यापक महोदय हकबका गये, उनके मुंह से शब्द तक न फूटे। घबड़ा कर कहने लगे कि इस निबन्ध में ऐसी बातें थीं जो स्कूल के प्रशासन की शोभा नहीं बढ़ातीं। इसपर डाइरेक्टर उल्यानोव ने हस्तक्षेप किया और कहा: 'यह सर्वोत्तम निबन्धों में से एक है। इसे पढ़िये। विषय है, 'आज की कोई बात जिसका तुमपर प्रभाव पड़ा हो'। विद्यार्थी ने वही बात लिखी है जिसका उसपर कक्षा में प्रभाव पड़ा था। यह बहुत सुन्दर निबन्ध है।' इसके बाद उन्होंने मेरा क़लम उठाया और निबन्ध के अन्त में लिख दिया 'बहुत सुन्दर' और उसके नीचे अपने हस्ताक्षर कर दिये: उल्यानोव।

"मुझे आज भी वह घटना नहीं भूली है और शायद भूलूंगा भी नहीं। इल्या निकोलायेविच ने अपनी दयालुता, अपनी सरलता और अपनी न्यायप्रियता का परिचय दिया था।"

इल्यीच ने अपने पिता का अनुसरण किया था। पाठशाला की एक उच्च कक्षा में उन्होंने पूरे एक वर्ष तक एक चुवाश साथी को पढ़ाया था। यह व्यक्ति रूसी भाषा में पिछड़ा हुआ था। उसे पढ़ाने का उद्देश्य यही था कि वह विश्वविद्यालय की प्रवेश-परीक्षाओं में सफल हो सके। और वह सफल हुआ भी।

राष्ट्र के अल्प-संख्यकों के प्रति इल्या निकोलायेविच की सहानुभूति ने लेनिन पर उनके क्रान्ति सम्बन्धी सभी क्रिया-कलापों में विशेष प्रभाव डाला था। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि लेनिन ने सोवियत संघ के निवासियों की पारस्परिक मैत्री के क्षेत्र में कितना महान कार्य किया है।

इल्या निकोलायेविच ने इल्यीच के मनोयोग को एकाग्र करने की दिशा में दोब्रोलूबोव की विधियों का प्रयोग किया था। व्लादीमिर इल्यीच साढ़े नौ वर्ष की अवस्था में पाठशाला में दाख़िल हुए थे। उन्होंने सदैव सबसे अधिक अंक पाये और अन्त में उन्हें एक स्वर्णपदक मिला था। परन्तु यह सफलता उन्हें इतनी आसानी से न मिली थी, जैसा कि कुछ लोग सोचते हैं। इल्यीच एक ख़ुशदिल बालक था और उसे दूर दूर तक टहलना अच्छा लगता था। उसे वोल्गा और स्वीयागा नदियों से प्रेम था। तैरना और स्केटिंग उसे विशेष प्रिय थे। एक बार उन्होंने मुझे बताया था कि "मुझे स्केटिंग का बड़ा शौक़ था, परन्तु जब मुझे यह पता चला कि इससे मेरी पढ़ाई में विघ्न पड़ता है तो मैंने उसे छोड़ दिया।" पढ़ने में उन्हें बड़ी रुचि थी। पुस्तकें उनके लिए आकर्षण का केन्द्र थीं। उनसे उन्हें मनुष्यों तथा मानव-जीवन का परिचय मिलता था और उनके ज्ञान की परिधि का भी विस्तार होता था, जबकि पाठशाला की पढ़ाई नीरस थी, निर्जीव थी और विद्यार्थियों को तोता-रटन के लिए बाध्य करती थी। इल्यीच के पढ़ने का ढंग अनोखा था। पहले वे अपने पाठों को तैयार करते और फिर पढ़ने में जुट जाते। आत्मानुशासन के कारण वे अपना बहुत-सा समय नष्ट होने से बचा लिया

करते थे। पढ़ते समय वे बड़े ध्यान-मग्न रहते थे। उनकी पढ़ने की रफ़्तार बहुत तेज़ थी। टिप्पणियां तैयार करते समय वे लिखने में लगने वाला अपना बहुत-सा समय बचा लेते थे। जिन्होंने उनका हस्तलेख देखा है वे जानते हैं कि इल्यीच शब्दों के कितने संक्षिप्त रूपों का इस्तेमाल किया करते थे। इस प्रकार वे अपनी आवश्यकतानुरूप सभी कुछ लिख लेते थे और जल्दी लिख लेते थे।

उन्होंने अपनी चेतना-शक्ति का विकास करना भली भांति सीख लिया था। यदि वे कुछ करने की ठान लेते तो उसे अवश्य करते थे। उनका कह देना ही करने का संकल्प होता था। एक बार जब वे छोटे थे उन्हें धूम्रपान की लत पड़ गई थी। जब उनकी माता जी ने उन्हें सिगरेट पीते हुए देखा तो उन्हें दुख हुआ और उन्होंने उनसे यह आदत छोड़ देने के लिए कहा। इल्यीच ने वचन दे दिया कि वे सिगरेट न पियेंगे और फिर कभी उन्होंने उसे हाथ से भी न छुआ।

इल्या निकोलायेविच ने इल्यीच को परिश्रम के साथ पढ़ने की शिक्षा दी थी और उनमें वे गुण पैदा करने की कोशिश की थी जिनका आग्रह दोब्रोलूबोव ने किया था—अर्थात् स्कूल में क्या और कैसे पढ़ाया जाता है इस बारे में जानना-बूझना। अध्यापिका कशकदामोवा का, जो इल्या निकोलायेविच के अधीन काम करती थी और उनका सदैव बड़ा आदर करती थी, कहना है कि उन्हें पाठशाला तथा उसकी अध्ययन-प्रणाली और उसके अध्यापकों का मज़ाक़ उड़ाते हुए इल्यीच को तंग करना बहुत अच्छा लगता था। इल्यीच प्रायः प्राथमिक स्कूलों की कमियों के बारे में अपने पिता से वाद-विवाद किया करते थे।

कशकदामोवा का कहना है कि इल्या निकोलायेविच अपने पुत्र इल्यीच को यह सिखाया करते थे कि जीवन का सूक्ष्म अध्ययन किस प्रकार सम्भव है। परन्तु जब कभी कक्षा के समय इल्यीच अपने अध्यापकों का मज़ाक़ उड़ाने की स्वतंत्रता लेते (उदाहरणार्थ फ्रेंच अध्यापक पोर एक बार उनके

मज़ाक़ का शिकार बने थे) उस समय उनके पिता उन्हें अपने पास बुलाते और समझाते कि भले ही अध्यापक ठीक ठीक न पढ़ा पाते हों फिर भी उनके साथ अशिष्टता का व्यवहार नहीं करना चाहिए। इल्यीच ने इस विषय में पिता की आज्ञा का पालन किया था।

दोब्रोलूबोव ने बच्चों के संबंध में यह मत प्रकट किया था कि सामान्य भलाई की दृष्टि से ही किसी व्यक्ति को तथा उसके कार्यों को आंका जाना चाहिए। इल्यीच के पिता ने उनमें भी इसी गुण का समावेश करने का प्रयत्न किया था। इस प्रकार इल्यीच आत्म-प्रशंसा और अहंकार जैसे दोषों से बचे रहे।

ज़ैत्सेव के संस्मरणों से हमें पता चलता है कि इल्या निकोलायेविच कठोर परिश्रम करने पर तो ज़ोर देते ही थे साथ ही इस बात पर भी विशेष बल दिया करते थे कि बच्चों में निष्ठापूर्वक काम करने के गुणों का विकास होना चाहिए। दोब्रोलूबोव का भी यही मत था। निष्ठा इल्यीच के स्वभाव का एक अंग बन चुकी थी।

१४-१५ वर्ष की उम्र में इल्यीच तुर्गेनेव की ओर आकृष्ट हुए थे। उन्होंने मुझे बताया था कि उस समय उन्हें तुर्गेनेव की कहानी 'अन्द्रेई कोलोसोव' विशेष रूप से पसन्द थी, क्योंकि उसमें प्रेम के मार्ग में निश्छलता एवं निष्कपटता के विषय में अच्छे अच्छे विचार व्यक्त किये गये थे। उस समय मैं भी 'अन्द्रेई कोलोसोव' की भक्त थी। मैं मानती हूं कि इतना व्यापक प्रश्न इतनी आसानी से हल नहीं हो सकता, जितनी आसानी से वह पुस्तक में हल किया गया है क्योंकि यह प्रश्न केवल निश्छलता एवं निष्कपटता से ही तो सम्बद्ध नहीं है। इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि मनुष्य के प्रति उदार अनुभूतियों का प्रदर्शन हो और उनकी ओर ध्यान दिया जाय। हम युवक-युवतियों के लिए, जो मध्यम श्रेणी के लोगों में चारों ओर धन के लिए विवाह करने की तत्कालीन व्यापक प्रवृत्ति देखते थे और इसके फलस्वरूप कपट और प्रपंच का जो वातावरण छाया हुआ था, 'अन्द्रेई

कोलोसोव' एक प्रिय पुस्तक साबित हुई। इसके पश्चात् हमने चेरनिशेव्स्की की 'क्या करना चाहिए?' पुस्तक पढ़ी और हम सब ने उसे बहुत पसन्द किया। इल्यीच ने इस पुस्तक को सब से पहले तब पढ़ा था जब वे पाठशाला में ही थे। मुझे याद है कि जब हमने साइबेरिया में इन विषयों पर वाद-विवाद छेड़ा था उस समय मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि इल्यीच को चेरनिशेव्स्की की पुस्तक का कितना व्यापक ज्ञान था। वे चेरनिशेव्स्की के प्रति तभी से आकृष्ट हुए थे जब से उन्होंने उसकी 'क्या करना चाहिए?' नामक पुस्तक पढ़ी थी।

इल्या निकोलायेविच ने सार्वजनिक जीवन में सक्रिय भाग लिया था। उन्होंने अपनी पूरी शक्ति से उस अज्ञान के विरुद्ध मोर्चा लिया था जो जनता के बीच व्याप्त था। इल्या निकोलायेविच अपने समय के सपूत थे। अतएव जिन चीज़ों ने उनके बच्चों अलेक्सान्द्र और व्लादीमिर को प्रभावित किया था—चेरनिशेव्स्की के लेखानुसार—वे थीं: १८६१ का सुधार जो जागीरदारों के हित में किया गया था; भूमि विमोचन भुगतान* तथा किसानों की सर्वोत्तम ज़मीनें हथिया लेना—उनसे इल्या निकोलायेविच बहुत अधिक प्रभावित नहीं हुए थे। उनके लिए तो अलेक्सान्द्र द्वितीय ज़ार उद्धारक के रूप में था। इल्यीच कहते थे कि जब पिता जी को ज़ार की हत्या के समाचार मिले थे उस समय वे बहुत घबड़ा गये

*'१९ फ़र्वरी १८६१ के स्टैट्यूट' के अनुसार—उस वर्ष रूस में कम्मीगिरी की प्रथा का उन्मूलन हुआ था—किसानों को उन ज़मीनों के लिए ज़मींदारों को धन देना होता था जो उन्हें दी जाती थीं। कुल मिला कर यह धन ऐसी ज़मीनों के वास्तविक मूल्य से बहुत अधिक होता था अर्थात् २ अरब रूबल। इन भुगतानों को दिये जाने पर किसान न सिर्फ़ उस ज़मीन का मूल्य चुकाते थे जिसे वे दीर्घ काल से जोता बोया करते थे बल्कि अपनी निजी आज़ादी का मूल्य भी चुका देते थे।—सं०

थे। उन्होंने तत्काल अपने कपड़े पहने और मृतक-आत्मा की शांति के लिए की जाने वाली सामूहिक प्रार्थना के लिए गिरजाघर की ओर चल दिये। उस समय इल्यीच केवल ११ वर्ष के थे परन्तु अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या का समाचार, जो सारे नगर में बिजली की तरह फैल गया था, बच्चों तक में जोश भर देने के लिए पर्याप्त था। इसके पश्चात् इल्यीच – जैसा उन्होंने स्वयं मुझे बताया था – सभी प्रकार की राजनैतिक वार्ताओं को बड़े ध्यानपूर्वक सुनते रहे।

इल्यीच ने बालोपयोगी वे सभी पत्र-पत्रिकाएं तथा पुस्तकें पढ़ी थीं जिन्हें उनके पिता बच्चों के लिए मंगाया करते थे। इन पत्रिकाओं में 'बाल-शिक्षा'* भी एक थी। उन दिनों की बालोपयोगी पत्र-पत्रिकाओं में अमेरिका, तुर्की से युद्ध और बालकन संबंधी विषयों पर बहुत कुछ लिखा जाता था। यहां यह उल्लेखनीय है कि १८६१-१८६५ तक के वर्षों में अमेरिका के उत्तरी तथा दक्षिणी राज्यों के बीच नीग्रो-गुलामी-प्रथा का उन्मूलन करने के लिए गृह-युद्ध हो रहे थे। वास्तव में यह युद्ध पूंजीवाद के और अधिक व्यापक प्रसार के लिए मार्ग प्रशस्त करने के उद्देश्य से हो रहा था। परन्तु युद्ध किया जा रहा था स्वतंत्रता बनाये रखने के नाम पर। इल्यीच के एक सहपाठी कुज़नेत्सोव का कहना है कि साहित्य पर वे सदा अच्छे अच्छे निबन्ध लिखा करते थे। उन दिनों उस पाठशाला के, जहां इल्यीच पढ़ा करते थे, डाइरेक्टर फ़० म० केरेन्स्की थे (फ़० म० केरेन्स्की सामाजिक-क्रान्तिकारी तथा १९१७ की अस्थायी सरकार के प्रधान-मंत्री अ० फ़० केरेन्स्की के पिता थे)। वे स्कूल में साहित्य पढ़ाया करते थे। केरेन्स्की इल्यीच के निबन्धों पर सदा सब से अधिक अंक दिया करते थे। एक बार निबन्ध की कापी लौटाते समय केरेन्स्की ने इल्यीच से कुछ

*'बाल-शिक्षा' – उदारवादी बालोपयोगी पत्रिका जो ज़ारशाही रूस में १८६६-१९०६ में प्रकाशित की गई थी। – सं०

रूखे शब्दों में कहा था: "ये दलित वर्ग हैं कौन जिनके बारे में तुमने लिखा है?" अन्य विद्यार्थी यह जानने को उत्सुक थे कि इल्यीच को केरेन्स्की ने कितने अंक दिये हैं। परन्तु बाद में पता चला कि उन्हें सब से अधिक अंक मिले थे।

उल्यानोव का परिवार बड़ा था। उसमें ६ बच्चे थे। वे जोड़ों में बड़े हुए। सब से बड़े आन्ना और अलेक्सान्द्र, फिर व्लादीमिर और ओल्गा और अन्ततः दिमीत्री तथा मारिया। इल्यीच ओल्गा से बड़ा स्नेह करता था। बचपन में दोनों साथ साथ खेलते थे और बड़े होने पर दोनों ने मार्क्सवाद का अध्ययन भी साथ साथ किया था। १८९० में वह महिलाओं के उच्च पाठ्यक्रमों में भर्ती होने के लिए पीटर्सबर्ग चली गई थी। दुर्भाग्यवश उसे टाइफ़स हो गया और १८९१ में वह मर गई।

अलेक्सान्द्र का, जो क्रान्तिकारी हो गये थे, इल्यीच पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। आन्ना और अलेक्सान्द्र 'ईस्क्रा'* कवियों (कूरोचकिन भ्राता, मिनायेव, जूलेव तथा अन्य लोग) की ओर आकृष्ट हुए थे। इन कवियों को चेरनिशेवियन कवि कहा जाता था। इन लोगों ने सामाजिक जीवन तथा नैतिक क्षेत्र में भूदासत्व से चिपके रहने वालों का बड़ा विरोध किया था और यह स्पष्ट कर दिया था कि यह प्रथा अत्यधिक "अपमानजनक, बुरी तथा दोषपूर्ण" है। आन्ना को 'ईस्क्रा' कवियों की कविताएं याद थीं और स्वयं भी वह कविता करती थी। उसे यह कविताएं आजीवन याद रहीं। उसके जीवन के अन्तिम दिनों में, जब फ़ालिज़ के कारण वह खाट से चिपक गई थी, मुझे दफ़्तर से आने के बाद प्रायः उससे बातें करने का अवसर मिल जाता था और हम दोनों चाय पीते समय 'ईस्क्रा' कवियों के बारे में वाद-विवाद छेड़ दिया करती थीं। उस समय यह देख

*'ईस्क्रा' – क्रान्तिकारी-जनवादी रूसी व्यंग-पत्रिका, जो पीटर्सबर्ग में १८५९-१८७३ में प्रकाशित हुई थी।

कर मुझे आश्चर्य होता था कि उसकी स्मृति तेज़ है। उसे ऐसी ढेरों कविताएं याद थीं जो उस काल के बुद्धिजीवी लोगों के गले का हार बनी हुई थीं। साइबेरिया में इल्यीच के साथ अपने निर्वासन काल में मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ था कि उन्हें 'ईस्क्रा' कवियों की कविताओं के विषय में कितना अधिक ज्ञान था।

'ईस्क्रा' कवि अनर्गल तथा बेकार की बातों का सदा उपहास किया करते थे। ऐसी बातें अलेक्सान्द्र तथा इल्यीच को भी पसन्द नहीं थीं। जब कभी इन भ्राताओं से मिलने और उनसे बेकार की बातें करने के लिए कई संबंधी एक साथ आ टपकते उस समय उनका प्रिय वाक्य यह होता था: "अपनी अनुपस्थिति से हमें प्रसन्न करने की कृपा करें।" अलेक्सान्द्र को पीसरेव के लेख पढ़ना विशेष प्रिय था और उन्हें पीसरेव के प्राकृतिक विज्ञान विषयक लेखों में, जिनमें धर्म का विरोध किया जाता था, ख़ास दिलचस्पी थी। उस समय पीसरेव की कृतियां प्रतिषिद्ध घोषित कर दी गई थीं। इल्यीच भी, जो उस समय केवल १४-१५ वर्ष का बालक था, पीसरेव के लेखों को चाट जाया करता था। कहना चाहिए कि १८५६ में दोब्रोलूबोव ने अन्तिम रूप से धर्म को तिलांजलि न दी थी और इल्या निकोलायेविच भौतिक-विज्ञान तथा अन्तरिक्ष-विज्ञान के अध्यापक होते हुए भी आजीवन ईश्वर में विश्वास करते रहे। उन्हें यह सुन कर बड़ा क्लेश हुआ था कि उनके पुत्रों ने धर्म का त्याग कर दिया है। अलेक्सान्द्र ने मुख्यतया पीसरेव के प्रभाव के कारण गिरजा जाना बन्द किया था। आन्ना का कहना है कि एक बार जब इल्या निकोलायेविच ने अलेक्सान्द्र से रात्रि-प्रार्थना के लिए गिरजा जाने को कहा था उस समय उन्होंने दृढ़ता के साथ इन्कार कर दिया था और फिर उनसे इस प्रकार का प्रश्न कभी न किया गया। इल्यीच ने अपने पिता तथा उनके एक अध्यापक मित्र की बातचीत का हवाला देते हुए बताया था कि उनके पिता ने अपने मित्र से कहा था कि मेरे बच्चे गिरजे के पुजारी नहीं हैं। उस समय इल्यीच जिनकी उम्र १४-१५

की रही होगी, वहां मौजूद थे परन्तु बातचीत शुरू होते ही पिता ने उन्हें किसी काम से खिसका दिया था। जब वे वापस आये तो पिता जी के मित्र ने मुस्कराते हुए उनसे कहा था: "इसे छड़ी लगाइये, छोड़िये नहीं।" यह सुन कर इल्यीच ने उसी समय धर्म से अपना संबंध विच्छेद कर लेने का निश्चय कर लिया था। वे भागते हुए बाग़ में गये, और अपना क्रॉस, जिसे वे गले में पहने हुए थे, उतार कर वहीं फेंक दिया।

अलेक्सान्द्र विश्वविद्यालय में प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने के लिए पीटर्सबर्ग गये थे। वहां उनका रुझान क्रान्तिकारी कार्यों की ओर हुआ और यह बात उन्होंने आन्ना तक से न बताई थी। जब वे गर्मियों की छुट्टियों में घर आये उस समय भी उन्होंने इसके बारे में किसी को न बताया था। इस बीच इल्यीच में यह उत्कंठा होने लगी थी कि वे अपने उन विचारों को जो बार बार उनके मस्तिष्क में आते जाते थे किसी के सामने रखें और उनपर विचार-विमर्श करें। पाठशाला में ऐसा कोई न था जिसके साथ वे बातचीत कर सकते। एक बार उन्होंने अपने एक सहपाठी को चुना जिसके बारे में उनका ख्याल था कि वह क्रान्ति का समर्थक है। अतएव क्रान्ति के विषय में बातचीत करने के उद्देश्य से स्वियागा के किनारे किनारे टहलने का कार्यक्रम निश्चित किया गया। परन्तु यह बातचीत न हो सकी। उनका सहपाठी जीविकोपार्जन संबंधी बातें करने लगा और उसने अपना यह विचार व्यक्त किया कि मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसा पेशा चुने जिसमें सब से अधिक आमदनी हो सकती हो। इल्यीच ने मुझसे कहा था कि "यह सुन कर मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि वह लड़का जीविकोपार्जक है न कि क्रान्तिकारी। इसलिए मैंने उससे आगे कोई बातचीत न की।"

उस काल में, जब घर में अलेक्सान्द्र ने यह आख़िरी गर्मी बिताई थी, वे इल्यीच से बातचीत करना बराबर बचाते रहे। इल्यीच भी जब अपने बड़े भाई को कीड़े-मकोड़ों के संबंध में अनुसंधान करते देखते तो

सोचा करते: "यह कभी भी क्रान्तिकारी नहीं हो सकते" (अलेक्सान्द्र प्रातःकाल उठते, कुछ घंटों तक कीड़े-मकोड़ों का अध्ययन करते, उन्हें ख़ुर्दबीन से देखते और उनके सम्बन्ध में परीक्षण किया करते थे)। इल्यीच को शीघ्र ही अपनी ग़लती मालूम हो गई और जब उन्हें अपने भाई के कार्यों तथा उनकी सज़ा के बारे में मालूम हुआ तो उनपर इसका गहरा प्रभाव पड़ा।

पिता और भाई के प्रभाव के अतिरिक्त इल्यीच पर माता का भी प्रभाव बहुत अधिक पड़ा था। उनकी नानी जर्मन थीं और नाना का जन्म उक्रइन में हुआ था। उनके नाना एक विख्यात शल्यचिकित्सक थे, जिन्होंने अपनी २० वर्ष की प्रैक्टिस के अन्त में कज़ान से २५ मील दूर कोकूशकिनो गांव में एक मकान ख़रीद लिया था। यहां वे स्थानीय कृषकों का इलाज करते थे। यह शल्यचिकित्सक अपनी पुत्री को किसी संस्था में भेजने के क़ायल न थे। इसलिए उन्होंने उसे घर पर ही पढ़ाया। उनकी पुत्री आगे चल कर अच्छी संगीतज्ञ बनी। उसने अनेकानेक पुस्तकों का अध्ययन किया और जीवन के विषय में अच्छा ज्ञान प्राप्त किया था। उसके पिता ने उसे नियमित रूप से तथा परिश्रम से काम करना सिखाया था। फलतः वह एक अच्छी गृहणी बनी और अन्त में उसके यह गुण उसकी पुत्रियों में भी आ गये। विवाह करने और उसके बाद बच्चों के बीच रहने के कारण उसे बहुत कुछ करना पड़ता था। इल्या निकोलायेविच के वेतन से मुश्किल से ख़र्च चल पाता था। इसका परिणाम यह होता कि उसे अपने बच्चों और पति के लिए आराम के साधन जुटाने और गृहस्थी का काम-काज सुचारु रूप से चलाने के लिए बड़ी माथापच्ची करनी पड़ती। उसके ऐसा करने से ही उसके बच्चों का अध्ययन ठीक से चलता रहा, और वे सदाचारी बने।

अपने पति की भांति इल्यीच की माता ने भी बच्चों की पढ़ाई-लिखाई पर अधिक ध्यान दिया था। उन्होंने बच्चों को जर्मन भाषा

सिखाई। इस सम्बन्ध में इल्यीच ने हमें बताया था कि छोटी कक्षाओं में उनके जर्मन अध्यापक उनके जर्मन भाषा के ज्ञान के कारण उनकी प्रशंसा करते थे। इसके पश्चात् भाषा सम्बन्धी अध्ययन की ओर, जिसमें लेटिन भाषा भी थी, इल्यीच विशेष रूप से आकृष्ट हुए। मैं समझती हूं कि उनके अन्दर संघटन की जो प्रतिभा थी वह उन्हें विरासत में माता से ही मिली थी।

माता जी स्वयं अपने उदाहरण से बड़े बच्चों को यह सिखाया करती थीं कि छोटों की देख-भाल कैसे होनी चाहिए। माता जी ने बच्चों को कुछ गाने सिखा दिये थे जिन्हें वे सब मिल-जुल कर झूमते हुए गाया करते थे। मां उनके साथ खेलती थीं। इल्यीच ने बचपन से ही अपने छोटे भाई-बहन पर देख-रेख रखना आरम्भ कर दी थी। इस सम्बन्ध में मारिया और दिमीत्री के उनके विषय में बड़े रोचक संस्मरण हैं। इल्यीच खेलों का प्रबन्ध करते और जहां छोटे बच्चों की बात होती वे खेलों के मामले में उदारता और सज्जनता का परिचय दिया करते थे।

बच्चों के साथ उनका यह निश्छल प्रेम आजीवन बना रहा। उन्हें बच्चों के साथ खेलना, उनसे हंसी-मज़ाक़ करना बेहद पसन्द था। मुझे याद भी नहीं पड़ता कि कभी उन्होंने बच्चों के साथ सख़्ती की भी थी। जब कोई अन्य व्यक्ति बच्चों के साथ सख़्ती करता तो उन्हें बुरा लगता था।

व्लादीमिर इल्यीच समझते थे कि ये बच्चे बड़े हो कर उसी काम को आगे बढ़ायेंगे जिसके लिए इल्यीच ने अपना जीवन लगाया है। बच्चों से बातचीत करते समय कभी कभी बिना किसी जवाब की प्रतीक्षा किये हुए वे उनसे कहा करते थे: "जब तुम बड़े होगे तब साम्यवादी बनोग, है न?" प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि इल्यीच ने बच्चों के कल्याण, उनके भोजन तथा शिक्षा, उनके जीवन को प्रफुल्ल तथा सुखद बनाने,

उनमें विजय के लिए अपेक्षित ज्ञान का प्रसार करने तथा आधुनिक मशीन-युग में हाथ और मस्तिष्क द्वारा आवश्यक काम करने की योग्यता पैदा करने आदि से सम्बन्धित विषयों में कितनी रुचि दिखाई थी।

इल्यीच अपनी माता जी से अत्यधिक स्नेह करते थे और उनके दुर्दिनों में तो उनकी विशेष देख-रेख रखते थे। १८८६ में उनके पिता की मृत्यु हो गई। इल्यीच ने मुझे बताया था कि माता जी ने अपने पति की, जिनका वे इतना आदर-सत्कार करती थीं, १८८६ में हुई मृत्यु के शोक को बड़े धैर्यपूर्वक सहन किया था। परन्तु जब अलेक्सान्द्र को फांसी हुई और माता जी को इतना बड़ा आघात सहना पड़ा था उस समय इल्यीच ने माता जी के साथ जिस मृदुता और विनम्रता का व्यवहार किया वह निःसंदेह सराहनीय था। अलेक्सान्द्र ने देखा था कि उनके चारों ओर किसानों की दशा कितनी दयनीय थी और जनता पर कितने अधिक अत्याचार हो रहे थे। अपने इन्हीं अनुभवों के कारण वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे थे कि ज़ारों से मोर्चा लेना अनिवार्य था। वे इल्यीच से चार वर्ष बड़े थे और १ मार्च १८८१* को जो घटनाएं हुई थीं उनके सम्बन्ध में उनकी प्रतिक्रिया इल्यीच से बिल्कुल भिन्न थी।

पीटर्सबर्ग में अलेक्सान्द्र 'नरोद्नया वोल्या' पार्टी के सदस्य बने और उन्होंने अलेक्सान्द्र तृतीय की हत्या के षड्यंत्र में सक्रिय भाग लिया। परन्तु यह प्रयत्न विफल हुआ और १ मार्च १८८७ को अपने कुछ साथियों के साथ वे गिरफ़्तार कर लिये गये। अलेक्सान्द्र की गिरफ़्तारी की खबर सिम्बीर्स्क में स्कूल की अध्यापिका कशकदामोवा को लगी थी। उसने यह समाचार इल्यीच को (जो उस समय १७ वर्ष के थे) सुनाया था क्योंकि वे उल्यानोव परिवार के सब से बड़े पुत्र थे। आन्ना भी, जो

*१ मार्च १८८१ को नरोदोवोल्त्सी ने रूसी ज़ार अलेक्सान्द्र द्वितीय को मौत के घाट उतार दिया था।—सं०

उस समय पीटर्सबर्ग में महिलाओं के उच्च पाठ्यक्रमों की छात्रा थी, गिरफ़्तार की गई। इल्यीच ने यह दुखद समाचार माता जी को सुनाया। उस समय इल्यीच ने देखा कि यह समाचार सुन कर माता जी का चेहरा बिल्कुल फक पड़ गया था। वे उसी दिन पीटर्सबर्ग जाना चाहती थीं। उस ज़माने में सिम्बीर्स्क तक रेल की लाइन नहीं आई थी। अतएव सिज़्रान तक के लिए कोच द्वारा यात्रा करनी पड़ती थी। परन्तु चूंकि कोच की यात्रा महंगी पड़ती थी इसलिए यात्रा करने वाले लोग अन्य ऐसे सहयात्रियों को ढूंढ़ लिया करते जो मिल-जुल कर कोच का किराया दे देते थे। इस प्रकार किसी एक सहयात्री पर पूरे किराये का बोझ न पड़ता। इल्यीच अपनी माता के लिए एक सहयात्री ढूंढ़ने निकले परन्तु इस समय तक अलेक्सान्द्र की गिरफ़्तारी की ख़बर सारे शहर में फैल चुकी थी। इसलिए कोई भी व्यक्ति माता जी के साथ यात्रा करने को तैयार न हुआ, यद्यपि उस समय तक नगर के सभी नागरिक स्कूलों के डाइरेक्टर की विधवा के रूप में माता जी की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। इस घटना के बाद उल्यानोव परिवार के सभी भूतपूर्व मित्रों और सिम्बीर्स्क के 'समाज' के सभी उदार व्यक्तियों ने इस परिवार से अपना नाता तोड़ लिया। माता जी के कष्टों तथा समाज के बुद्धिजीवियों के भय ने उस १७ वर्षीय युवक पर एक गहरा प्रभाव डाला। माता जी चली गईं और इल्यीच पीटर्सबर्ग के समाचारों की व्यग्रतापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए छोटे बच्चों की देख-रेख के निमित्त वहीं रह गये। अब उन्होंने अध्ययन की ओर अपना चित्त लगाया और वे समस्याओं पर सोचने-विचारने लगे। इस समय उन्होंने चेरनिशेव्स्की के ग्रन्थ देखे और उनके उद्देश्य को नये ढंग से समझा। उन्होंने अपने प्रश्नों का उत्तर पाने के लिए मार्क्स की ओर भी देखा। अलेक्सान्द्र की पुस्तकों में 'पूंजी' की भी एक प्रति थी। पिछले वर्षों में इसका अध्ययन इल्यीच के लिए एक टेढ़ी

खीर था, परन्तु अब उन्होंने उसे दूने उत्साह से पढ़ना शुरू कर दिया। अलेक्सान्द्र को ८ मई को फांसी दे दी गई। इस समाचार को सुन कर इल्यीच ने कहा था: "नहीं, हम वह रास्ता नहीं पकड़ेंगे। हमें दूसरे रास्ते पर चलना आवश्यक है।" मारिया अलेक्सान्द्रोव्ना ने अपने पुत्र और पुत्री के लिए अधिकारियों को दया-प्रदर्शन के निमित्त एक अनुनय-पत्र देने का विचार किया था। लेकिन इसके पूर्व अलेक्सान्द्र का विचार जानने के निमित्त उन्होंने उनसे मुलाक़ात की। इस भेंट से माता जी को बहुत परेशानी हुई। उन्होंने अपने अनुनय-पत्र के लिए अलेक्सान्द्र की सहमति प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। परन्तु अलेक्सान्द्र ने उनसे यही कहा था: "माता जी मैं ऐसा नहीं कर सकता, ऐसा करना ईमानदारी नहीं होगी।" इसपर माता जी ने आगे ज़िद न की और पुत्र से विदा लेते समय कहा: "हिम्मत रखो!" जब उनके पुत्र ने न्यायालय में अपना वक्तव्य दिया उस समय भी वे वहीं पर थीं।

आन्ना को रिहा करके कज़ान के समीप कोकूशकिनो गांव में पुलिस की निगरानी में रहने के लिए भेज दिया गया था। माता जी में इन संकटों के कारण कुछ परिवर्तन हो गये थे। अब वे अपने बच्चों के क्रांतिकारी कार्यों के निकट आ गई थीं। बच्चे भी उन्हें पहले से अधिक प्रेम करने लगे थे।

१८९९ में माता जी पीटर्सबर्ग आईं। इस बार वहां जा कर उन्हें यह प्रयत्न करना था कि इल्यीच को येनिसी गुबेर्निया से विदेश जाने की अनुमति मिल जाय, और यदि सम्भव न हो तो उन्हें राजधानी के आसपास ही कहीं रहने दिया जाय। तत्कालीन पुलिस विभाग के अध्यक्ष ज़्वोलान्स्की ने माता जी से कहा था: "आपको अपने बच्चों पर गर्व करना चाहिए, एक लटका दिया गया है और दूसरा भी उसी क़ाबिल है।" यह सुन कर मारिया अलेक्सान्द्रोव्ना उठ खड़ी हुईं और उन्होंने

बड़े स्वाभिमान के साथ ये शब्द कहे थे : "जी हां मुझे अपने बच्चों पर गर्व है।"(इस बातचीत के समय म० ब० स्मिर्नोव मौजूद थे। उन्होंने 'सोवेत्स्की यूग' नामक समाचारपत्र में इस घटना का उल्लेख किया है।) इल्यीच अपनी माता की असीम संकल्प-शक्ति की प्राय: सराहना किया करते थे। उनका कहना था : "अच्छा हुआ कि अलेक्सान्द्र की गिरफ़्तारी के पूर्व ही मेरे पिता की मृत्यु हो गई। यदि वे जीवित होते तो पता नहीं क्या हो गया होता।" इसके पश्चात् मैं भी मारिया अलेक्सान्द्रोव्ना से मिली थी, उदाहरणार्थ १८९५ में, जब इल्यीच प्राथमिक निरोध कारागृह में बीमार पड़े थे और वे उनसे मिलने आई थीं। उस समय मुझे मालूम हुआ कि इल्यीच अपनी माता से क्यों इतना प्रेम करते थे। 'सम्बन्धियों को पत्र' शीर्षक पुस्तक में माता जी को लिखे गये पत्रों की प्रत्येक पंक्ति से माता जी के प्रति उनके प्रेम और उनकी विनम्रता का परिचय मिलता है। यह उल्लेखनीय है कि इस पुस्तक के पत्रों का चयन इल्यीच की बहन मारिया ने किया था और उसी ने उन्हें प्रकाशनार्थ संकलित भी किया था।

इल्यीच पर अपनी माता के सहनशील स्वभाव का बराबर प्रभाव पड़ता रहा। यद्यपि भाई की मृत्यु से उनके हृदय पर भी आघात हुआ था, फिर भी उन्होंने अपने आप पर नियंत्रण रखा और अपनी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त की। पाठशाला की पढ़ाई समाप्त करने पर स्कूल की ओर से उन्हें एक स्वर्ण-पदक दिया गया था।

ग्रीष्म ऋतु में उल्यानोव परिवार कज़ान आ गया और इल्यीच ने उसी विश्वविद्यालय में नाम लिखाया जहां उनके पिता उनसे पहले अध्ययन कर चुके थे।

व्ला० इ० लेनिन की मृत्यु पर महिला श्रमिकों और किसान महिलाओं से अपील

('प्राव्दा,' ३० जनवरी १६२४)

साथी श्रमिको और किसानो, स्त्रियो तथा पुरुषो! मैं आपसे अनुरोध करूंगी कि आप मुझपर एक मेहरबानी करें। इल्यीच की मृत्यु से आपके दिलों को जो धक्का पहुंचा है वह कहीं उनके गुणानुवाद का रूप न ले ले। आप उनकी यादगार में स्मारक न बनायें, उनके नाम पर बड़े बड़े प्रासादों के नाम न रखें, उनकी याद ताज़ी रखने के लिए मीटिंगें न करें। उन्होंने इन सब की ज़िन्दगी भर परवाह न की। उन्होंने ये सारी चीज़ें कभी पसन्द न कीं। याद रखिये हमारा देश कितना ग़रीब है, उसके लिए हमें कितना कुछ करना है। अगर आप व्लादीमिर इल्यीच की इज़्ज़त करना चाहते हैं तो शिशु-गृह, किंडरगार्टन, मकान, स्कूल, पुस्तकालय, चिकित्सालय, अस्पताल, पंगुगृह आदि बनाइये। हमें अपने हर काम में उनकी इच्छा की पूर्ति करनी चाहिए। यही मुख्य चीज़ है।

हमें इल्यीच से सीखना है

('श्रमिक और किसान संवाददाता' पत्रिका, अंक १, १६२८)

एक दिन, जब हम अपने एक निकट के साथी को दफ़ना रहे थे, मैंने एक वाक्य देखा था: "नेता मरते हैं लेकिन उनके उद्देश्य अमर रहते हैं।" यह कितना सच है!

इल्यीच को मरे अब चार वर्ष हो चुके हैं। लेकिन वे उद्देश्य, जिनके लिए उन्होंने अपने शरीर और अपनी आत्मा का उत्सर्ग किया था, आज भी जीवित हैं और फल-फूल रहे हैं।

इन चार वर्षों में इल्यीच के विचार, उनके कहे गये शब्द और उनके कार्य हमारे सोवियत संघ के दूर से दूर के क्षेत्रों तक पहुंच चुके हैं। फलतः वे जनता के और भी निकट हो गये हैं, उनके दुलारे बन चुके हैं।

इल्यीच के लेखों और भाषणों को पढ़ कर, और पुनः पढ़ कर, पार्टी का सदस्य उनमें उन प्रश्नों का उत्तर पा लेता है जो उसके दिमाग़ को मथा करते रहे हैं। इसके अलावा अपने संघर्ष में, अपने कार्यों में भी उसका पथ-प्रदर्शन होता है।

और इसी प्रकार श्रमिकों और किसानों के संवाददाताओं का भी पथ-प्रदर्शन होगा।

सच पूछो तो स्वयं इल्यीच श्रमिकों और किसानों के एक उत्कृष्ट कोटि के संवाददाता थे। उन्होंने जीवन का अध्ययन बहुत निकट से किया था, उन बातों पर ध्यान दिया था जिनके संबंध में दूसरे लोग उदासीनता बरतते थे, और श्रमिकों के हितों की दृष्टि से हर छोटे छोटे ब्योरे का मूल्यांकन किया था। बाद में उन्होंने अपने लेखों में बड़े विस्तार के साथ उन सब बातों का भी विश्लेषण किया था जो उन्होंने देखी-सुनी थीं। उन्होंने इन छोटे छोटे ब्योरों का उपयोग बड़ी बड़ी समस्याओं को सुलझाने में भी किया था।.

१८९५ में लेनिन और उनके दूसरे साथियों ने पीटर्सबर्ग से एक अवैध अख़बार निकालने का निश्चय किया। इस अख़बार का नाम था 'रबोचेये देलो'। उस समय श्रमिक वर्ग का आन्दोलन अपनी शैशवावस्था में था। अधिकांश श्रमिक तो यह भी नहीं समझ पाते थे कि उनके निम्न कोटि के रहन-सहन का कारण क्या है, कि उन्हें पूंजीवादियों के विरुद्ध संघर्ष करना चाहिए और ज़ारशाही से मोर्चा लेना चाहिए। 'रबोचेये देलो' का उद्देश्य श्रमिकों को यह दिखाना था कि वे कैसे रह रहे हैं, यह समझाना था कि उनके इस हीन रहन-सहन का कारण क्या है और इसलिए

उनकी सहायता करना था कि वे अपने इर्द-गिर्द की बातें साफ़ साफ़ देख सकें। इल्यीच श्रमिकों के एक नियमित संवाददाता बने। वे श्रमिकों के पास जाते थे, उनसे भेंट करते थे। अपने संस्मरणों में एक श्रमिक ने लिखा है कि इल्यीच हमपर प्रश्नों की बौछार किया करते थे, छोटे छोटे और मामूली विषयों पर भी, और इन प्रश्नों का जवाब देते देते हमें पसीना आ जाता था।

श्रमिकों के संवाददाता बन जाने पर इल्यीच ने अपने दूसरे सभी साथियों को भी अपने संवाददाताओं की सूची में रख लिया था। ये लोग बैठे बैठे घंटों उन सूचनाओं पर बहसें किया करते जो उन्हें मिलती थीं। लेनिन हमेशा सच्चे तथ्यों पर ही ज़ोर देते थे, ऐसे तथ्यों पर जिनकी अच्छी तरह जांच-पड़ताल हो चुकती थी। इस प्रकार दूसरों के सामने उन्होंने एक अनुकरणीय आदर्श प्रस्तुत किया था। इन लोगों को हमेशा ही अधिक और अधिक सूचनाएं संग्रहीत करनी पड़ती थीं। परिणामतः यह समुदाय श्रमिक संवाददाताओं का एक नियमित समुदाय बन गया था। हम सब को ऐसा लगता था कि इल्यीच के निर्देशन में हम आंख खोल कर देखना सीख रहे हैं और विशेषज्ञ संवाददंदाता बन रहे हैं। इस बात पर कितनी ही बहसें होती थीं कि लिखने का सब से अच्छा ढंग क्या है। और हम सब इस बात से सहमत थे कि लेखों में तथ्य अधिक हों और तर्क-वितर्क कम।

पीटर्सबर्ग में इल्यीच एक श्रमिक संवाददाता थे। निर्वासन काल में वे किसानों के संवाददाता बने। किसान जानते थे कि वे एक न्यायविद् हैं और उनसे सलाह-मशविरा करते थे। इल्यीच उन्हें तत्काल अपनी राय देते और साथ ही उनसे उनके रहन-सहन और कामों वग़ैरह के बारे में भी पूछते। इस प्रकार उन्हें जो उत्तर मिला करते थे उनसे उन्होंने ढेरों ज़रूरी सूचनाएं संग्रहीत कर ली थीं।

विदेशों में इल्यीच ने जर्मन, फ़ांसीसी और अंग्रेज़ श्रमिकों की जीवन-चर्या का भी अध्ययन किया था।

अभी हाल ही में, यानी अक्तूबर क्रान्ति की दसवीं वर्षगांठ से कुछ ही पहले, मैंने अप्रैल से लेकर नवम्बर १९१७ तक के इल्यीच के भाषणों और लेखों को फिर से पढ़ा था। इन सब से पता लगता है कि उनकी पर्यवेक्षण बुद्धि कितनी सूक्ष्म थी। आप उनके उस भाषण को पढ़ें जो उन्होंने रूस लौटने के तीन सप्ताह बाद पार्टी सम्मेलन में दिया था। इससे आपको पता चलेगा कि उन्होंने सैनिकों और श्रमिकों तथा खानों में काम करने वाले लोगों के साथ अपनी बातचीत के दौरान में कितना कुछ सीखा था। और जो बातें दूसरों को न सूझती थीं वे भी उन्होंने जानी समझी थीं।

श्रमिकों और किसानों के जो संवाददाता इल्यीच के लेखों और भाषणों का अध्ययन करते हैं यदि वे संवाददाता के रूप में किये गये उनके कार्यों पर ग़ौर करें तो उन्हें पता चलेगा कि उनमें पर्यवेक्षण की कितनी अद्भुत योग्यता थी और नवजीवन की प्रस्फुटित होती हुई कोपलों को, देश की बढ़ती हुई शक्तियों को और पुराने शासन की ताक़त और दमन को देखने-समझने की कितनी सूक्ष्म बुद्धि। इन संवाददाताओं को पता चलेगा कि इल्यीच ने अपने उद्देश्यों में जो दिलचस्पी दिखाई थी, उन्होंने श्रमिक वर्ग आन्दोलन का जिस ढंग से अध्ययन किया था और उन्हें मार्क्सवाद का जितना गहरा ज्ञान था उसके परिणामस्वरूप उनमें अभूतपूर्व दूरदर्शिता का उदय हुआ था।

वे लोग इस बात को अच्छी तरह समझ सकेंगे कि इल्यीच की इसी योग्यता ने उन्हें परिस्थिति पर (यहां ब्रेस्त शान्ति संधिपत्र* का

*ब्रेस्त शान्ति संधिपत्र एक ओर सोवियत रूस और दूसरी ओर जर्मनी, आस्ट्रोहंगरी, बल्गारिया तथा तुर्की के बीच ३ मार्च १९१८ को लिखा गया था। इसकी शर्तें बड़ी सख़्त थीं। लेकिन सोवियत राज्य

उल्लेख मात्र काफ़ी होगा) गंभीरतापूर्वक सोच-विचार करना सिखाया था, उन्हें एक ऐसा आदमी बनाया था जिसे शब्दाडम्बर से कोई लगाव न था, जो यह जानता था कि संघर्ष के लिए शक्तियां कैसे जुटाई जायं और कैसे संघटित की जायं और साथ ही जिसे जनता में अपने विचारों को कार्यान्वित करने का तरीक़ा भी मालूम था। इस दिशा में उनके अपने पर्यवेक्षणों और उन सब बातों ने उनकी बड़ी मदद की थी जो स्वयं उन्होंने देखी या सुनी थीं।

ध्यानपूर्वक निरीक्षण करने की योग्यता प्राप्त करना एक बहुत बड़ी बात है। यह गुण हमें इल्यीच से ग्रहण करना चाहिए और अगर हम एक बार भी उसमें दक्षता प्राप्त कर लें तो हम, वर्तमान परिस्थितियों में, उनके विचारों को कार्यरूप में परिणत कर सकेंगे।

वैज्ञानिक काम करने की लेनिन प्रणाली

(लेनिन विषयक संस्मरणों के संग्रह से, अंक १, १९३०)

व्लादीमिर इल्यीच ने जो भी किया पूरी तरह से किया। उन्होंने अपने कार्यों में कठिन परिश्रम किया था। वे जिस काम को जितना ही ज्यादा महत्वपूर्ण समझते थे उतना ही अधिक वे उसके सूक्ष्म ब्योरों में प्रवेश भी करते थे।

उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि १८९०-१९०० के अन्त में रूस में कोई भी अवैध अख़बार निकालना एक मुश्किल काम है। इतना होते हुए भी उन्होंने यह समझ लिया था कि संघटन और प्रचार की

को मजबूत बनाने और उसकी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए यह संधि बहुत जरूरी थी।—सं०

दृष्टि से एक राष्ट्रीय अख़बार की अत्यधिक आवश्यकता है। इस अख़बार से रूस में होने वाली घटनाओं और विकासों तथा तरुण श्रम आन्दोलन की वृद्धि आदि के संबंध में विश्लेषण किया जा सकेगा और इन सब के कारणों पर प्रकाश पड़ सकेगा। अतएव व्लादीमिर इल्यीच ने अपने कुछ साथी चुने और विदेश जाकर अपने इस अख़बार को प्रकाशित करने का निश्चय किया। व्लादीमिर इल्यीच ही वे व्यक्ति थे जिन्होंने 'ईस्क्रा' नामक अख़बार की कल्पना तथा स्थापना की थी। इस अख़बार के प्रत्येक अंक का बड़ी सावधानी के साथ संपादन किया जाता था। हर शब्द का प्रयोग तौल तौल कर होता था और सब से अधिक ख़ास बात यह थी कि व्लादीमिर इल्यीच प्रूफ़ों को स्वयं पढ़ते थे इसलिए नहीं कि उनके पास प्रूफ़-रीडर न थे (मैंने यह काम बहुत शीघ्र सीख लिया था) परन्तु इसलिए कि अख़बार में कोई ग़लतियां न रह जायं। पहले वे ख़ुद प्रूफ़ पढ़ते फिर मुझसे पढ़ने के लिए कहते, फिर और एक बार ख़ुद देखते।

और यही बात हर चीज़ के संबंध में लागू होती थी। ज़ेम्स्तवो आंकड़ों के संबंध में उन्होंने बहुत कुछ काम किया था। उनकी कापियां तालिकाओं से भरी रहतीं जिनका प्रत्येक शब्द बड़े ध्यान से लिखा जाता था। जब वे किन्हीं महत्वपूर्ण आंकड़ों के संबंध में काम करते तो कुल योगों को उस समय भी जांच लिया करते थे जब तालिकाएं छप चुकती थीं। हर तथ्य और हर आंकड़े को ध्यानपूर्वक जांचना इल्यीच की विशेषता थी। उनके सारे निष्कर्ष तथ्यों पर आधारित होते थे।

अपने निष्कर्षों को तथ्यों द्वारा समर्थित करने की कला का परिचय हमें उनकी आरम्भिक प्रचार-पुस्तिकाओं–'जुर्माने', 'हड़ताल' और 'फ़ैक्ट्री का नया क़ानून'–तक में मिलता है। इन पुस्तिकाओं में उन्होंने अपने विचारों को श्रमिकों पर थोपा नहीं अपितु जो कुछ वे कहना चाहते थे उसे तथ्यों द्वारा सिद्ध किया। कुछ लोगों का ख़्याल था कि ये पुस्तिकाएं

बड़ी लम्बी हैं। लेकिन उन्हें पढ़ कर श्रमिकों को उनकी बातों पर यक़ीन जमता था। लेनिन का एक मुख्य ग्रन्थ 'रूस में पूंजीवाद का विकास' जेल में लिखा गया था। इस ग्रन्थ में तथ्याधारित सामग्री की प्रचुरता है। लेनिन के जीवन में मार्क्स की 'पूंजी' का एक विशेष हाथ था। उन्होंने इस बात को हमेशा अपने ध्यान में रखा था कि मार्क्स अपने निष्कर्षों पर पहुंचने के पूर्व ढेरों तथ्यों का उपयोग किया करते थे।

लेनिन की स्मृति अच्छी थी लेकिन फिर भी उन्हें उसपर भरोसा न था। उन्होंने कभी भी स्मृति से तथ्यों का उल्लेख नहीं किया क्योंकि ये तथ्य निश्चित न हो कर 'अनुमानित' भी हो सकते थे। उनके तथ्य पूर्णतः ठीक निकलते थे। वे ढेरों सामग्री देखते (वे लिखते पढ़ते बहुत अधिक थे) और जिस चीज़ की उन्हें ज़रूरत होती उसे विशेष रूप से याद करने के लिए अपनी कापियों में टांक लेते। उनकी कापियां ऐसे ऐसे उद्धरणों से भरी पड़ी हैं। एक दिन 'स्वाध्याय का संघटन' शीर्षक मेरे पैम्फ़्लेट को देख कर उन्होंने कहा था कि तुमने इस बात पर ज़ोर दिया है कि सिर्फ़ उन्हीं बातों को टांका जाय जो पूर्णतः अनिवार्य हैं और यही चीज़ ग़लत है। उनकी एक दूसरी प्रणाली थी। वे जो कुछ लिख लेते थे उसे बार बार पढ़ते थे। यह बात आप उनकी कापियों में जगह जगह पर देख सकते हैं, जहां उन्होंने हाशियों में बहुत कुछ लिखा है और अपने लेखों को जगह जगह रेखांकित किया है।

अपनी ही किताबों में वे उन स्थलों को रेखांकित किया करते थे जिन्हें वे याद रखना चाहते थे। वे हाशियों पर भी टिप्पणियां लिखते थे और पुस्तक के आवरण पर उन पृष्ठों की संख्याएं लिख लेते थे जिन्हें वे अधिक ज़रूरी समझते थे। इन पृष्ठ-संख्याओं के नीचे भी वे रेखाएं बना लेते थे। जो पृष्ठ जितना ही ज़रूरी होता लाइनें उतनी ही अधिक होतीं। अपने ही लेखों को दुबारा पढ़ते समय उनपर वे कुछ टिप्पणियां

लिख लिया करते, और यदि उन्हें कभी कोई नयी बात सूझ जाती तो आवरण पर पृष्ठ-संख्या भी डाल देते। इस प्रकार इल्यीच ने अपनी स्मृति को तीक्ष्ण बनाया। उन्हें यह बात हमेशा याद रहती कि उन्होंने कब, किससे, क्या कहा था। आप देखेंगे कि उनकी पुस्तकों, भाषणों और लेखों में पुनरावृत्तियां बहुत कम हैं। यह सच है कि वर्षों बाद भी उन्होंने जो लेख लिखे और जो भाषण दिये उनमें हमें एक ही मूल विचार दिखाई पड़ता है। और यही कारण है कि उनके वक्तव्यों में भी एकरूपता तथा दृढ़ता की छाप बराबर मिलती है। साथ ही हम यह भी देखते हैं कि उनके वक्तव्य पुनरावृत्ति मात्र नहीं हैं। नई नई परिस्थितियों में प्रयोग करने अथवा भिन्न दृष्टिकोण से एक ही विषय का स्पष्टीकरण करने के लिए उनका मूल विचार हमेशा एक ही रहा। मुझे इल्यीच के साथ हुई अपनी एक बातचीत की याद है। वे बीमार थे। हम लोग उनके ग्रंथों के नव-प्रकाशित संग्रहों के बारे में, जिस प्रकार उन्होंने रूसी क्रान्ति के अनुभवों का दिग्दर्शन कराया था उसके बारे में और इस बात के महत्व पर बातचीत कर रहे थे कि हमारे विदेशी साथी भी इन अनुभवों से लाभ उठायें। हमने इस संबंध में भी बातचीत की थी कि इन ग्रंथों का उपयोग यह दिखाने के लिए भी कि किस तरह विशिष्ट ऐतिहासिक दशाओं ने मुख्य विचार के निर्वचन पर अपरिहार्य रूप से किस प्रकार अपना प्रभाव डाला था। इल्यीच ने मुझसे कहा था कि मैं एक ऐसा साथी ढूंढ़ूं जो यह काम कर सके।

किन्तु यह कार्य अभी तक पूरा नहीं हुआ।

लेनिन ने बहुत ध्यानपूर्वक उन अनुभवों का अध्ययन किया था जो क्रांतिकारी संघर्षों के दौरान में दुनिया के सर्वहारा को हुए थे। मार्क्स और एंगेल्स ने इन अनुभवों का विशेष रूप से चित्रण किया है। लेनिन ने उनके ग्रन्थों को बार बार पढ़ा और हमारी क्रांति के हर नये चरण में पढ़ा।

मार्क्स और एंगेल्स का लेनिन पर कितना ज़बरदस्त प्रभाव पड़ा था इसे सभी जानते हैं। इन रचयिताओं के ग्रन्थों ने विद्यमान परिस्थितियों का मूल्यांकन करने और हमारी क्रांति के प्रत्येक चरण की संभावनाओं को समझने में लेनिन की किस प्रकार सहायता की थी इसकी जानकारी प्राप्त करना भी ज़रूरी है। अभी तक ऐसी कोई गवेषणा पुस्तक नहीं लिखी गई जिससे इस बात का पता चलता कि दुनिया के क्रान्तिकारी आन्दोलन के अनुभवों ने घटनाओं का पूर्वानुमान करने में लेनिन की कितनी मदद की थी। जिन लोगों की दिलचस्पी इस बात में है कि लेनिन कैसे काम करते थे, मार्क्स और एंगेल्स का कैसे अध्ययन करते थे, हमारे संघर्ष का मूल्यांकन करने में उन्होंने इन लेखकों की कौन कौनसी बातें ग्रहण कीं उनके लिए तो ऐसा ग्रन्थ निश्चय ही बड़ा उपयोगी सिद्ध होगा। इस ग्रन्थ से पता चलेगा कि औद्योगिक रूप से अधिक विकसित देशों में श्रमिक वर्ग के क्रान्तिकारी संघर्षों के अनुभवों ने हमारी क्रान्ति पर कितना ज़बरदस्त असर डाला था। इससे हमें इस बात का भी ज्ञान होगा कि रूसी क्रान्ति और हमारा सारा संघर्ष तथा निर्माण संबंधी हमारा प्रयास दुनिया भर के सर्वहारा वर्ग द्वारा किये गये संघर्षों का ही एक अंग है। इससे पता चलेगा कि अन्ताराष्ट्रीय सर्वहारा संघर्ष से लेनिन ने **क्या** लिया और **कैसे** लिया। और उन्होंने उसके अनुभवों का किस प्रकार उपयोग किया। और ठीक यही बात हमें लेनिन से सीखनी चाहिए।

लेनिन अन्ताराष्ट्रीय सर्वहारा के अनुभवों का अध्ययन विशेष मनोयोग से करते थे। किसी ऐसे व्यक्ति की कल्पना करना भी बड़ा कठिन है जो संग्रहालयों को लेनिन से ज्यादा नापसन्द करता हो। संग्रहालय में रखी हुई वस्तुओं के रंग-बिरंगे पत्र और उनकी दुर्व्यवस्था को देख कर व्लादीमिर इल्यीच इस हद तक परेशान हो उठते कि दस ही मिनट बाद वे थके थके-से दिखाई पड़ने लग जाते। मुझे विशेष रूप से १८४८ की उस क्रान्ति प्रदर्शनी की याद अभी भी बनी हुई है जो पेरिसवासी श्रमिकों

के एक महल्ले के दो छोटे छोटे कमरों में हुई थी। यह महल्ला अपने क्रान्ति संबंधी संघर्ष के लिए बड़ा प्रसिद्ध हो गया था। इस प्रदर्शनी में व्लादीमिर इल्यीच ने बड़ी दिलचस्पी दिखाई थी और हर छोटी छोटी चीज़ को देख कर उनमें जोश आ जाता था। उनके लिए तो यह प्रदर्शनी संघर्ष की एक जीती-जागती तस्वीर थी। जब मैंने क्रान्ति के हमारे संग्रहालय को देखा तो मुझे इल्यीच याद आये और यह याद भी आया कि उन्होंने उस दिन पेरिस की नुमाइश की हर छोटी से छोटी चीज़ को कितने ध्यान से देखा था।

इल्यीच ने बार बार लिखा है कि अन्ताराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग द्वारा किये गये क्रान्तिकारी संघर्षों के अनुभवों का **किस प्रकार** उपयोग होना चाहिए। मुझे अच्छी तरह याद है उस अभ्युक्ति की, जो उन्होंने १९०५ की रूसी क्रान्ति के संबंध में लिखे गये कौत्स्की के 'रूसी क्रान्ति की प्रेरक शक्तियां और सम्भावनाएं' शीर्षक पैम्फ़्लेट पर की थीं। इल्यीच को यह पैम्फ़्लेट बहुत अच्छा लगा था। उन्होंने तुरन्त इसका अनुवाद कराया, अनुवाद के हर वाक्य का संपादन किया, उसपर एक जोशीली भूमिका लिखी और मुझसे कहा कि मैं इसे अविलम्ब प्रकाशित करूं और सारे प्रूफ़ ख़ुद देखूं। मुझे याद है कि किस प्रकार हमारे बड़े-से और वैंध छापेख़ाने ने इस छोटे-से पैम्फ़्लेट को कंपोज़ करने में तीन दिन से अधिक लगा दिये थे और मुझे वहां तीनों दिन प्रूफ़ के लिए घंटों इन्तज़ार करना पड़ा था। दूसरों में जोश कैसे भरा जाय यह कला इल्यीच को ख़ूब आती थी। जब उन्होंने मुझे उन विचारों के बारे में बताया था जो कौत्स्की के पैम्फ़्लेट को देख कर उनके हृदय में पैदा हुए थे, जब उन्होंने भूमिका लिखी थी, तो मैंने भी साफ़ साफ़ समझ लिया था कि मुझे अपने सारे कामों को ताक़ पर रख कर उस समय तक छापेख़ाने में बैठना होगा जब तक कि पैम्फ़्लेट तैयार नहीं हो जाता। और आज भी, जब उस बात को २० वर्ष से अधिक हो चुके हैं, मेरा

मस्तिष्क उस भूरे रंग के ग्रावरण की, टाइप ग्रौर छापेख़ाने की उन ग़लतियों की कल्पना करता है जो पैम्फ़्लेट की छपाई के समय मुझे देखनी पड़ी थी। उस समय इल्यीच के ज़ोरदार भाषणों से रूस में एक तहलका मचा हुग्रा था। मुझे इस पैम्फ़्लेट की भूमिका के ग्रन्तिम शब्द ग्रभी तक याद हैं—

"ग्रन्ततः मैं 'ग्रधिकारियों' के संबंध में दो-चार शब्द कहूंगा। बुद्धिवादी-रेडिकलों का यह गोया क्रान्तिकारी, किन्तु ग्रव्यावहारिक, दावा है कि 'हमारे लिए कोई ग्रधिकारी नहीं'; लेकिन मार्क्सवादी इस दृष्टिकोण को नहीं ग्रपना सकते।

"नहीं। सारी दुनिया में श्रमिक वर्ग एक दुष्कर एवं कठोर मुक्ति-संघर्ष में लगा हुग्रा है। इन लोगों को ऐसे व्यक्तियों की ज़रूरत है जो ग्रधिकारी हों, लेकिन बेशक इसी ग्रर्थ में कि युवक श्रमिकों को दमन ग्रौर शोषण का मुक़ाबला करने के लिए ज़रूरत है पुराने लड़ाकों के ग्रनुभवों की, उन लड़ाकों की जिन्होंने बहुत-सी हड़तालें की हैं, क्रान्तियों में भाग लिया है, ग्रौर जो क्रान्तिवादी परम्पराएं ग्रौर एक व्यापक राजनीतिक दृष्टिकोण ग्रपनाने के कारण पहले से ग्रधिक बुद्धिमान बन चुके हैं। हर देश के सर्वहाराग्रों को ज़रूरत है सर्वहारा वर्ग द्वारा ग्रारम्भ किये गये विश्वव्यापी संघर्ष के ग्रधिकार की। ग्रपनी पार्टी के कार्यक्रम ग्रौर कार्यनीति को स्पष्ट बनाने के निमित्त हमें ज़रूरत है विश्वव्यापी सामाजिक लोकतंत्र के सिद्धान्तवादियों के ग्रधिकार की। लेकिन बेशक, यह ग्रधिकार बूर्जवा विज्ञान के ग्रौपचारिक ग्रधिकार ग्रौर पुलिस के हथकंडों जैसा नहीं है। यह ग्रधिकार विश्वव्यापी समाजवादी सेना के उन्हीं रैंकों के ग्रौर भी व्यापक चतुर्दिक संघर्ष का ग्रधिकार है।"*

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ११, पृष्ठ ३७४-७५।

'रूसी क्रान्ति की प्रेरक शक्तियां और सम्भावनाएं' नामक रचना की अपनी भूमिका में व्लादीमिर इल्यीच ने लिखा था कि कौत्स्की ने उस समय रूसी क्रान्ति की ठीक ठीक सराहना की थी जब उसने यह कहा था: "हमारे लिए यही अच्छा होगा अगर हम इस बात पर राज़ी हो जायं कि हमें उन पूर्णतः नयी नयी स्थितियों और समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जो पुराने क़ायदे-क़ानूनों का अनुसरण नहीं करतीं।"* इस भूमिका में इल्यीच ने नयी स्थितियों पर पुराने क़ायदे-क़ानून लादने की सख़्त मुख़ालफ़त की थी। हम अच्छी तरह जानते हैं कि साम्राज्यवादी युद्ध और १९१७ की क्रान्ति का मूल्यांकन करने में कौत्स्की नयी स्थिति और नयी समस्याओं को समझने में विफल रहा था और इसी लिए अपने सिद्धान्तों से डिग भी गया था।

संसार के सर्वहारा वर्ग ने अपने क्रान्तिकारी संघर्ष में जो अनुभव प्राप्त किया है उसके आधार पर नयी नयी स्थितियों और समस्याओं की योग्यता प्राप्त करना और फिर नयी विशिष्ट स्थितियों के विश्लेषण में मार्क्सवाद का उपयोग करना लेनिनवाद की विशेषता है। यद्यपि इसके बारे में बहुत कुछ लिखा जा चुका है फिर भी, दुर्भाग्यवश, ठोस तथ्यों द्वारा इस पहलू का यथेष्ट विवेचन नहीं किया गया है।

क्रान्तिकारी घटनाओं के निर्धारण में भी लेनिनवादी एक विशिष्ट ढंग है जिसका उल्लेख समाचारपत्र आदि में बहुत कम हुआ है। यह है ठोस यथार्थता को देखने और संघर्षरत जनता की सामूहिक राय को स्पष्ट करने की योग्यता। लेनिन का कथन है (देखिये 'क्रान्ति की प्रेरक शक्तियां और सम्भावनाएं' की भूमिका) कि व्यावहारिक और ठोस राजनीतिक समस्याओं का हल करने के लिए इस योग्यता का होना एक निश्चयात्मक आधार है।

---

*वही, पृष्ठ ३७२।

लेनिन मार्क्स का अध्ययन कैसे करते थे

औद्योगिक दृष्टि से रूस एक पिछड़ा हुआ देश था और इसी लिए उसके श्रम आन्दोलन ने १८६०-१६०० में ही ज़ोर पकड़ना आरम्भ कर दिया था। यह वह समय था जब १८४८ की क्रान्ति और १८७१ की पेरिस कम्यून के अनुभवों से फ़ायदा उठा कर अनेक देशों के श्रमिक व्यापक रूप से क्रान्तिकारी संघर्ष कर रहे थे। मार्क्स और एंगेल्स क्रान्तिकारी संघर्ष के बीच ही पले थे और क्रान्ति रूपी अग्नि में तप कर स्वर्ण की भांति निकले थे। मार्क्सवाद ने सामाजिक विकास का पथ प्रशस्त किया था और यह सिद्ध कर दिया था कि पूंजीवाद का विघटन और उसके स्थान पर साम्यवाद की स्थापना अपरिहार्य है। मार्क्सवाद ने ही वह रास्ता दिखाया था जिसके सहारे नये नये सामाजिक स्वरूपों का विकास हो सकता है। यह वर्ग संघर्ष का, समाजवादी क्रान्ति का रास्ता था। इस संघर्ष में सर्वहारा वर्ग का क्या स्थान है यह बात भी मार्क्सवाद में समझाई गई थी। मार्क्सवाद में स्पष्ट इंगित कर दिया गया था कि सर्वहारा वर्ग की विजय अनिवार्य होगी।

मार्क्सवाद के झंडे के नीचे हमारा श्रम आन्दोलन पनपता रहा—न गुमराह हुआ, न भटका और न अंधों की ही तरह बढ़ा। लक्ष्य स्पष्ट था, मार्ग स्पष्ट था।

रूसी सर्वहारा वर्ग को अपने संघर्ष में जिस रास्ते पर चलना था उसे मार्क्सवाद से प्रकाशित करने की दिशा में लेनिन ने बड़ा काम किया। मार्क्स को मरे ५० वर्ष हो चुके हैं लेकिन मार्क्सवाद आज भी हमारी पार्टी के समस्त क्रिया-कलापों का निर्देशन कर रहा है। लेनिनवाद मार्क्सवाद का एक विस्तार-मात्र है।

लेनिन ने मार्क्स का अध्ययन कैसे किया इस विषय को स्पष्ट करना अनिवार्य प्रतीत होता है।

लेनिन को मार्क्स का अच्छा ज्ञान था। जब वे १८९३ में पीटर्सबर्ग आये थे उस समय हम लोग यह देख कर आश्चर्यचकित रह गये थे कि उन्हें मार्क्स और एंगेल्स के ग्रन्थों की कितनी अच्छी जानकारी है।

जब १८९०-१९०० में पहले मार्क्सवादी मंडलों का संघटन हुआ था उस समय उनके सदस्यों ने 'पूंजी' का पहला खंड ही पढ़ा था। यह ग्रन्थ मिल तो जाता था किन्तु इसे प्राप्त करने में बड़ी कठिनाई होती थी। जहां तक मार्क्स के दूसरे ग्रन्थों का संबंध है स्थिति स्पष्टतः बड़ी ख़राब थी। हमारे मंडल के अधिकांश सदस्यों ने 'कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र' तक न पढ़ा था। मैंने ख़ुद इसे १८९८ में (जर्मन भाषा में) उस समय पढ़ा था जब मैं निष्कासन का दंड भुगत रही थी।

मार्क्स और एंगेल्स पूर्णतः निषिद्ध थे। लेनिन ने १८९७ में 'नोवोये स्लोवो'* के लिए 'आर्थिक रोमान्टिमिज़्म का स्वरूपदर्शन' शीर्षक एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने 'मार्क्स' और 'मार्क्सवाद' शब्दों को बचाने के लिए लक्षणाओं का प्रयोग किया था। कुछ अन्यथा करने का मतलब था पत्रिका को मुसीबत में डालना।

व्लादीमिर इल्यीच मार्क्स और एंगेल्स के सारे ग्रन्थों से परिचित थे। उन्होंने इन ग्रन्थों को जर्मन और फ़्रांसीमी भाषा में प्राप्त करने का प्रयास किया। अपनी यादगार के आधार पर आन्ना इल्यीनिचना** का कहना है कि व्लादीमिर इल्यीच और उनकी बहन ओल्गा ने 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता' फ़्रांसीसी भाषा में पढ़ी थी। किन्तु उन्हें मार्क्स और एंगेल्स के अधिकतर ग्रन्थ जर्मन भाषा में पढ़ने पड़े थे। उन्होंने इनके सर्वप्रमुख

* एक पत्रिका जिसे 'क़ानूनी मार्क्सवादियों' ने अप्रैल १८९७ में अपने अधिकार में ले लिया था।—सं०

** आ० इ० उल्यानोवा-येलिज़ारोवा—यह व्ला० इ० लेनिन की बहन थीं।—सं०

ग्रौर सब से रोचक ग्रवतरणों का ग्रनुवाद ग्रपने लिए रूसी भाषा में किया था। लेनिन की पहली बड़ी पुस्तक १८९४ में ग्रवैध रूप से प्रकाशित हुई थी। इस पुस्तक का नाम था ''जनता के मित्र' क्या हैं ग्रौर वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?' इसमें उन्होंने 'कम्यूनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र', 'राजनीतिक ग्रर्थशास्त्र की ग्रालोचना में एक योग', 'दर्शनशास्त्र की निर्धनता', 'जर्मन ग्रादर्शवाद', १८४३ में मार्क्स का रूजे को पत्र, एंगेल्स के 'ऐन्टी-ड्यूरिंग' ग्रौर 'परिवार, निजी सम्पत्ति तथा राजमत्ता की उत्पत्ति के उद्धरण दिये हैं।

उन दिनों ग्रधिकांश मार्क्सवादी मार्क्स के ग्रन्थों के बारे में जानते भी न थे। 'जनता के मित्रों' ने ग्रनेक प्रश्नों को एक नये ढंग से ही स्पष्ट किया ग्रौर इस प्रकार वे बहुत ग्रधिक लोकप्रिय सिद्ध हुए।

लेनिन के दूसरे ग्रन्थ—'नरोदनिक ग्रान्दोलन का ग्रार्थिक सार ग्रौर मि० स्त्रुवे की पुस्तक में उसकी किस प्रकार ग्रालोचना की गई है'—में हमें 'लुई वोनापार्ट के ग्रठारहवें ब्रूमेर', 'फ़्रान्स में गृह-युद्ध', 'गोथा कार्यक्रम की मीमांसा' ग्रौर 'पूंजी' के दूसरे ग्रौर तीसरे खंडों के उद्धरण मिलते हैं।

ग्रपने विदेश वास में लेनिन को मार्क्स ग्रौर एंगेल्स के समस्त ग्रन्थों को पढ़ने ग्रौर ग्रध्ययन करने का मौक़ा मिला था।

लेनिन ने ग्रनात विश्वकोश के लिए १९१४ में मार्क्स की जो जीवनी लिखी थी वह इस बात का प्रमाण है कि उन्हें मार्क्स की पुस्तकों के विषय में कितना गहरा ज्ञान था। यही बात इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि उन्होंने मार्क्स का ग्रध्ययन करते समय ढेरों उद्धरण लिख लिये थे। लेनिन संस्थान के पास ऐसी ग्रनेक कापियां हैं जिनमें लेनिन ने मार्क्स के उद्धरणों का संग्रह किया था।

व्लादीमिर इल्यीच ने इन उद्धरणों का उपयोग ग्रपनी पुस्तकों में किया है। उन्होंने इन्हें बार बार पढ़ा भी था ग्रौर उनपर ग्रपनी टिप्पणियां

लिखी थीं। वे मार्क्स से न केवल परिचित ही थे अपितु उन्हें पूरी पूरी तरह समझते भी थे। १६२० में तरुण कम्यूनिस्ट लीग की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में भाषण देते हुए व्लादीमिर इल्यीच ने कहा था कि हमारे लिए यह आवश्यक है कि हम "मानव ज्ञान का अधिकांश अर्जन कर सकने की योग्यता प्राप्त करें और इस ढंग से कि साम्यवाद रट रट कर याद करने वाली चीज़ ही न रह जाय किन्तु एक ऐसी वस्तु प्रमाणित हो मानो उसे आपने अपने विचारों से प्राप्त किया है और आप इससे ऐसे निष्कर्ष निकालते हों जो आधुनिक शिक्षा की दृष्टि से अपरिहार्य समझे जाते हों।"*

लेनिन ने सिर्फ़ उन्हीं विषयों का अध्ययन नहीं किया जिन्हें मार्क्स ने लिखा था अपितु उन समस्त बातों का भी अध्ययन किया जिन्हें बूर्जवा शिविर के मार्क्स विरोधियों ने मार्क्स और मार्क्सवाद के बारे में लिखा था और लेनिन ने उन लोगों के साथ बहस करके मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों को स्पष्ट बना दिया था।

''जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?' नामक अपने पहले बड़े ग्रन्थ में (यह ग्रन्थ 'रूसकोये बोगात्सत्वो'** में छपे मार्क्सवाद विरोधी लेखों के उत्तर में था) लेनिन ने मार्क्स का दृष्टिकोण नरोदनिकों (मिख़ाइलोव्स्की, क्रिवेन्को और युझाकोव) के दृष्टिकोण के साथ रख कर तब उसपर विचार किया था।

'नरोदनिक आन्दोलन का आर्थिक सार और मि० स्त्रुवे की पुस्तक में उसकी किस प्रकार आलोचना की गई है' शीर्षक अपने लेख में

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ ४८०।

**यह एक मासिक पत्रिका थी जिसने १८६०-१६०० के आरम्भिक वर्षों में नरोदनिकों का पक्ष लिया और मार्क्सवादियों के विरुद्ध उनके संघर्षों में उनका हथियार बनी।—सं०

लेनिन ने इस बात पर प्रकाश डाला था कि स्त्रुवे का दृष्टिकोण मार्क्स से कितना भिन्न है।

लेनिन ने 'कृषिविषयक प्रश्न और मार्क्स के 'आलोचक'' (खंड ५, पृष्ठ ८७-२०२ और खंड १३, पृष्ठ १४६-१६३, चतुर्थ रूसी संस्करण) में कृषि की समस्याओं का विश्लेषण किया था। इस लेख में उन्होंने मार्क्स का दृष्टिकोण जर्मनी के सामाजिक-जनवादियों (डेविड, हर्ज़) और रूस के आलोचकों (चेरनोव, बुलगाकोव) के मतों के साथ रखा था।

"सत्य, मत-मतान्तरों का ही परिणाम है," एक फ़ान्सीसी कहावत है। इल्यीच को इसका प्रयोग करना बड़ा प्रिय था। श्रम आन्दोलन संबंधी मुख्य प्रश्नों में उन्होंने सदैव संबंधित विषयों पर वर्गवादी दृष्टिकोण और उनका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने का मार्ग अपनाया।

लेनिन ने यह कार्य एक विशिष्ट ढंग से सम्पन्न किया।

उदाहरणार्थ, इस बात का पता 'लेनिन के संकलित ग्रंथ – १६' से चलता है जिसमें उनके वे उद्धरण, अवतरण और संक्षेप मिलते हैं जो १६१७ के पहले की **कृषि समस्याओं के संबंध में** हैं।

वे बड़े ध्यानपूर्वक 'आलोचकों' के बयानों का सार लिखते, सब से अधिक विशिष्ट और स्पष्ट स्थलों को चुनते और अलग टांक लेते और फिर उनकी तुलना मार्क्स के मतों के साथ करते। विविध आलोचकों के संबंध में की गई अपनी सविस्तार आलोचना में उन्होंने सब से महत्वपूर्ण और सब से ज़रूरी समस्याओं को रेखांकित करके उनकी वर्ग-भावना का परिचय देने का प्रयत्न किया था।

लेनिन प्रायः किसी प्रश्न पर जान-बूझ कर विशेष ज़ोर दिया करते थे। उनका कहना था कि अगर बोलने वाला ठीक ठीक बोल रहा है तो वह किसी भी लहजे में, तीखेपन या रुखाई के साथ बात कर सकता है। फ़० आ० ज़ोर्गे के पत्रों के संबंध में लिखी गई अपनी भूमिका में, मेहरिंग का उल्लेख करते हुए वे कहते हैं कि "उस समय मेहरिंग का

कहना ठीक था जब उसने यह कहा था ('देर सोरगेश्चे ब्रीफ़वेचसेल') कि मार्क्स और एंगेल्स को 'सदाचरण' का कोई पता नहीं था: 'आघात करते समय न तो वे देर तक सोचते-विचारते ही और न आघात पड़ने पर तिलमिलाते ही।'"* तीखापन लेनिन की शैली का अंग था। यह आदत उन्होंने मार्क्स से सीखी थी। उन्होंने लिखा है कि "मार्क्स लिखता है कि उसने और एंगेल्स ने उस 'दयनीय' तरीक़े के खिलाफ़ बराबर मोर्चा लिया जिसके आधार पर 'सामाजिक-जनवादी'** का संचालन किया गया था। उन्होंने प्रायः अपने मतों का **तीखेपन के साथ** प्रतिपादन किया (wobei's oft scharf hergeht)।"*** इल्यीच को तीखेपन से कोई डर न लगता था। बस वे यही चाहते रहे कि जो प्रत्युत्तर दिये जायं वे विषयसंगत हों।

लेनिन को एक शब्द बड़ा पसन्द था—'नुकताचीनी'। जब तर्क विषयसंगत न होते, जब बोलने वाले अतिरेकों का इस्तेमाल करने लगते और मामूली मामूली दोष निकालने में जुट पड़ते तो लेनिन कहा करते थे: "यह क्या। यह तो नुकताचीनी है, नुकताचीनी।"

वे उस वाद-विवाद के सख़्त विरोधी थे जिसका उद्देश्य किसी प्रश्न पर पूरा पूरा प्रकाश डालने के बजाय किसी गुट के छोटे-मोटे झगड़े को तय करना अधिक रहता था। यह उल्लेखनीय है कि मेन्शेवीक लोग इस पद्धति के पक्ष में थे। उन्होंने एकमात्र अपने गुट के स्वार्थों के लिए, विशिष्ट परिस्थितियों में काम आने वाले मार्क्स और एंगेल्स के उद्धरणों

* व्ला० इ० लेनिन, मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद, मास्को, १९५३, पृष्ठ २४५।

** लासालियन अवसरवादी संघटन, 'सामान्य जर्मन श्रमिक संघ' का मुखपत्र जो बर्लिन में १८६४ से १८७१ तक प्रकाशित हुआ था।

*** व्ला० इ० लेनिन, मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद, मास्को, १९५३, पृष्ठ २४१।

का दुरुपयोग किया था। ज़ोर्गे के पत्रों की अपनी भूमिका में लेनिन ने लिखा था –

"मार्क्स और एंगेल्स की वे सिफ़ारिशें, जो उन्होंने ब्रिटिश और अमरीकी श्रमिकों के आन्दोलन के लिए की थीं, सीधे सीधे रूसी दशाओं में भी आसानी के साथ प्रयोग में लाई जा सकती हैं, ऐसा सोचने के माने यह हैं कि मार्क्सवाद का प्रयोग उसकी **पद्धति** को सुबोध बनाने के लिए नहीं, निश्चित देशों में श्रम आन्दोलन की निश्चित ऐतिहासिक विशेषताओं का **अध्ययन करने** के निमित्त नहीं अपितु गुटों के छोटे-मोटे झगड़ों, बुद्धिवादियों के चक्करों को सुलझाने के लिए है।"*

यहां हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि **लेनिन से मार्क्स का कैसे अध्ययन किया**। यह बात अंशतया उपर्युक्त उद्धरण से देखी जा सकती है। मार्क्स की पद्धति को समझना और फिर यह जानना ज़रूरी है कि कुछ विशिष्ट देशों में श्रम आन्दोलन की विशेषताओं का कैसे अध्ययन किया जाय। लेनिन ने इसे अच्छी तरह जाना-समझा था। उनके लिए मार्क्सवाद जड़ सिद्धान्त नहीं अपितु उनके कार्यों का निर्देशन करने की एक प्रणाली थी। एक बार उन्होंने कहा था: "जो मार्क्स से परामर्श करना चाहता है..." यह कितनी विशिष्ट अभिव्यक्ति है! उन्होंने खुद सतत मार्क्स से 'परामर्श किया' और क्रान्ति के सब से कठिन और संकटपूर्ण क्षणों में उसे बार बार पढ़ा। उदाहरणार्थ, मैं उनके दफ़्तर में चली जाती थी। वहां हर शख्स घबड़ाया हुआ लगता था। लेकिन इल्यीच मार्क्स में खोये रहते थे। उन्हें पुस्तक से अलग करना एक टेढ़ी खीर थी। वे मार्क्स इसलिए नहीं उठाते थे कि अपनी थकी हुई नाड़ियों को विश्राम दें, या श्रमिक वर्ग की शक्ति में अपना विश्वास जमायें, या फिर उसकी

*व्ला० इ० लेनिन, मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद, मास्को, १९५३, पृष्ठ २४९।

पूरी विजय में आस्था रखें – इनमें उन्हें काफ़ी विश्वास था। वे मार्क्स उठाते थे उससे 'परामर्श करने के लिए', श्रम आन्दोलन के समक्ष जो अनेकानेक ज़रूरी समस्याएं हैं उनका उत्तर पाने के लिए। 'दूसरी दूमा पर फ़० मेहरिंग' विषयक अपने लेख में लेनिन ने लिखा था: "कुछ लोग अपने तर्कों के लिए ग़लत उद्धरण चुनते हैं। वे छोटे छोटे प्रतिक्रियावादी बूर्जवा के ख़िलाफ़ बड़े बड़े बूर्जवा के समर्थन में सामान्य सिद्धान्तों को लेते हैं और फिर बिना किसी आलोचना के रूसी सांविधानिक-जनवादियों, रूसी क्रान्ति के संबंध में उनका इस्तेमाल करते हैं।

"मेहरिंग इन लोगों को अच्छा सबक़ देता है। जो लोग बूर्जवा क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के कार्यों के संबंध में मार्क्स की सलाह चाहते हैं उन्हें जर्मन बूर्जवा क्रान्ति के बारे में मार्क्स की राय जाननी चाहिए। हमारे मेन्शेवीक इस राय पर आंख मूंद लेते हैं। इसके कुछ माने हैं। हम देखते हैं कि इस मत में, पूर्णतया और स्पष्टतया, उस निर्दय संघर्ष की अभिव्यक्ति है जो रूसी बोल्शेवीक, रूसी बूर्जवा क्रान्ति में, **अवसरवादी** बूर्जवा के विरुद्ध छेड़ रहे हैं।"*

लेनिन का तरीक़ा था कि वे मार्क्स के उस ग्रन्थ को उठाते जिसमें **एक-सी स्थितियों** की व्याख्या रहती, वे इन स्थितियों का बड़े ध्यान से विश्लेषण करते, वर्तमान स्थिति से उनकी तुलना करते और समानताओं और विभेदों का पता चलाते। लेनिन यह सब कैसे करते थे इसका सर्वोत्तम उदाहरण है १९०५-०७ की क्रान्ति के दौरान में इस पद्धति का उपयोग।

'क्या करें?' (१९०२) शीर्षक अपने पैम्फ़्लेट में लेनिन ने लिखा था: "इतिहास ने हमारे सामने एक ऐसा तत्कालिक कार्य ला उपस्थित

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, भाग १२, पृष्ठ ३४८।

किया है जो उन सारे **तत्कालिक** कार्यों में **सब से अधिक क्रान्तिकारी** है जो किसी देश के सर्वहारा वर्ग के समक्ष हैं। इस कार्य का सम्पन्न किया जाना, न सिर्फ़ यूरोपीय अपितु (अब तो यह भी कहा जा सकता है कि) एशियाई प्रतिक्रिया के भी सब से शक्तिशाली दुर्ग का विनाश – रूसी सर्वहारा वर्ग को अन्ताराष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का अगुआ बना देगा।"*

हम जानते हैं कि १९०५ के क्रान्तिकारी संघर्ष ने रूसी श्रमिक वर्ग का अन्ताराष्ट्रीय महत्व बढ़ाया था और १९१७ में ज़ारशाही का तख़्ता पलटने से रूसी सर्वहारा वर्ग अन्ताराष्ट्रीय क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग का अगुआ बन चुका था। लेकिन यह हुआ 'क्या करें?' लिखा जाने के १५ वर्षों बाद। ९ जनवरी १९०५ को पैलेस स्क्वेयर में श्रमिकों की हत्या के बाद क्रान्ति की जो लहर उठी उसने तत्काल ही यह प्रश्न ला खड़ा किया कि पार्टी जनता को किधर ले जाय और एतदर्थ कौनसी **प्रणाली** अपनाय। और यहां फिर लेनिन ने मार्क्स से 'परामर्श किया'। उन्होंने १८४८ के फ़्रांसीसी और जर्मन बूर्जवाई-जनवादी क्रान्तियों के संबंध में मार्क्स के ग्रन्थों का पूरी तरह अध्ययन किया। ये ग्रन्थ थे: 'फ़्रांस में वर्ग संघर्ष १८४८ से १८५० तक' और फ़्० मेहरिंग द्वारा प्रकाशित मार्क्स और एंगेल्स के 'साहित्यिक उत्तराधिकार' का तीसरा खंड (जर्मन क्रान्ति के विषय में)।

जून और जुलाई १९०५ में इल्यीच ने 'जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियां' शीर्षक एक पैम्फ़्लेट लिखा था जिसमें उन्होंने बोल्शेवीकों के कार्यों का उल्लेख किया था जिन्होंने श्रमिक जनता से निरंकुशता के विरुद्ध एक सबल और अटल संघर्ष छेड़ने, और अगर ज़रूरत हुई तो निरंकुशता के विरुद्ध हथियार उठाने का अनुरोध किया

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग २, पृष्ठ २३१।

था और मेन्शेवीकों की पद्धति का उल्लेख किया था जो बूर्जवाओं के साथ अवसरवाद की नीति बरत रहे थे। लेनिन ने अपने पैम्फ़्लेट में कहा था कि ज़ारशाही को समाप्त करना ज़रूरी है। उन्होंने लिखा था कि "(नये 'ईस्क्रा' वादियों का* – न० क्रू०) सम्मेलन यह बात भूल गया कि जब तक सत्ता ज़ार के हाथों में होगी तब तक प्रतिनिधियों द्वारा किये गये समस्त निर्णय बेकार और अनर्गल प्रलाप समझे जायेंगे, वैसे ही जैसे कि १८४८ की जर्मन क्रान्ति के इतिहास में प्रसिद्ध फ़्रैंकफ़र्ट संसद के 'निर्णय' होते थे। 'नोए रैनिशे त्सैतुंग' में क्रान्तिकारी सर्वहारा वर्ग के प्रतिनिधि मार्क्स ने फ़्रैंकफ़र्ट के उदारवादी 'ओस्वोबोज्देन्त्सी'** की बड़ी निर्दयता एवं व्यंग के साथ आलोचना की थी क्योंकि जब वे बोलते तब उनके मुंह से अच्छे अच्छे शब्द निकलते, जब निश्चय करते तो यह सारे ही 'निश्चय' जनवादी होते, साथ ही वे हर तरह की आज़ादी का 'संघटन' करते, लेकिन वास्तविकता यह

* नये 'ईस्क्रा' वादी – मेन्शेवीक।

'ईस्क्रा' – लेनिन द्वारा सन् १९०० में स्थापित किया गया पहला रूसी मार्क्सवादी पत्र। सन् १९०३ में रूसी सामाजिक-जनवादी श्रमिक पार्टी की द्वितीय कांग्रेस के बाद, जब पार्टी दो भागों में – बोल्शेवीक (क्रान्तिवादी) और मेन्शेवीक (अवसरवादी) – बंट गई, 'ईस्क्रा' पर मेन्शेवीकों का अधिकार हो गया। 'पुराने' लेनिनवादी 'ईस्क्रा' से भिन्नता प्रकट करने के लिए, उसे 'नया' 'ईस्क्रा' कहने लगे। इस प्रकार नये 'ईस्क्रा' वादियों का नाम पड़ा। – सं०

** ओस्वोबोज्देन्त्सी – 'ओस्वोबोज्देनिये' बूर्जवाई उदारवादी दल के सदस्य। यह दल रूस में सन् १९०२-१९०५ में विद्यमान था। जर्मन राष्ट्रीय सभा के उदारवादी प्रतिनिधियों को लेनिन इसी नाम से पुकारते थे। – सं०

थी कि उन्होंने सारी ताक़त सम्राट के हाथों में छोड़ रखी थी। उन्होंने सम्राट के अधीनस्थ सैनिक दलों के ख़िलाफ़ कोई सशस्त्र विद्रोह नहीं किया था। और जब फ़्रैंकफ़र्ट 'ओस्वोबोज्देन्त्सी' अपने कामों में व्यस्त थे उस समय सम्राट को मौक़ा मिल गया, उसने अपनी सेनाएं संघटित कीं और वास्तविक शक्ति के आधार पर जो प्रतिक्रान्ति हुई उसने जनवादियों का, उनके अच्छे अच्छे 'निर्णयों' के होते हुए भी सफ़ाया कर दिया।"*

और व्लादीमिर इल्यीच ने यह प्रश्न सामने रखा: क्या बूर्जवा वर्ग, ज़ारशाही के साथ मिल कर रूसी क्रान्ति को पददलित कर देगा, अथवा हम, मार्क्स के शब्दों में 'लौकिक तरीक़े से,' ज़ारशाही से ख़ुद ही निपट लेंगे?

"अगर क्रान्ति को पूरी पूरी विजय मिली, तो हम ज़ारशाही के साथ जैकोबी ढंग से, अथवा, अगर आप चाहें तो, लौकिक ढंग से, निपट लेंगे। मार्क्स ने १८४८ में अपने प्रसिद्ध 'नोए रैनिशे त्सैतुंग' में लिखा था: 'फ़ान्स में आतंक बूर्जवा के दुश्मनों–निरंकुशता, सामंतवादी और टुटपुंजियेपन–से निपटने के लौकिक तरीक़े के अलावा और कुछ न था।' (मार्क्स, 'नख़लास', मेहरिंग संस्करण, खंड ३, पृष्ठ २११ देखिये।) क्या उन लोगों ने, जो जनवादी क्रान्ति के काल में, रूस के सामाजिक-जनवादी श्रमिकों को 'जैकोबीवाद' का नाम ले ले कर डराने-धमकाने का प्रयास करते हैं, कभी मार्क्स के इन शब्दों के अर्थ पर विचार किया है?"**

मेन्शेवीकों का कथन था कि उनका कार्य है "सर्वाधिक क्रान्तिवादी विरोधी दल की पार्टी के रूप में काम करना" और आंशिक एवं आकस्मिक रूप से सत्ता ग्रहण करना। कतिपय नगरों में क्रान्तिकारी कम्यूनों की

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग २, पृष्ठ ३०।

**वही, पृष्ठ ५६।

स्थापना करना भी उनके कार्यों से बाहर न था। "'क्रान्तिकारी कम्यूनों' के क्या माने?" लेनिन ने प्रश्न किया और साथ ही उत्तर दिया: "क्रान्तिकारी विचारों की गड़बड़ी से वे (नये 'ईस्क्रा' वादी—न० क्रू०) जैसा कि प्रायः होता है **क्रान्तिकारी लफ़्फ़ाज़ी** में पड़ जाते हैं। हां 'क्रान्तिकारी कम्यून' शब्दों का जो प्रयोग सामाजिक-जनवाद के प्रतिनिधियों द्वारा पास किये गये एक प्रस्ताव में किया गया है, सिवाय क्रान्तिकारी लफ़्फ़ाज़ी के और कुछ नहीं है। जब जब **अतीत** के 'मोहक' शब्दों का उपयोग भविष्य के कामों पर परदा डालने के लिए किया गया तब तब मार्क्स ने इस लफ़्फ़ाज़ी की भर्त्सना की। ऐसी दशाओं में वह मोहक शब्द, जिसने इतिहास में अपना काम कर लिया है, निरर्थक, हानिकर, दिखावटी और बचकानी बकवास बन कर रह जाता है। हमें चाहिए कि हम श्रमिकों और सारी जनता को यह बात साफ़ साफ़ समझा दें कि हम अस्थायी क्रान्तिकारी सरकार की स्थापना **क्यों** चाहते हैं, और यदि हम आम विद्रोह की, जिसका आरम्भ हो चुका है, विजय के तत्काल बाद सरकार पर निर्णयात्मक प्रभाव डालें तो सचमुच **क्या क्या परिवर्तन देखने में आवेंगे**—यह कुछ प्रश्न राजनैतिक नेताओं के सामने हैं।"*

और उन्होंने आगे यह भी कहा था—

"मार्क्सवाद को भ्रष्ट करने वाले इन लोगों ने इस बात पर कभी विचार नहीं किया कि मार्क्स ने शस्त्रों की आलोचना के स्थान पर आलोचना के शस्त्रों की ज़रूरत के संबंध में क्या कहा था। वे लोग व्यर्थ में मार्क्स का नाम ले ले कर वस्तुतः उन कार्यों के संबंध में प्रस्ताव तैयार करते हैं जो पूर्णतः उन फ़्रैंकफ़र्ट बूर्जवाई बकवादियों की भावना से ओतप्रोत होते हैं जिन्होंने निरंकुशता की पूरी पूरी आलोचना की थी और जनवादी चेतना को और अधिक गम्भीर बना दिया था। किन्तु वे लोग यह न समझ सके

---

*वही, पृष्ठ ८३।

थे कि क्रान्ति का काल क्रियाशीलता का काल है जो नीचे से भी होती है और ऊपर से भी।"*

"क्रान्तियां इतिहास के इंजन हैं," मार्क्स का कथन था। पनपती हुई क्रान्ति के महत्व का मूल्यांकन करते हुए लेनिन ने मार्क्स के यही विचार उद्धृत किये थे।

'नोए रैनिशे त्सैतुंग' में मार्क्स के कथन का विश्लेषण करते हुए लेनिन ने सर्वहारा वर्ग और कृषक वर्ग की क्रान्तिकारी-जनवादी अधिनायकत्व का अर्थ स्पष्ट किया था। किन्तु सादृश्यता का दिग्दर्शन कराने के लिए, उन्होंने हमारी बूर्जवाई-जनवादी क्रान्ति और १८४८ की जर्मन बूर्जवाई-जनवादी क्रान्ति के अन्तर पर अपने विचार रखे थे। उन्होंने लिखा था—

"क्रान्तिकारी समाचारपत्र के प्रकाशन के प्रायः एक वर्ष बाद ('नोए रैनिशे त्सैतुंग' का प्रकाशन १ जून १८४८ को आरम्भ हुआ था), केवल अप्रैल १८४९ में मार्क्स और एंगेल्स ने श्रमिकों के एक विशिष्ट संघटन के पक्ष में घोषणा की थी। उस समय तक वे एक जनवादी पत्र निकाल रहे थे जिसका स्वतंत्र श्रमिक पार्टी से कोई संघटनात्मक संबंध नहीं था। हमारे आज के दृष्टिकोण से यह तथ्य बेतुका और असम्भावित प्रतीत होता है। इससे हमें यह पता ज़रूर लगता है कि उन दिनों की जर्मन सामाजिक-जनवादी पार्टी और आज की रूसी सामाजिक-जनवादी पार्टी के बीच कितना ज़बरदस्त फ़र्क़ है। इस तथ्य से पता चलता है कि जर्मन जनवादी क्रान्ति में आन्दोलन की सर्वहारावादी विशेषताएं, अर्थात् उसके भीतर बहने वाली सर्वहारावाद की धारा, कितनी गिनी चुनी थीं (उसका कारण यह था कि १८४८ में आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही रूप से, जर्मनी एक पिछड़ा हुआ और राज्य के रूप में एक विघटित देश था)।"**

*वही, पृष्ठ १०२।

**वही, पृष्ठ १४८।

व्लादीमिर इल्यीच ने जो लेख १६०७ में लिखे थे वे विशेष रूप से दिलचस्प हैं। इन लेखों का विषय है—मार्क्स का पत्र-व्यवहार और उनके क्रिया-कलाप। ये लेख हैं 'कार्ल मार्क्स के ल० कुगेल्मान को लिखे गये पत्रों के रूसी अनुवाद की भूमिका' (खंड १२, पृ० ८३-६१), 'दूसरी दूमा पर फ़० मेहरिंग का कथन (खंड १२, पृष्ठ ३४३-४६) और "ज० फ़० बेकर, ज० देत्सघेन, फ़्रे० एंगेल्स, कार्ल मार्क्स तथा दूसरों द्वारा फ़० अ० ज़ोर्गे वग़ैरह को लिखे गये पत्रों' के रूसी अनुवाद की भूमिका' (खंड १२, पृष्ठ ३१६-३८, चतुर्थ रूसी संस्करण)।

इन लेखों मे इस बात का पता चलता है कि लेनिन मार्क्स का अध्ययन कैसे करते थे। अन्तिम लेख विशेष रूप से दिलचस्प है। यह उस समय लिखा गया था जब बोग्दानोव से मतभेद हो जाने के बाद लेनिन ने दर्शनशास्त्र का अध्ययन बड़ी गम्भीरता के साथ करना दुबारा आरम्भ कर दिया था। उस समय द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद संबंधी प्रश्नों की ओर उनका ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ था।

क्रान्ति की पराजय हो चुकने के बाद के रूस में जो प्रश्न उठे थे उनके सदृश प्रश्नों तथा द्वंद्वात्मक एवं ऐतिहासिक भौतिकवाद के प्रश्नों पर मार्क्स ने क्या कहा था इसका अध्ययन करते हुए लेनिन ने मार्क्स से द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद की प्रणाली को ऐतिहासिक विकास के अध्ययन पर प्रयुक्त करने की विधि सीखी थी। फ़० अ० ज़ोर्गे के पत्रों की अपनी भूमिका में उन्होंने लिखा था: "अंग्रेज़ी, अमेरिकी और जर्मन श्रम आन्दोलनों के बारे में मार्क्स और एंगेल्स ने क्या क्या कहा था इसकी तुलना करना बड़ा उपयोगी है। यह तुलना उस समय और भी अधिक महत्वपूर्ण बन जाती है जब हम इस बात पर ध्यान देते हैं कि एक ओर तो जर्मनी और दूसरी ओर इंगलैंड तथा अमेरिका पूंजीवादी विकास के भिन्न भिन्न स्तरों, और इन देशों के समस्त राजनीतिक जीवन पर एक वर्ग के रूप में बूर्जवाओं के दमन के भिन्न भिन्न स्वरूपों का प्रतिनिधित्व

करते हैं। जो बात हम यहां देखते हैं वह वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भौतिकवादी द्वन्द्व और उस योग्यता का एक नमूना है जिसके अधीन मनुष्य प्रश्न के भिन्न भिन्न विषयों और भिन्न भिन्न पहलुओं को, भिन्न भिन्न राजनीतिक और आर्थिक दशाओं की खास खास विशेषताओं के संबंध में, उपयोग में लाने के लिए, निश्चित करता है और उनपर ज़ोर देता है। श्रमिक पार्टी की व्यावहारिक नीति और क्रिया-कलापों की दृष्टि से यहां हम जो कुछ देखते हैं वह उस मार्ग का एक नमूना है जिसके मुताबिक़ 'कम्यूनिस्ट घोषणापत्र' के रचयिताओं ने भिन्न भिन्न देशों में राष्ट्रीय श्रम आन्दोलन के भिन्न भिन्न स्तरों के अनुसार लड़ाकू सर्वहारा वर्ग के कार्यों की व्याख्या की थी।"*

१६०५ की क्रान्ति ने कई ज़रूरी प्रश्न खड़े कर दिये थे और उन्हें हल करने में लेनिन ने मार्क्स के ग्रन्थों का बड़ी गम्भीरता के साथ अध्ययन किया था। सच बात तो यह है कि मार्क्स का अध्ययन करने का लेनिनवादी (वस्तुतः मार्क्सवादी) तरीक़ा क्रान्ति की अग्नि में ही निखरा था।

मार्क्सवाद के अध्ययन के इस तरीक़े ने लेनिन को उस हथियार से लैस कर दिया था जिससे मार्क्सवाद को विकृत करने और उसकी क्रान्तिकारी भावना को निस्सार बनाने के प्रयासों के विरुद्ध लड़ा जा सकता था। हम जानते हैं कि 'राज्य और क्रान्ति' शीर्षक लेनिन की पुस्तक ने अक्तूबर क्रान्ति और समाजवादी सरकार की स्थापना में एक महत्वपूर्ण भाग लिया था। यह पुस्तक राज्य के संबंध में मार्क्स के विचारों के गहन अध्ययन का ही परिणाम है।

मैं यहां लेनिन की 'राज्य और क्रान्ति' के प्रथम पृष्ठ को उद्धृत करूंगी।

* व्ला०इ० लेनिन, मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद, मास्को, १६५३, पृष्ठ २३५।

"आज मार्क्स के उपदेशों के संबंध में जो कुछ हो रहा है वही, इतिहास काल में, मुक्ति के लिए लड़ने वाले दलित वर्गों के नेताओं और क्रान्तिकारी विचारकों के उपदेशों के संबंध में बार बार हुआ है। उत्पीड़क लोग बड़े बड़े क्रान्तिकारियों पर, उनके जीवन काल में, बराबर भूखे भेड़ियों की तरह टूटते रहे, उनके उपदेशों से उग्र विद्वेष और अत्यधिक घृणा करते रहे और उन उपदेशों को असत्य ठहराने और अपमानित करने का बराबर प्रयास करते रहे। इन क्रान्तिकारियों की मृत्यु के बाद उन्हें एक प्रकार से देवता स्वरूप या ऋषितुल्य सिद्ध करने के प्रयत्न किये जा रहे हैं। और उत्पीड़ितों की 'सांत्वना' के लिए, बल्कि उन्हें धोखा देने के लिए, उपर्युक्त क्रान्तिकारियों के **नामों** के चारों ओर एक प्रभा-मण्डल निर्माण करने के प्रयत्न किये जाते हैं। साथ ही साथ क्रान्तिकारी उपदेशों का **सार** ख़त्म कर दिया जाता है, क्रान्तिकारी तीक्ष्णता को कुंठित किया जाता है और इन उपदेशों को बुरा-भला कहा जाता है। सम्प्रति श्रमिक वर्ग आन्दोलन के अवसरवादी और बूर्जवा मार्क्सवाद की इस 'डाक्टरी' से सहमत हैं। ये लोग इस उपदेश के क्रान्ति-पक्ष को, इसकी क्रान्तिकारी आत्मा को छोड़ देते हैं, या दबा देते हैं या विकृत कर देते हैं। बूर्जवाओं को जो स्वीकार्य है या स्वीकार्य-सा दिखाई देता है, उसे वे लोग आगे लाते हैं और उसकी प्रशंसा करते हैं। अब सारे सामाजिक-अन्धराष्ट्रवादी 'मार्क्सवादी' हैं (आप हंसें नहीं!)। और जर्मनी के बूर्जवाई पंडित जो कल तक मार्क्सवाद का उन्मूलन करने की दिशा में विशेषज्ञ समझे जाते थे अब बार बार 'राष्ट्रीय जर्मन' मार्क्स की बातें करते हैं। उनका निश्चयपूर्वक कहना है कि मार्क्स ने श्रमिकों के संघों को शिक्षित किया था और ये संघ एक नृशंस युद्ध चलाने के लिए कितनी शान से संघटित हुए हैं!

"इन परिस्थितियों में, यह देखते हुए कि मार्क्सवाद को कितने बड़े पैमाने पर और कितने अभूतपूर्व ढंग से विकृत किया गया है हमारा कर्तव्य

है कि मार्क्स ने हमें राज्य के विषय में सचमुच जो कुछ सिखाया है उसकी **पुनःस्थापना** करें।"*

'लेनिनवाद के मूल सिद्धांत' में साथी स्तालिन ने लिखा था—

"सिर्फ़ अगले ज़माने में, सर्वहारा वर्ग द्वारा की गई सीधी कार्यवाही के ज़माने में, सर्वहारा क्रान्ति के ज़माने में जब बूर्जवा को सत्ताविहीन करने का प्रश्न तात्कालिक कार्यवाही का प्रश्न बन चुका था, जब सर्वहारा वर्ग के रिज़र्वों का मूल नीति संबंधी प्रश्न एक ज्वलंत प्रश्न बन गया था; जब संघर्ष और संघटन—संसदीय और ग़ैर-संसदीय (कार्यनीति)—के समस्त स्वरूप पूर्णतः स्पष्ट हो चुके थे, उस ज़माने में सर्वहारा के संघर्ष की मम्यक् मूल नीति और कार्यनीति को निश्चित किया जा सकता था। इसी अवधि में लेनिन मूल नीति और कार्यनीति संबंधी मार्क्स और एंगेल्स के सुविचारों को प्रकाश में लाये। ये वे विचार थे जिन्हें द्वितीय अंताराष्ट्रीय संघ के अवसरवादी दबाना चाहते थे। परन्तु लेनिन ने अपने को मार्क्स और एंगेल्स की कार्यनीति संबंधी कुछ मान्यताओं की पुनःस्थापना तक ही सीमित न रखा। उन्होंने इन मान्यताओं का और अधिक विस्तार किया तथा उन्हें नये नये विचारों और अन्य मान्यताओं से परिपुष्ट भी किया। इन सब ने मिल कर सर्वहारा के वर्ग संघर्ष के नेतृत्व के लिए नियमों और निर्देशन-सिद्धान्तों की एक प्रणाली का रूप ले लिया।"

मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा था कि उनके "कथन जड़ सिद्धान्त नहीं अपितु कार्य के लिए निर्देशन स्वरूप हैं।" लेनिन ने बार बार इसी बात की पुष्टि की। मार्क्स और एंगेल्स के ग्रंथों के अध्ययन की उनकी पद्धति क्रान्तिकारी व्यवहार और सर्वहारा क्रान्तियों के युग के समस्त

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग १, पृष्ठ २०२-०३।

वातावरण से लेनिन को मार्क्स के क्रान्तिकारी सिद्धान्त को कार्यों के वास्तविक निर्देशन का स्वरूप देने में सहायता मिली।

मैं एक बहुत महत्वपूर्ण प्रश्न पर कुछ चर्चा करूंगी।

अभी हाल ही में हमने सोवियत शासन की १५ वीं वर्षगांठ मनाई थी और इस सिलसिले में इस बात पर पुनः विचार किया था कि अक्तूबर १९१७ में सत्तार्जन के प्रयासों को किस प्रकार केन्द्रित किया गया था। वह अपने आप नहीं हुआ। लेनिन ने इसकी एक पूरी पूरी योजना बनाई थी और उन्हें अपने कार्यों में विद्रोहों के संघटन संबंधी मार्क्स के निर्देशों से पथ-प्रदर्शन मिला था।

अक्तूबर क्रान्ति ने अधिनायकत्व को सर्वहारा वर्ग के हाथ में दे दिया था और संघर्ष की दशाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन उपस्थित कर दिये थे। परन्तु इन सब का एक-मात्र कारण यह है कि लेनिन का पथ-प्रदर्शन मार्क्स और एंगेल्स के प्रबन्धों के शब्दों से नहीं अपितु उन शब्दों में निहित क्रान्तिकारी भावना से हुआ था। और लेनिन सर्वहारा अधिनायकत्व के युग में मार्क्सवाद का उपयोग समाजवादी निर्माण के लिए करने में सक्षम थे।

मैं इस संबंध में कुछ बातें स्पष्ट देने का प्रयत्न करूंगी। इस संबंध में एक व्यापक अनुसंधान कार्य की जरूरत है जो इस बात पर प्रकाश डाल सके कि क्रान्तिकारी आन्दोलन से संबद्ध कार्यों को सम्पन्न करने के निमित्त लेनिन ने मार्क्स से क्या लिया, कैसे लिया और जो कुछ लिया वह कब लिया। मैंने राष्ट्रीय प्रश्न, साम्राज्यवाद इत्यादि सर्वाधिक महत्वपूर्ण विषयों पर कोई प्रकाश नहीं डाला है। यह कार्य लेनिन के ग्रंथों के पूरे संग्रह, लेनिन के संकलित ग्रंथों के प्रकाशन से सुगम हो गया है। क्रान्तिकारी संघर्ष के समस्त चरणों पर, आद्योपान्त, मार्क्स के सिद्धांतों के अध्ययन का लेनिन का जो तरीक़ा रहा है उससे हमें न सिर्फ़ मार्क्स समझने में अपितु ख़ुद लेनिन को, मार्क्स का अध्ययन

करने के उनके तरीक़े को और मार्क्स के वचारों को व्यावहारिक रूप देने की उनकी विधि को समझने में भी सहायता मिलेगी।

मार्क्स के अध्ययन के संबंध में एक दूसरा पहलू भी उल्लेखनीय है। यह पहलू निश्चय ही बड़े महत्व का है। लेनिन ने न सिर्फ़ वही बातें पढ़ीं जो मार्क्स और एंगेल्स ने और मार्क्स के 'आलोचकों' ने लिखी थीं, अपितु उन सभी साधनों का भी अध्ययन किया जिनके कारण मार्क्स को अपन दृष्टिकोण तक पहुंचने में मदद मिली थी। उन्होंने उन ग्रंथों को भी पढ़ा जिनके कारण मार्क्स के विचार पुष्ट हो कर एक विशेष दिशा के गामी बने थे। हम कह सकते हैं कि लेनिन ने मार्क्सवादी दुनियावी दृष्टिकोण के स्रोतों का और उन सारी बातों का अध्ययन किया जिन्हें मार्क्स ने दूसरे लेखकों से लिया था। मार्क्स ने यह सारी चीजें कैसे लीं इस संबंध में भी लेनिन ने अच्छा-खासा अध्ययन किया था।

लेनिन ने द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की प्रणाली का गहन अध्ययन किया था। 'सैनिक भौतिकवाद का महत्व' (१९२२) शीर्षक अपने लेख में लेनिन ने लिखा था कि 'पोद ज्नामेनेम मार्क्सीज्मा'* के लेखकों के लिए भौतिकवादी दृष्टिकोण से हेगेलियन द्वन्द्ववाद के क्रमबद्ध अध्ययन की व्यवस्था करना आवश्यक है। उनका विचार था कि बिना ठोस दार्शनिक आधार के बूर्जवा विचारों के प्रहारों और बूर्जवाई सांसारिक दृष्टिकोण के पुनस्संस्थापन के विरुद्ध खड़ा हो सकना भी असम्भव है। उन्होंने स्वयं अपने अनुभवों से लिखा था कि हेगेलियन द्वन्द्ववाद के अध्ययन की व्यवस्था कैसे होनी चाहिए। संबंधित अवतरण इस प्रकार है—

"यह समझ रखना चाहिए कि बिना ठोस दार्शनिक आधार स्थापित हुए बूर्जवा विचारों के प्रहारों और बूर्जवाई सांसारिक दृष्टिकोण के

*१९२२ से लेकर १९४४ तक मास्को में प्रकाशित एक दार्शनिक पत्रिका।

पुनस्संस्थापन के विरुद्ध कोई भी प्राकृतिक विज्ञान या भौतिकवाद खड़ा नहीं हो सकता। इस संघर्ष में पैर जमाने के लिए और उसका अन्त सफल बनाने के लिए प्राकृतिक वैज्ञानिक को चाहिए कि वह एक आधुनिक भौतिकवादी बने और उस भौतिकवाद का जागरूक अनुगामी सिद्ध हो जिसका प्रतिनिधित्व मार्क्स ने किया है। दूसरे शब्दों में उसे द्वंद्वात्मक भौतिकवादी बनना चाहिए। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए 'पोद ज्नामेनेम मार्क्सीज्मा' के लेखकों को चाहिए कि वे भौतिकवादी दृष्टिकोण से हेगेलियन द्वन्द्ववाद के यानी उस द्वन्द्ववाद के जिसका मार्क्स ने व्यावहारिक रूप से अपनी 'पूंजी' तथा अपने ऐतिहासिक और राजनैतिक ग्रंथों में उपयोग किया था, क्रमबद्ध अध्ययन की व्यवस्था करें ... हेगेलियन द्वन्द्ववाद का भौतिक दृष्टि से प्रयोग करने की मार्क्स की प्रणाली को आधार मान कर हम सभी दृष्टिकोणों से इस द्वन्द्ववाद को व्यापक बना सकते हैं और हमें बनाना भी चाहिए, पत्रिका में हेगेल के प्रधान ग्रंथों के उद्धरण छापने चाहिए, भौतिक ढंग से उनकी व्याख्या करनी चाहिए और जिस ढंग से मार्क्स ने द्वन्द्ववाद का प्रयोग किया था उसकी तथा राजनैतिक और आर्थिक संबंधों के क्षेत्र में प्रयुक्त द्वन्द्ववाद की सहायता से उनपर टीका-टिप्पणी करनी चाहिए। अभी हाल ही के इतिहास, विशेष रूप से आधुनिक साम्राज्यवादी युद्ध और क्रान्ति में द्वंद्ववाद के इस प्रकार के बहुत से उदाहरण देखने को मिलते हैं। मेरी समझ में 'पोद ज्नामेनेम मार्क्सीज्मा' के संपादकों और लेखकों को 'हेगेलियन द्वन्द्ववाद के भौतिकवादी दोस्तों का समाज' जैसी कोई संस्था होनी चाहिए। आधुनिक प्राकृतिक वैज्ञानिकों को (यदि वे ढूंढना जानते हैं और अगर हम उनकी सहायता करना सीख लें तो) हेगेलियन द्वन्द्ववाद में, जिसकी व्याख्या भौतिक ढंग से की गई है, दार्शनिक समस्याओं के ढेरों उत्तर मिल जायेंगे। ये समस्याएं प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में होने वाली क्रान्ति के परिणामस्वरूप उपस्थित

होती हैं और इनके फलस्वरूप बूर्जवा ढंग के बौद्धिक प्रशंसक प्रतिक्रियाओं में 'लड़खड़ा' जाते हैं।"*

'लेनिन के संकलित ग्रंथ' खंड ६ और १२ अब प्रकाशित हो चुके हैं जिनसे पता चलता है कि जब लेनिन ने हेगेल के मूल ग्रन्थों का विश्लेषण किया था उस समय उनके मस्तिष्क में क्या क्या प्रतिक्रिया हो रही थी, कि उन्होंने हेगेल का अध्ययन करने में द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की पद्धति का कैसे उपयोग किया था, उन्होंने इस अध्ययन को मार्क्स के अध्ययन के साथ कैसे संबद्ध किया था और भिन्न भिन्न परिस्थितियों में भी मार्क्सवाद को क्रिया-कलापों का पथ-प्रदर्शक बनाने की योग्यता का कैसे परिचय दिया था।

किन्तु लेनिन ने सिर्फ़ हेगेल का ही अध्ययन नहीं किया। उदाहरणार्थ, उन्होंने मार्क्स का वह पत्र पढ़ा था जो उन्होंने एंगेल्स को, १ फ़रवरी १८५८ को लिखा था। इस पत्र में उन्होंने लासाल की 'फ़िलासफ़ी आफ़ हेराक्लीटस दी आब्स्क्यौर आफ़ एफ़ेसस' (खंड दो) शीर्षक पुस्तक की आलोचना करते हुए उसे एक 'मामूली-सी' पुस्तक बताया था। आरम्भ में लेनिन संक्षेप में मार्क्स के मत पर विचार करते हैं: "लासाल महज़ हेगेल की बात **दुहराता है**, उसकी **नक़ल करता है**, हेराक्लीटस के कुछ स्थलों को लाखों बार **निगलता है** और अपनी पुस्तक को अति चतुराई और विद्वत्ता रूपी मेहराब के पत्थरों से इतनी बोझिल बना देता है कि उसपर से पाठक का सारा विश्वास उठ सा जाता है।"** फिर भी लेनिन ने लासाल की पुस्तक पढ़ी, उसका संक्षेप तैयार किया, उससे उद्धरण नोट किये, अपनी टिप्पणी लिखी और फिर वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे:

* व्ला० इ० लेनिन, मार्क्स-एंगेल्स-मार्क्सवाद, मास्को, १९५३, पृष्ठ ६१२-१३।

** 'लेनिन के संकलित ग्रंथ', खंड १२, पृष्ठ २९५, रूसी संस्करण।

"कुल मिला कर अगर देखा जाय तो मार्क्स की राय ठीक जान पड़ती है। लासाल की पुस्तक पढ़ने योग्य नहीं है।" इस पुस्तक के परीक्षण का यह लाभ जरूर हुआ कि लेनिन ने मार्क्स को और भी अच्छी तरह समझ लिया और साथ ही यह भी समझ लिया कि मार्क्स ने उस पुस्तक को क्यों पसन्द नहीं किया था।

अन्त में, मैं मार्क्स के ग्रन्थ के संबंध में लेनिन के एक और कार्य की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करूंगी – यह है मार्क्सवाद को **लोकप्रिय बनाने** में उनका योग। किसी पुस्तक को लोकप्रिय रूप देने वाले व्यक्ति को उस समय खुद बहुत कुछ सीखना पड़ता है जब वह पुस्तक को 'बड़ी गम्भीरता' से उठाता है और सब से सरल एवं सब से अधिक बोधगम्य रूप में किसी सिद्धान्त का सार प्रस्तुत करने में जुट जाता है।

लेनिन ने ऐसे कामों को बड़ी गम्भीरता से उठाया। निर्वासन काल में उन्होंने प्लेखानोव और अक्सेलरोद को एक पत्र में लिखा था कि वे इतना ही चाहते हैं कि श्रमिकों के लिए लिखना सीख जायं।

लेनिन की उत्कट अभिलाषा थी कि मार्क्सवाद को सारी श्रमिक जनता समझ ले। १८९०-१९०० में, मार्क्सवादी मंडलों में काम करते हुए, उन्होंने सभी को 'पूंजी' का प्रथम खंड समझाने का प्रयत्न किया और अपने श्रोताओं के जीवन से उदाहरण देने शुरू किये। १९११ में लांगजुमो (पेरिस के निकट) पार्टी के स्कूल में उत्तरोत्तर बढ़ते हुए क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेताओं को प्रशिक्षण देते समय लेनिन ने श्रमिकों के समक्ष राजनीतिक अर्थशास्त्र पर भाषण पढ़े थे और आसान से आसान तरीक़े से उन्हें मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्त समझाये थे। 'प्राव्दा' के अपने लेखों में इल्यीच ने मार्क्सवाद के भिन्न भिन्न पहलुओं को लोकप्रिय बनाने का प्रयास किया था। १९२१ में ट्रेड-यूनियनों पर विचार-वार्ताओं

के दौरान में लेनिन ने किसी घटना और विषय को द्वन्द्वात्मक दृष्टिकोण से समझने का तरीक़ा बताया था। उनका कहना था कि "अगर आप कुछ जानना चाहते हैं तो आपको उसका अध्ययन सभी दृष्टिकोणों से करना चाहिए, उसके सारे पहलुओं पर मनन करना चाहिए और उसके सारे संबंधों और उसकी मध्यवर्ती कड़ियों को देखना चाहिए। हम उसके बारे में पूर्णतया सब कुछ जान तो ज़रूर न सकेंगे, मगर हां अपने व्यापक अध्ययन के परिणामस्वरूप भ्रष्ट ग़ल्तियों और त्रुटियों से अवश्य बच सकेंगे। यह पहली बात है। दूसरी बात यह है कि जो चीज़ भी उठाई जाय वह उसके विकास-चरण में, 'स्व-गति' (जैसा कि प्रायः हेगेल कहा करता था) में, उसके परिवर्तन काल में उठाई जाय। यही तो द्वंद्वात्मक तर्क की मांग है। तीसरी बात यह है कि सत्य के मानदण्ड तथा मनुष्य की आवश्यकताओं के द्योतक रूपों में उस विषय की पूर्ण 'व्याख्या' प्रस्तुत करने के लिए मानव-अनुभवों का उपयोग होना चाहिए। चौथी बात यह कि द्वंद्वात्मक तर्क हमें यह सिखाता है कि 'निस्सार सत्य कोई नहीं होता। सत्य हमेशा सारवान होता है' जैसा कि स्वर्गीय प्लेख़ानोव, हेगेल का उद्धरण देते हुए, कहा करता था।"*

उपर्युक्त कुछ पंक्तियों से स्पष्ट हो जायेगा कि लेनिन ने, सदैव ही द्वंद्वात्मक भौतिकवाद की पद्धति का उपयोग करके, मार्क्स से 'परामर्श लेकर' और दार्शनिक विषयों पर बरसों काम करके क्या क्या प्राप्त किया था। इन पंक्तियों से संक्षेप में यह साफ़ पता चल जायेगा कि विकासों का अध्ययन करने के लिए किन किन बातों का होना अनिवार्य है।

जिस तरह लेनिन ने मार्क्स का अध्ययन किया था उससे हमें पता

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३२ पृष्ठ ७२-७३।

चलता है कि हमें लेनिन का अध्ययन कैसे करना चाहिए। उनके उपदेश मार्क्स के उपदेशों से अविच्छिन्न रूप से संबद्ध हैं—ये हैं: व्यवहार में मार्क्सवाद; साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग में मार्क्सवाद।

लेनिन अध्ययन के लिए पुस्तकालयों का कैसे प्रयोग करते थे

लेनिन ने अपना काफ़ी समय पुस्तकालयों में ही व्यतीत किया। जब वे समारा में रहते थे उस समय बहुत पुस्तकें पुस्तकालय से मंगाया करते थे। बाद में, पीटर्सबर्ग में दिनों भर वे सार्वजनिक पुस्तकालय में पढ़ते रहे और फ़्री इकानोमिक समिति के पुस्तकालय तथा अन्य पुस्तकालयों से पुस्तकें मंगाते रहे। जेल में भी उनकी बहन उनके लिए पुस्तकालयों की पुस्तकें लाया करती। इन पुस्तकों में से वे अपनी टिप्पणियां तैयार कर लिया करते। लेनिन ग्रंथावली के दूसरे संस्करण के तीसरे खंड में इस बात का उल्लेख है कि 'रूस में पूंजीवाद का विकास' शीर्षक अपनी पुस्तक लिखने में उन्हें ५८३ ग्रंथों का अवलोकन करना पड़ा था। उनकी उक्त पुस्तक में इन सभी ग्रन्थों के निर्देश दिये हैं। क्या लेनिन के लिए इतनी पुस्तकें ख़रीदना कभी संभव हो सकता था? बहुत-सी पुस्तकें तो बिक्री के लिए प्रकाशित ही नहीं हुई थीं; उदाहरणार्थ ज़ेम्स्तवो की आंकड़ा सामग्री। यह सामग्री उनके लिए विशेष रूप से मूल्यवान थी। इसके अलावा उस समय वे विद्यार्थी की भांति रह रहे थे और उन्हें एक एक पैसे के लिए जोड़-तोड़ करना पड़ता था। यदि वे पुस्तकें उन्हें ख़रीदनी पड़तीं तो उनके हज़ारों रूबल ख़र्च हो गये होते। और इतना धन व्यय करना उनकी सामर्थ्य के बाहर था। इसके अतिरिक्त पुस्तकों की दूकान में पुस्तकें ढूंढ़ने के लिए भी उनके पास समय न था। पुस्तकालयों के कारण उनका बहुमूल्य समय नष्ट होने से बच गया और इस समय को उन्होंने

अध्ययन में लगाया। वास्तविकता यह थी कि यदि उनके पास पुस्तकालयों की पुस्तक-सूची न होती तो अनेकानेक पुस्तकों का नाम भी उन्हें न मालूम हुआ होता। इन सब बातों के अलावा, उनका कमरा इतना छोटा था कि अपना पुस्तकालय रखने की वहां कोई जगह ही न थी। उनके अध्ययन ने उन्हें 'रूस में पूंजीवाद का विकास' शीर्षक उनकी प्रसिद्ध पुस्तक की तैयारी में तो सहायता दी थी, साथ ही इससे उन्हें औद्योगिक श्रमिकों तथा कृषकों की जीवन-चर्या और उनकी श्रम-व्यवस्था आदि की भी अच्छी जानकारी प्राप्त हुई। अगर ऐसा न होता तो शायद हमारे सामने लेनिन का वह महान व्यक्तित्व न आ पाता जिसे हम सबों ने अपने इन्हीं चर्मचक्षुओं से देखा था। 'रूस में पूंजीवाद का विकास' पुस्तक १८९९ में प्रकाशित हुई।

विदेशों में तो इल्यीच ने पुस्तकालयों का और भी अधिक उपयोग किया। वे विदेशी भाषाएं जानते थे। अतएव उन्होंने इन भाषाओं की पुस्तकों का अध्ययन किया। विदेशों में तो इन पुस्तकों को खरीदने की वे कल्पना भी न कर सकते थे क्योंकि वहां उनके लिए एक एक पाई का मूल्य था और उन्हें ट्राम तथा भोजन पर होने वाले व्यय के लिए पैसा पैसा जोड़ना पड़ता था। परन्तु पढ़ना उनके लिए अनिवार्य था। पुस्तकों तथा विदेशी पत्र-पत्रिकाओं के अभाव में उनका कार्य प्रायः असंभव हो गया होता और साथ ही उन्हें उतना ज्ञान भी न प्राप्त हो सकता जितना हुआ था।

'संबंधियों को पत्र' के अवलोकन से पता चलेगा कि वे पुस्तकालयों को कितना महत्व देते थे।

१८९५ में वे पहली बार विदेश गये और कुछ सप्ताह तक बर्लिन में रह कर वहां के अनुभव प्राप्त करते रहे। वे श्रमिकों के जीवन का अध्ययन करने तथा इम्पीरियल पुस्तकालय में पुस्तकें पढ़ने में अपना अधिक समय व्यय करते थे। इसके पश्चात्, उसी वर्ष उन्होंने जेल में तीन हफ़्तों

में ही पुस्तकालय से पुस्तकें मंगवाने की व्यवस्था कर ली। जेल पुस्तकालय का प्रयोग करने के अलावा उन्होंन बाहर से भी पुस्तकें मंगाने का प्रबन्ध किया था। अपनी गिरफ़्तारी के तीन सप्ताह बाद उन्होंने जेल की अपनी कोठरी से यह पत्र लिखा था –

"... क़ैदियों को पढ़ने की अनुमति है। यद्यपि मुझे यह बात पहले से ही मालूम थी, फिर भी मैंने जान-बूझ कर यह बात अभियोक्ता से पूछी (जिन लोगों को दंडाज्ञा मिल चुकी है उन्हें भी पढ़ने की सुविधाएं दी जाती हैं)। अभियोक्ता ने इस बात की पुष्टि की कि क़ैदियों को किसी भी संख्या में पुस्तकें भेजी जा सकती हैं। इन पुस्तकों को पढ़ कर वापस भी किया जा सकता है। फलतः पुस्तकें पुस्तकालयों से भी ली जा सकती हैं। यह व्यवस्था निश्चय ही अच्छी है।

"लेकिन पुस्तकें प्राप्त करना काफ़ी दुष्कर है। बहुत-सी पुस्तकों की आवश्यकता पड़ती है। मैं उन पुस्तकों की सूची दे रहा हूं जिनकी मुझे आवश्यकता है, परन्तु इन्हें प्राप्त करने में काफ़ी श्रम लगेगा। मुझे यह भी विश्वास नहीं है कि सारी पुस्तकें मिल जायेंगी। आप फ़्री इकानोमिक समिति के पुस्तकालय पर निर्भर रह सकते हैं (मैंने वहां से पुस्तकें ली हैं और मेरे १६ रूबल वहां अभी भी जमा हैं)। इस पुस्तकालय से शुल्क देने पर दो महीने तक के लिए पुस्तकें ली जा सकती हैं। परन्तु वहां का संग्रह अच्छा नहीं है। यदि आप (किसी लेखक या प्रोफ़ेसर की सहायता से) विश्वविद्यालय के पुस्तकालय से तथा वित्त मंत्रालय की विज्ञान समिति के पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त करने की व्यवस्था कर लें तो पुस्तकों की कठिनाई दूर की जा सकती है।

"अन्तिम और सबसे कठिन काम है इन पुस्तकों को मुझतक पहुंचाना। यह दो एक छोटी छोटी पुस्तकें लाने की बात नहीं है। इसके लिए समय समय पर, और काफ़ी लम्बी अवधि तक के लिए, पुस्तकालयों में जाने, वहां से पुस्तकें प्राप्त करने और फिर उन्हें यहां

तक लाने की ज़रूरत होगी (मैं समझता हूं कि यदि आप प्रति बार उतनी पुस्तकें यहां ले आयें जितनी ला सकती हैं, तो पुस्तकों की व्यवस्था करने में महीने में एक बार या पन्द्रह दिन में एक बार ही तकलीफ़ होगी)। तत्पश्चात् पढ़ी जा चुकी पुस्तकों को मुझसे वापस भी ले जाना होगा। अच्छा हो यदि आप किसी दरबान, किसी संदेशवाहक अथवा किसी लड़के को रख लें जिसे मैं कुछ दे दिया करूंगा और वह यह काम कर दिया करेगा। यह आवश्यक है कि व्यावहारिक दशाओं में, और पुस्तकालयों में पुस्तकें देने के लिए निश्चित नियमों के अनुरूप ही, वहां से पुस्तकें प्राप्त करने अथवा लौटाने की अच्छी व्यवस्था की जाय।

"'कहना आसान है—करना कठिन...' मैं समझता हूं कि यह कार्य बहुत कठिन है और मुझे शंका है कि कहीं मेरी 'योजना' कल्पना मात्र ही न रह जाय..."*

आन्ना ने पुस्तकालय से पुस्तक लेने और जेल में उन्हें भाई तक पहुंचाने की ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ली।

निष्कासन के लिए निर्दिष्ट गन्तव्य स्थान तक जाते समय इल्यीच को ४ मार्च से लेकर ३० अप्रैल १८९७ तक क्रासनोयार्स्क में रहना पड़ा था। इस काल में यहां उन्होंने एक पुस्तकालय का उपयोग किया था जिसके मालिक का नाम यूदिन था। १० मार्च को उन्होंने क्रासनोयार्स्क से अपनी बहन मारिया को लिखा था—

"... कल मैं प्रसिद्ध यूदिन पुस्तकालय गया। पुस्तकालय के स्वामी ने मेरा हार्दिक स्वागत किया और मुझे अपना संग्रह दिखाया। उसने मुझे अपने पुस्तकालय का उपयोग करने की अनुमति दी। मैं समझता हूं कि मैं पुस्तकालय का उपयोग अवश्य करूंगा (मेरे मार्ग में दो कठिनाइयां हैं—पहली यह कि पुस्तकालय लगभग डेढ़ मील दूर नगर से कुछ बाहर है

*व्ला० इ० लेनिन, 'संबंधियों को पत्र', १९३४, पृष्ठ १४-१५

लेकिन, वहां तक टहलते टहलते पहुंचा जा सकता है, और दूसरी यह कि वह ठीक तरह से व्यवस्थित नहीं है। मुझे भय है कि अपनी रुचि की पुस्तकें निकलवाने में मुझे पुस्तकालय के स्वामी को काफ़ी कष्ट देना होगा)। व्यवहार में यह कैसे सम्भव होगा, इसका अनुभव हमें आगे चल कर होगा। मैं समझता हूं कि दूसरी कठिनाई भी दूर की जा सकती है। मैंने अभी तक पूरा पुस्तकालय नहीं देखा है। परन्तु जो कुछ भी देख सका हूं उसके आधार पर कह सकता हूं कि यहां का संग्रह बहुत सुन्दर है। यहां १८ वीं शताब्दी के अन्त से लेकर अद्यावधि (प्रमुख) पत्र-पत्रिकाओं की पूरी पूरी फाइलें हैं। मुझे आशा है कि मैं उनमें से अपने कार्यों के लिए उपयोगी सामग्री प्राप्त कर सकूंगा..."*

पांच दिन बाद १५ मार्च को उन्होंने माता जी को लिखा था: "...मैं प्रतिदिन पुस्तकालय जाता हूं और चूंकि यह पुस्तकालय नगर के बाहर लगभग डेढ़ मील पर है अतएव मुझे लौटा फेरी में तीन मील का चक्कर लगाना पड़ता है जिसमें लगभग एक घंटा लग जाता है। मुझे घूमना पसन्द है और यद्यपि कभी कभी ऊंघ जाता हूं फिर भी मुझे टहलने में एक विशेष आनन्द की अनुभूति होती है। पुस्तकालय के आकार-प्रकार को देखते हुए मैंने जो अनुमान लगाया था उसके अनुरूप वहां उस विषय पर, जिसपर मैं काम करना चाहता हूं, उतनी पुस्तकें नहीं हैं जितनी मुझे ज़रूरत होंगी। फिर भी यहां ऐसी चीज़ें हैं जिन्हें मैं उपयोगी समझता हूं। मुझे प्रसन्नता है कि यहां मेरा समय नष्ट नहीं हो रहा है। मैं नगरपालिका पुस्तकालय भी जाया करता हूं जहां मुझे ११ दिन बाद के समाचारपत्र और पत्रिकाएं पढ़ने को मिल जाती हैं। इन पुरानी 'खबरों' का आदी बनना मुझे कुछ कठिन प्रतीत हो रहा है।"**

*वही, पृष्ठ २६।

**वही, पृष्ठ २७-२८।

अपने निष्कासन स्थल – शूशेन्स्कोये ग्राम – में पहुंच कर जहां पत्र तथा समाचारपत्र आदि केवल १३ वें दिन पहुंचा करते थे, लेनिन ने साइबेरिया के इस दूरस्थ कोने में भी मास्को के पुस्तकालयों से पुस्तकें मंगाने की व्यवस्था की थी।

२५ मई १८९७ के अपने एक पत्र में इल्यीच ने मास्को में अपनी बहन आन्ना को लिखा था –

" ... मैं मास्को के पुस्तकालयों का उपयोग करने की बात सोच रहा हूं। क्या आप इस सम्बन्ध में कुछ व्यवस्था कर सकी हैं, अर्थात् क्या आप किसी सार्वजनिक पुस्तकालय में गई हैं? मतलब यह कि क्या दो महीनों के लिए पुस्तकें लेना सम्भव है? (जैसी कि सेन्ट-पीटर्सबर्ग में फ़्री इकानोमिक समिति के पुस्तकालय में व्यवस्था थी।) **पार्सल** का ख़र्च भी ज़्यादा नहीं है (प्रति पाउंड १६ कोपेक तथा रजिस्ट्री के लिए ७ कोपेक अर्थात् अधिक से अधिक ४ पाउंड की पुस्तकें आप ६४ कोपेक में भेज सकती हैं)। सम्भवत: मेरे लिए डाक पर पैसा ख़र्च करना और अधिक पुस्तकें मंगा कर पढ़ना थोड़ी-सी पुस्तकों की **ख़रीद** पर ढेरों रुपया ख़र्च करने से कहीं सस्ता पड़ता है। मैं समझता हूं कि मेरे लिए यही व्यवस्था अधिक अच्छी रहेगी। प्रश्न केवल यही है कि क्या किसी अच्छे पुस्तकालय से हमें (शुल्क जमा करके) दो महीने के लिए पुस्तकें मिल भी सकती हैं या नहीं। यूनिवर्सिटी पुस्तकालय (मैं समझता हूं कि मित्या या तो क़ानून के किसी विद्यार्थी की मार्फ़त अथवा राजनीतिक अर्थशास्त्र के किसी प्रोफ़ेसर के पास सीधे जा कर, और यह कह कर कि वह इस विषय का अध्ययन करना चाहता है, प्रधान पुस्तकालय से पुस्तकें ले सकता है। परन्तु इसके लिए शरद ऋतु तक प्रतीक्षा करनी होगी) अथवा मास्को क़ानून समिति के पुस्तकालय (वहां भी पूछताछ कर लेना और उनसे पुस्तक-सूची मांगना तथा सदस्यता की शर्तों आदि का पता

लगाना) अथवा किसी अन्य पुस्तकालय से पुस्तकें प्राप्त की जा सकती हैं। सम्भवतः मास्को में कुछ अन्य अच्छे पुस्तकालय भी हैं। हो सके तो निजी पुस्तकालयों का भी पता लगाना। यदि आप लोगों में से कोई इस समय मास्को में हो तो इसका पता चला ले।

"यदि आप विदेश जायं तो मुझे बता दें। मैं वहां से पुस्तकें प्राप्त करने के लिए सविस्तार लिखूंगा। मुझे पुस्तकों की दुकानों तथा पुस्तकालयों आदि की समस्त सूचियां भी भेज दें।

भवदीय व्ला० उ० " *

१६ जुलाई १८९७ के एक पत्र में जो माता जी तथा मारिया दोनों ही के नाम था, इल्यीच ने उसके लिए अवतरण भेजने के मारिया के प्रस्ताव के सम्बन्ध में लिखा था: "अवतरणों के सम्बन्ध में मुझे यह विश्वास नहीं है कि उनसे कोई भी मदद मिलेगी। मुझे आशा है कि शरद काल तक मास्को या सेन्ट-पीटर्सबर्ग के पुस्तकालयों से कोई न कोई प्रबन्ध अवश्य हो जायगा।" **

१८९७ के जाड़े के मौसम में उन्होंने अपने संबंधियों को एक पत्र लिखा था जिससे पता चलता है कि इन लोगों ने उनके निर्देशानुसार कार्य किया था। परन्तु वे कुछ अन्य सुविधाएं प्राप्त करना चाहते थे।

"प्रिय मारिया, मुझे २.१२ तारीख़ का तुम्हारा पोस्टकार्ड मिला और सेम्योनोव की दो पुस्तकें भी प्राप्त हुईं। **धन्यवाद**। मैं अधिक से अधिक एक सप्ताह के भीतर उन्हें वापस कर दूंगा। (मैं समझता हूं कि बुधवार २४ तारीख़ को डाकिया बिल्कुल न जायेगा)।

"मैंने पहले दो खंडों को देखा है और उनमें मेरी रुचि

* वही, पृष्ठ ४८।

** वही, पृष्ठ ५७।

की कोई बात नहीं है। मैं समझता हूं कि हमें जिन पुस्तकों के बारे में कोई जानकारी नहीं होती, उन्हें मंगाने में इस प्रकार की चीज़ अपरिहार्य ही है। मैंने पहले ही इसकी कल्पना कर ली थी।

"मुझे आशा है मुझे जुर्माना नहीं देना होगा। वे पुस्तकों की वापसी अगले महीने तक के लिए स्थगित कर देंगे।

"मैं तुम्हारा यह वाक्य नहीं समझा –'लॉ सोसायटी पुस्तकालय का उपयोग करने के उद्देश्य से – मैंने इसके बारे में कबलूकोव से पूछा था – वकील होना ज़रूरी है और सोसायटी के दो सदस्यों की सिफ़ारिशें भी आवश्यक हैं'। केवल यही? क्या सोसायटी का सदस्य होना आवश्यक नहीं है? मैं सेन्ट-पीटर्सबर्ग से सिफ़ारिश प्राप्त करने का प्रयत्न करूंगा।

"मुझे इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि कोई ऐसा व्यक्ति भी सोसायटी का सदस्य हो सकता है जो वकील न हो।

"तुम्हारा स्नेह-भाजन व्ला० उ०"*

परन्तु डाक सम्बन्धी कठिनाइयों के कारण शूशेन्स्कोये में पुस्तकालयों का किसी भी प्रकार का संतोषजनक उपयोग सम्भव न रह गया था।

सितम्बर १८९८ में इल्यीच को दांत का इलाज कराने के लिए क्रासनोयार्स्क जाने की अनुमति मिल गई। उन्हें इससे बहुत प्रसन्नता हुई और उन्होंने स्थानीय पुस्तकालय का उपयोग करने की एक योजना बनाई।

निष्कासन से लौटने पर वे प्स्कोव में बस गये। उन्होंने १५ मार्च १९०० को एक पत्र में माता जी को लिखा था कि "मैं प्रायः पुस्तकालय जाता हूं और टहलता भी हूं।"**

जब वे विदेश में थे उस समय अपना अधिकांश समय वे पुस्तकालयों

*वही, पृष्ठ ७७।

**वही, पृष्ठ २३८।

में ही व्यतीत करते, परन्तु उन्होंने अपने परिवारवालों को जो पत्र लिखे थे उनमें उस बात का उल्लेख बहुत ही कम हुआ था।

१९०२-०३ में लन्दन में हमारे अस्थायी निवास के दौरान में इल्यीच का आधा समय ब्रिटिश संग्रहालय में ही व्यतीत हुआ था। इस संग्रहालय में संसार भर में सबसे अधिक पुस्तकें हैं और यहां की सेवाएं भी बहुत सक्षम हैं। वे प्रायः वाचनालयों में भी गये थे जैसा कि उनके उस पत्र से प्रकट है, जो उन्होंने २७ अक्तूबर १९०२ को माता जी को लिखा था।*

लंदन में बहुत से वाचनालय हैं जिनके कमरों में सीधे सड़कों पर से प्रवेश किया जा सकता है। यहां कुर्सियां नहीं हैं परन्तु खड़े हो कर पढ़ने की सुविधाएं हैं। लोग खूंटियों से लटकते हुए अख़बार पढ़ लेते हैं। कमरे में घुसते ही आप खूंटियों से अख़बार उतार सकते हैं और पढ़ने के बाद फिर उसे यथास्थान रख सकते हैं। य वाचनालय बहुत सुविधाजनक हैं। दिन भर में यहां बहुत से व्यक्ति पढ़ने आते हैं।

अपने दूसरे विदेश प्रवास के दौरान में जब लोगों में दार्शनिक विषयों पर विचार-विमर्श चल रहा था, इल्यीच 'मैटीरियलिज़्म ऐंड एम्पीरिओक्रिटिसिज़्म' शीर्षक अपनी पुस्तक लिखने में व्यस्त थे। उस समय वे मई १९०८ में ब्रिटिश संग्रहालय में विशेष अध्ययन करने के निमित्त जेनेवा से लंदन गये थे।

जेनेवा में, जहां हम १९०३ में पहुंचे थे, इल्यीच 'पढ़ने वालों का समाज' (Société de lecture) पुस्तकालय में दिन के दिन बिता देते। यह एक बहुत बड़ा पुस्तकालय था जहां पढ़ने के लिए आदर्श सुविधाएं उपलब्ध थीं। इस पुस्तकालय में अनेकानेक फ़्रेंच, जर्मन और अंग्रेज़ी समाचारपत्र तथा पुस्तकें मंगाई जाती थीं। समाज के सदस्य प्रायः वृद्ध प्रोफ़ेसर होते थे, जो यदा-कदा ही पुस्तकालय जाया करते। इल्यीच वहां

---

*वही, पृष्ठ २८६।

एक कमरे में बैठ कर पढ़ते लिखते या चहलक़दमी कर लेते। इस प्रकार वे अपने लेखों पर भी मनन कर सकते थे। वे अल्मारी से ऐसी कोई भी पुस्तक उठा कर पढ़ सकते थे जिसकी उन्हें आवश्यकता होती थी।

यहां वे एक समृद्ध रूसी पुस्तकालय में पढ़ने जाया करते। इस पुस्तकालय का नाम कुकलिन के नाम पर था और साथी कारपिंस्की इसका अध्यक्ष था। अन्य नगरों में अपने निवास के समय वे इसी पुस्तकालय से पुस्तकें लिया करते थे।

जब वे पेरिस में रह रहे थे उस समय मुख्यतया 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' (Bibliothèque nationale) नामक पुस्तकालय में पढ़ने जाया करते थे।

इस पुस्तकालय में उनके कार्य के संबंध में मैंने दिसम्बर १६०६ को उनकी माता जी को लिखा था –

"पिछले एक सप्ताह से भी कुछ अधिक से वे पुस्तकालय जाने के लिए प्रातःकाल आठ बजे उठते हैं और वहां से अपराह्न २ बजे वापस आते हैं। पहले तो उन्हें इतने सबेरे उठने में कष्ट होता था परन्तु अब इसमें कोई भी असुविधा नहीं होती। वे जल्दी सो भी जाते हैं।"*

इल्यीच ने पेरिस के कुछ अन्य पुस्तकालयों का भी उपयोग किया। परन्तु उन्हें वे पसन्द न आये। 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' में नवीनतम पुस्तक-सूचियां नहीं थीं और पुस्तकें लेने में लाल-फ़ीता व्यवस्था का आधिक्य था। सच पूछा जाय तो फ़्रेंच पुस्तकालयों की विशेषता ही लाल-फ़ीता थी। नगरपालिका पुस्तकालयों में अधिकतर कहानी उपन्यास की पुस्तकें रहती थीं परन्तु पुस्तक मिलने के पूर्व मालिक मकान से इस आशय का एक प्रमाण-पत्र ले लिया जाता था कि वह समय से पुस्तक लौटाने के लिए ज़िम्मेदार है। हमारी आर्थिक स्थिति सुदृढ़ न थी। अतएव हमारे मालिक मकान ने हमें उक्त प्रमाण-पत्र देने में विलम्ब कर दिया था। इल्यीच

* वही, पृष्ठ ३५३।

किसी देश के सांस्कृतिक स्तर का अनुमान लगाने के लिए यह देखा करते थे कि वहां के पुस्तकालयों का संचालन किस प्रकार किया जाता है।

उन्होंने ६ अप्रैल १६१४ को क्रैको से अपनी माता जी को लिखा था –

"... पेरिस काम करने के लिए सुविधाजनक स्थान नहीं है। 'राष्ट्रीय पुस्तकालय' का संचालन ठीक प्रकार से नहीं हो रहा है। मुझे प्रायः जेनेवा की याद आ जाती है जहां काम आसानी से हो जाता था। वहां मुझे एक पुस्तकालय में बड़ी सुविधाएं प्राप्त थीं और मैं शांत वातावरण में काम कर सकता था। जिन जिन स्थानों पर मुझे जाना पड़ा उनमें मुझे लंदन या जेनेवा विशेष रूप से पसन्द हैं यदि वे इतनी दूर न होते। सामान्य संस्कृति तथा आराम की दृष्टि से जेनेवा बड़ी सुन्दर जगह है। परन्तु यहां संस्कृति का तो प्रश्न ही नहीं उठता। यह बहुत कुछ रूस के समान है। यहां का पुस्तकालय ख़राब तथा अत्यधिक असुविधापूर्ण है, परन्तु समयाभाव के कारण मैं वहां बहुत कम जाता हूं ..."*

जब हम क्रैको से बर्न लौटे उस समय इल्यीच ने ६ दिसम्बर १६१४ के एक पत्र में अपनी बहन मारिया को लिखा था –

"... यहां अच्छे पुस्तकालय हैं और जहां तक पुस्तकों का संबंध है मुझे कोई परेशानी नहीं होती। दिन भर समाचारपत्र में अथक परिश्रम करने के पश्चात् जब पढ़ने का अवकाश मिल जाता है, उस समय कितना आनन्द आता है। नदेज्दा भी शिक्षणशास्त्र विषयक एक पुस्तकालय का उपयोग कर रही है और वह शिक्षा विषयक एक पुस्तक लिख रही है ..."**

७ फ़र्वरी १६१६ को मारिया को लिखे गये अपने एक पत्र में

*वही, पृष्ठ ४०२-४०३।

**वही, पृष्ठ ४०५।

इल्यीच ने लिखा था: "नदेज्दा तथा मैं ज़ूरिच में बड़े प्रसन्न हैं। यहां अच्छे अच्छे पुस्तकालय हैं।" तीन सप्ताह पश्चात् उन्होंने माता जी को लिखा था: "...हम ज़ूरिच में रह रहे हैं जहां हम स्थानीय पुस्तकालयों में आते जाते हैं। हमें झील पसन्द है। यहां के पुस्तकालय बर्न की अपेक्षा अधिक अच्छे हैं। अतएव हम पूर्व निश्चय की अपेक्षा अब यहां कुछ अधिक काल तक ठहरेंगे।"*

९ अक्तूबर के एक पत्र में इल्यीच ने मारिया को लिखा था: "ज़ूरिच में पुस्तकालय अपेक्षाकृत अच्छे हैं और काम करने की सुविधाएं भी उत्तम हैं।"**

स्विस पुस्तकालयों का संचालन बहुत योग्यता के साथ किया जाता है। यहां की उल्लेखनीय विशेषता यह है कि यहां पुस्तकालय आपस में अपनी पुस्तकों का अपेक्षानुसार पारस्परिक विनिमय करते हैं। जर्मन स्विटज़रलैंड के वैज्ञानिक पुस्तकालयों का संबंध जर्मनी के वैज्ञानिक पुस्तकालयों से रहता है। युद्ध काल के दौरान में भी इल्यीच को यथावश्यकता जर्मनी से किताबें मिल जाती थीं।

दूसरी विशेषता यह है कि वे पाठकों के वास्तविक सहायक हैं – यहां की सुन्दर शुद्ध पुस्तक-सूचियां, खुली अलमारियां, कर्मचारियों का पाठकों में रुचि लेना और लाल-फ़ीते का अभाव ऐसी बातें हैं जिन्हें देख कर पाठक मुग्ध हो जाता है।

१९१५ के गर्मी के मौसम में हम रोथर्न पहाड़ियों की तलहटी पर बसे हुए एक दूरस्थ गांव में रहते थे। यहां हमें बराबर पुस्तकालयों से पुस्तकें मिलती रहतीं। पुस्तकें डाक द्वारा भेजी जातीं। हमें डाक-टिकट तक के पैसे न देने पड़ते। ये पुस्तकें कागज़ के पैकटों में आती थीं। इन

*वही, पृष्ठ ४१५-४१६।

**वही, पृष्ठ ४१८।

पैकटों के साथ एक लेबिल रहता था जिसके एक ओर पुस्तक पाने वाले का तथा दूसरी ओर प्रेषक पुस्तकालय का पता रहता था। पुस्तक वापस करते समय केवल लेबिल को उलट दिया जाता और पुस्तकें डाकखाने में भेज दी जातीं।

इल्यीच सदैव स्विस संस्कृति की सराहना किया करते थे। वे एक ऐसी पुस्तकालय-पद्धति की कल्पना कर रहे थे जिसकी क्रान्ति के पश्चात् रूस में व्यवस्था की जा सके।

प्रचारक और आन्दोलनकर्ता लेनिन

('र० क० क० आ० प्रचारक और आन्दोलनकर्ता' पत्रिका, अंक १, १९३९)

प्रचारक लेनिन

रूस में औद्योगिक विकास दूसरे पूंजीवादी देशों–ब्रिटेन, फ़्रांस, जर्मनी–के बाद शुरू हुआ और इसी लिए हमारा श्रम आन्दोलन बाद के दिनों में ही बढ़ना आरम्भ हुआ जिसने १८९०-१९०० तक एक सामूहिक रूप ग्रहण कर लिया। उस समय तक अन्ताराष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग ने बहुत अधिक अनुभव प्राप्त कर लिया था और वह कई क्रान्तियों से होकर गुज़र चुका था। क्रान्तिकारी आन्दोलन ने दुनिया को मार्क्स और एंगेल्स जैसे बड़े बड़े विचारक दिये जिनके विचारों ने सर्वहारा वर्ग के लिए अपेक्षित पथ प्रशस्त किया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया था कि बूर्जवा पद्धति धराशायी होगी, सर्वहारा वर्ग की निश्चय ही विजय होगी, उसके हाथों में सत्ता आयेगी और वह जीवन का पुनर्निर्माण और एक नये, साम्यवादी समाज की स्थापना करेगा।

लेनिन ने जीवन के आरम्भकाल से ही मार्क्स का अध्ययन आरम्भ

कर दिया था। मार्क्स के गम्भीर अध्ययन से वे इस निश्चय पर पहुंचे थे कि मार्क्स के विचार रूसी श्रमिक वर्ग के कार्यों के लिए पथ-प्रदर्शक हैं; वे रूसी श्रमिकों का, जो उन दिनों निरीह, पददलित और अत्यधिक शोषित गुलाम हो रहे थे, समाजवाद के लिए संघर्ष करने वाले, चेतनाशील और संघटित व्यक्तियों के रूप में निर्माण करने और रूस के श्रमिक वर्ग को एक सशक्त दल का रूप देने में सहायक होंगे और श्रमिक वर्ग की इस माने में सहायता करेंगे कि वह श्रम करने वाले समस्त लोगों का नेतृत्व करे, सभी प्रकार के शोषण को समाप्त करे।

मार्क्स के विचारों ने सामाजिक विकास की गति समझने में लेनिन की बड़ी सहायता की। इल्यीच को पूरा विश्वास था कि मार्क्स और एंगेल्स के विचार ठीक हैं। उनका ख्याल था कि जनता को मार्क्सवाद का यथासम्भव अधिक से अधिक ज्ञान कराना बहुत ज़रूरी है और इसी लिए उन्होंने इसका प्रचार करने में अपनी सारी शक्ति लगा दी थी।

श्रमिक जनता के मध्य मार्क्सवाद का जो प्रचार किया गया था वह बहुत अधिक सफल रहा। लेनिन का कथन था कि "हमारा प्रचार इतना सफल रहा इसका कारण यह नहीं था कि हम लोग हुनरमन्द प्रचारक थे, बल्कि यह था कि हम सच्ची बात कहते थे।"

प्रचारक लेनिन का एक विशेष गुण था – गहन विश्वास।

लेनिन ने मार्क्स का गहन अध्ययन किया था और हर ग्रन्थ को कई कई बार पढ़ा था। उन्होंने ग्रनात विश्वकोश के लिए १९१४ में एक लेख लिखा था जिसमें उन्होंने काफ़ी विवरणात्मक सामग्री दे रखी थी। यह इस बात का प्रमाण था कि लेनिन को मार्क्सवाद का कितना गहरा ज्ञान था। लेनिन के दूसरे ग्रन्थों से भी इस बात का पर्याप्त प्रमाण मिलता है।

प्रचारक लेनिन का दूसरा विशेष गुण था – विषय के संबंध में उनकी गहरी जानकारी।

लेनिन सिर्फ़ मार्क्सवादी सिद्धान्त ही नहीं जानते थे, यह भी जानते थे कि व्यवहार में उसका प्रयोग कैसे किया जाय।

१८९४ में, श्रम आन्दोलन के आरम्भिक चरणों में उन्होंने ''जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?' शीर्षक अपनी पुस्तक में यह दिखाया था कि श्रम आन्दोलन के आरम्भ से लेकर हमारी सारी दशाओं में, मार्क्सवाद का प्रयोग कैसे करना चाहिए। यह पुस्तक उस काल में लिखी गई थी जब अधिकांश क्रान्तिवादियों का विचार था कि रूसी दशाओं में श्रमिक वर्ग कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकता।

१८९९ में, लेनिन की 'रूस में पूंजीवाद का विकास' शीर्षक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें उन्होंने यह सिद्ध करने के लिए बहुत-सी तथ्याधारित सामग्री का उपयोग किया था कि रूस में भी पिछड़ापन होने के बावजूद पूंजीवाद पनप रहा है।

'क्या करें?' (१९०२) शीर्षक अपनी पुस्तक में लेनिन ने यह दिखाया था कि हमारी दशाओं में श्रमिकों का ठीक ठीक दिशा में नेतृत्व करने वाली श्रमिक वर्ग की पार्टी कैसी होनी चाहिए।

१९०५ में उन्होंने 'जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियां' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी थी।

१९०७ में, जब १९०५ की क्रान्ति की पराजय स्पष्ट दिखने लगी थी (इस विफलता का एक कारण था श्रमिक और कृषक आन्दोलनों के बीच अपर्याप्त एकता), लेनिन ने 'प्रथम रूसी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद का कृषि कार्यक्रम' नामक अपनी पुस्तक में इस बात पर ज़ोर देते हुए कहा था कि क्रान्ति के अनुभवों की मांग है कि श्रमिक वर्ग और किसानों इन दोनों में ज़बरदस्त संघटन हो।

और बाद में भी, श्रम आन्दोलन के मुख्य प्रश्नों का विश्लेषण करने में, लेनिन ने ऐसे हर प्रश्न को मार्क्सवाद से संबद्ध कर दिया था।

विश्व युद्ध की चरम सीमा के काल में साम्राज्यवाद के संबंध में लिखी गई उनकी पुस्तक और 'राज्य और क्रान्ति' नामक पुस्तक, जो अक्तूबर क्रान्ति से कुछ ही पूर्व लिखी गई थी, विशेष रूप से प्रसिद्ध हैं। लेनिन के ग्रन्थों की विशेषता यह है कि वे सिद्धान्त को व्यवहार के साथ संबद्ध करना जानते थे, उन्होंने किसी भी व्यावहारिक विषय को सिद्धान्त से अलग नहीं किया, वे जानते थे कि हर सैद्धान्तिक प्रश्न को जीवन के साथ, वास्तविकता के साथ, कैसे संबद्ध करना चाहिए और वे यह भी जानते थे कि सिद्धान्त को पाठक के पास तक कैसे पहुंचाया जाय कि वह उसे समझ ले। वे अपने वैज्ञानिक ग्रन्थों तथा मौखिक और लिखित, दोनों ही तरह के, प्रचार में सिद्धान्त को व्यवहार के साथ संबद्ध करने की कला जानते थे।*

*इ० व० बाबुश्किन नामक पीटर्सबर्ग के एक श्रमिक ने उस विधि का उल्लेख किया है जिसका लेनिन अपने भाषणों में प्रयोग किया करते थे। "टोली में व्याख्याता को मिला कर कुल सात व्यक्ति थे। हमने मार्क्स के राजनीतिक अर्थशास्त्र के अध्ययन से अपना कार्य आरम्भ किया। व्याख्याता ने हमें बिना नोटों की सहायता के, मौखिक रूप से, यह विषय समझाया। कभी कभी वे आपत्तियां पूछने अथवा बहस शुरू करने के लिए थोड़ा रुक जाते और फिर हमारे सामने जो प्रश्न होता उसके संबंध में अपने अपने दृष्टिकोण का औचित्य सिद्ध करने के लिए हमें प्रोत्साहित करते। अतएव हमारी चर्चाएं बड़ी सजीव और रोचक होतीं। इस प्रकार हमें जनता के सामने बोलने का अभ्यास हुआ। अध्ययन का यह तरीक़ा विद्यार्थियों को समझाने के लिए सर्वोत्तम सिद्ध हुआ। हम सब व्याख्यानों से बड़े ख़ुश होते थे और अपने व्याख्याता की योग्यता देख कर हमें आश्चर्य होता था। हम आपस में मज़ाक़ मज़ाक़ में कहा करते थे कि हमारे व्याख्याता का दिमाग़ इतना बड़ा है कि उसने बालों तक को निकाल बाहर किया है।

"इन व्याख्यानों ने हमें स्वतंत्र रूप से काम करना तथा अपनी

प्रचारक लेनिन की एक अन्य विशषता यह थी कि वे सिद्धान्त को जीवित वास्तविकता के साथ संबद्ध कर सकते थे और इस प्रकार सिद्धान्त सुबोध और वातावरण चेतन हो जाता था।

लेनिन ने सिद्धान्त और वातावरण का इसी लिए अध्ययन नहीं किया था कि वे दिलचस्प चीज़ें थीं। मार्क्सवादी सिद्धान्त के प्रकाश में वास्तविकता को समझाते हुए उन्होंने हमेशा ऐसे आवश्यक निष्कर्षों पर पहुंचने का प्रयत्न किया जो क्रियाशीलता के लिए पथ-प्रदर्शक का काम कर सकें। लेनिन का प्रचार हमेशा सामयिक समस्याओं के साथ संबद्ध रहा। फ़र्वरी १९१७ की क्रान्ति के बाद उन्होंने पेरिस कम्यून के संबंध में स्वीट्ज़रलैंड में जो रिपोर्ट दी थी उसमें उन्होंने यही नहीं बताया था कि फ़्रांसीसी श्रमिकों ने सत्ता अपने हाथ में कैसे ली अथवा मार्क्स ने पेरिस कम्यून की कैसे सराहना की थी, अपितु यह भी कहा था कि सत्ता प्राप्त कर चुकने के बाद रूसी श्रमिकों को क्या करना होगा। लेनिन सिद्धान्त को हमेशा ही क्रियाशीलता के पथ-प्रदर्शक का रूप दे सकते थे।

सामग्री ख़ुद संकलित करना सिखाया था। व्याख्याता हमें पहले से तैयार किये गये प्रश्नों की सूची दे देते। इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए फ़ैक्ट्री तथा मिल के जीवन के निकट अध्ययन और निरीक्षण की ज़रूरत थी। काम के घंटों में हमें या तो व्यक्तिगत निरीक्षणों से, अथवा, जहां सम्भव होता था, श्रमिकों के साथ बातचीत करके, सामग्री संकलित करने के लिए दूसरे विभागों में जाने का बहाना मिल जाता।

"मेरा औज़ार का बक्स हर तरह की टिप्पणियों से भरा रहता। खाने के घंटों में मैं अपनी कर्मशाला में मज़दूरियों और घंटों के संबंध में सामग्री जुटाता रहता।" ('इवान वसील्येविच बाबुश्किन के संस्मरण', मास्को, १९५७)।

अतएव **प्रचारक लेनिन की विशेषता यह थी कि वे सिद्धान्त को क्रियाशीलता के पथ-प्रदर्शक का रूप दे सकते थे।**

यद्यपि लेनिन को बहुत अधिक ज्ञान और प्रचारक के रूप में व्यापक अनुभव था (उन्होंने बहुत-सी रिपोर्टें तैयार की थीं और प्रचार-लेख लिखे थे) फिर भी वे प्रत्येक भाषण, प्रत्येक रिपोर्ट और प्रत्येक व्याख्यान को बड़ी होशियारी के साथ तैयार करते थे। हमारे पास उनके प्रचार-भाषणों और रिपोर्टों के बहुत-से संक्षेप हैं जिनसे पता चलता है कि वे हर एक के संबंध में कितनी निपुणता के साथ काम करते थे। ये भाषण कितने अर्थपूर्ण होते थे, लेनिन सब से ज़रूरी बातों को कितनी योग्यता के साथ स्पष्ट करते थे और हर विचार को कितनी खूबसूरती के साथ मिसालें दे दे कर समझाते थे, इन सब का पता हमें उनकी टिप्पणियों से चलता है।

प्रचार-भाषणों के लिए पूरी पूरी तैयारी करना प्रचारक लेनिन की विशेषता थी।

अपने प्रचार-भाषणों में इल्यीच ने दुरूह विषयों को टालने की कभी कोशिश नहीं की। इसके विपरीत, उन्होंने ऐसे विषयों को साफ़ साफ़ समझाया। वे तीखे शब्दों से डरते न थे और विषयों पर जान-बूझ कर बल देते थे। वे ऐसे प्रचार-भाषणों का विरोध करते थे जिनमें जान न होती थी, जो सरिता की तरह कलकल करते हुए आगे बढ़ते थे। उनके भाषण तीखे, प्रायः रुक्ष भी होते थे, परन्तु उनमें प्रभावोत्पादकता थी, वे मनुष्य को उत्तेजित करते थे और दिलचस्प होते थे।

प्रचारक लेनिन अपने विषय को साफ़ साफ़ रखते और श्रोताओं को अपने भावोद्रेकों से प्रभावित कर देते थे।

व्लादीमिर इल्यीच ने जनता का अच्छी तरह अध्ययन किया। जनसाधारण कैसे काम करता है, कैसे रहता है, कौन-कौनसी चीज़ें उसे उद्वेलित करती हैं आदि बातें वे अच्छी तरह जानते थे। जनसाधारण को सम्बोधित करते समय वे हमेशा श्रोताओं का स्तर ध्यान में रखते और

जब कभी भाषण करते, या अपनी रिपोर्टें पढ़ते, या बातचीत करते, तो इस बात पर बराबर ध्यान रखते कि सम्प्रति उनके श्रोताओं को सब से अधिक कौनसी चीज़ व्यथित कर रही है, क्या क्या वे नहीं समझ पा रहे हैं और किसे वे सब से महत्वपूर्ण समझते हैं। जिस ध्यान से श्रोता उनकी बातें सुनते, जो प्रश्न वे पूछते और जो भाषण वे करते, वे इल्यीच के समक्ष उनकी मानसिक स्थिति का प्रदर्शन करने के लिए पर्याप्त होते थे। और इल्यीच श्रोताओं में दिलचस्पी पैदा करने की कला जानते थे, उनके श्रोता जो बातें नहीं समझ पाते थे उन्हें समझाना जानते थे और अपनी बातें उनके दिमाग़ में बिठाना भी जानते थे।

प्रचारक लेनिन अपने श्रोताओं को अपनी ओर आकृष्ट करना और पारस्परिक सद्भावना स्थापित करना जानते थे।

अन्त में यह बताना ज़रूरी है कि जनता के प्रति लेनिन का जो रुख़ था उससे लेनिन के प्रचार को कितना लाभ हुआ था। उन्होंने श्रमिकों, ग़रीब और मध्यम वर्गीय किसानों और लाल सेना के सैनिकों को कभी भी हीन दृष्टि से नहीं देखा। उन्होंने इन लोगों के साथ साथियों जैसा, बराबर वालों जैसा, व्यवहार किया। उनके लिए ये लोग 'प्रचार के साधन' न थे परन्तु ऐसे ज़िन्दा लोग थे जिन्होंने दुनिया देखी थी, न जाने कितनी बातों पर विचार-विमर्श किया था और जो अब इस बात की मांग कर रहे थे कि उनकी ज़रूरतों पर ध्यान दिया जाय। श्रमिकों को उनकी सादगी और साथियों जैसा व्यवहार बड़ा पसन्द था। वे कहा करते थे कि "वे हमारे साथ गम्भीरतापूर्वक बातचीत करते हैं"। उनके श्रोता बराबर यह देखते रहते थे कि जिन समस्याओं को इल्यीच उन्हें समझाते थे उनमें वे ख़ुद भी दिलचस्पी लेते थे और यह देख कर श्रोताओं में और भी विश्वास जमता था।

अपने विचारों को सादगी के साथ स्पष्ट कर सकने की उनकी क्षमता और श्रोताओं के प्रति उनके साथियों जैसे व्यवहार ने इल्यीच के प्रचार को सबल, लाभप्रद और प्रभावकर बना दिया था।

प्रचार, आन्दोलन और संघटन के बीच पत्थर की दीवारें नहीं। जो प्रचारक अपने श्रोताओं में उत्साह का संचार करना जानता है वह आन्दोलनकर्ता भी है। जो प्रचारक सिद्धान्त को क्रियाशीलता का पथ-प्रदर्शक बना सकता है निश्चय ही वह एक संघटनकर्ता के काम को सुविधाजनक बनाता है।

लेनिन के प्रचार में आन्दोलन और संघटन के मूल तत्वों की प्रचुरता थी, परन्तु ये तत्व प्रचार की शक्ति और महत्व में बाधक नहीं सिद्ध हुए।

हमें प्रचारक लेनिन से बहुत कुछ सीखना चाहिए।

आन्दोलनकर्ता लेनिन

मार्क्स और एंगेल्स कहा करते थे कि "हमारे कथन जड़ सिद्धान्त नहीं अपितु क्रियाशीलता के पथ-प्रदर्शक हैं।" लेनिन प्रायः इन्हीं शब्दों को दुहराते थे। उनके सारे प्रयास अधिक से अधिक श्रमिकों के कार्यों में मार्क्सवाद को सच्चा पथ-प्रदर्शक बनाने की दिशा में केन्द्रित रहते थे।

१८९३ में, पीटर्सबर्ग आने के तुरन्त पश्चात्, लेनिन ने श्रमिक मंडलों में जाना शुरू किया और श्रमिकों को समझाया कि मार्क्स ने विद्यमान वस्तुस्थिति का मूल्यांकन कैसे किया था, सामाजिक विकासों के बारे में उन्होंने क्या समझा था, श्रमिक वर्ग तथा पूंजीवादी वर्ग के विरुद्ध श्रमिकों के संघर्ष को कितना महत्व दिया था और श्रमिक वर्ग की विजय को अपरिहार्य क्यों समझा था। लेनिन ने अपने भाषणों में यथासम्भव अधिक से अधिक सीधी-सादी भाषा का प्रयोग किया और रूसी श्रमिकों के जीवन से मिसालें दीं। उन्होंने देखा कि श्रमिक उनकी बातें बड़े ध्यान से सुनते, मार्क्सवाद के मूल सिद्धान्तों को समझने की कोशिश करते परन्तु उन्हें कुछ ऐसा लगा कि महज यही कहना काफ़ी नहीं है कि "हमें पूरे ज़ोरों के साथ वर्ग संघर्ष छेड़ देना चाहिए" बल्कि यह दिखाना भी ज़रूरी है कि यह संघर्ष **कैसे** छेड़ना चाहिए और किन समस्याओं को लेकर। एतदर्थ

उन बातों की चर्चा भी ग्रावश्यक थी जो श्रमिक जनता को विशेष रूप से व्यथित कर रही थीं, ग्रौर फिर उन्हें यह भी साफ़ साफ़ समझाना उतना ही ग्रावश्यक था कि उन बातों का उन्मूलन करने ग्रथवा उन्हें बदलने के लिए **क्या क्या** करना ज़रूरी है। ग्रारम्भ में, १८६०-१६०० में, श्रमिकों के ग्रागे मुख्य समस्याएं थीं काम के ग्रधिक घंटे, जुर्माने, पारिश्रमिकों में से की जाने वाली कटौतियां ग्रौर निर्दय व्यवहार। लेनिन के मंडल ने यह व्यवस्था की थी–एक साथी किसी फ़ैक्ट्री को जाता था ग्रौर मालिकों के सामने रखने के लिए निश्चित मांगें तैयार करने में श्रमिकों की मदद करता था। ये मांगें ख़ास ख़ास पत्रकों में समझाई ग्रौर छापी जाती थीं। ये पत्रक श्रमिकों के संघटन में ग्रपना योग देते ग्रौर फिर श्रमिक मिल-जुल कर ग्रपनी मांगें मनवाने के लिए प्रयत्न करते।

ग्रान्दोलन श्रमिकों में जोश भरता था।

"प्रचार से ग्रविच्छिन्न रूप से संबद्ध एक चीज़ है–**ग्रान्दोलन**, जो स्वभावतया रूस की वर्तमान राजनीतिक दशाग्रों में ग्रौर श्रमिक जनता के विकास-स्तर की पृष्ठभूमि में सामने ग्राता है," लेनिन ने १८६७ में 'रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्य' में लिखा था। "श्रमिकों में जो ग्रान्दोलन देखने में ग्राता है उसमें श्रमिक वर्ग के समस्त संघर्षों ग्रौर काम के दिन, मज़दूरी, श्रम-दशाग्रों ग्रादि के संबंध में श्रमिकों ग्रौर पूंजीपतियों के बीच चलने वाले संघर्षों में सामाजिक-जनवादी भाग लेते हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम ग्रपने क्रिया-कलापों को श्रमिक वर्ग के जीवन से संबंधित रोज़मर्रा के व्यावहारिक सवालों के साथ संबद्ध करें, इन सवालों को समझने में श्रमिकों की मदद करें, श्रमिकों का ध्यान मुख्य दुरुपयोगों की ग्रोर ग्राकृष्ट करें, मालिकों के सामने रखने के लिए ग्रधिक संक्षेप में ग्रौर व्यावहारिक तरीक़े से मांगें तैयार करने में श्रमिकों की मदद करें, श्रमिकों में उनकी एकता के लिए जागरूकता पैदा करें ग्रौर साथ ही यह जागरूकता भी पैदा

करें कि एक ऐसे संघटित श्रमिक वर्ग के रूप में, जो सर्वहारा वर्ग की अन्तारराष्ट्रीय सेना का एक भाग है, रूसी श्रमिकों के हित एक-से हैं, उद्देश्य एक-से हैं।"*

१९०६ में इस बात का उल्लेख करते हुए कि सामाजिक-जनवादियों के प्रतिनिधियों को किसानों के मध्य अपना आन्दोलन कैसे चलाना चाहिए, लेनिन ने लिखा था: "यह साबित करने के लिए कि सर्वहारा वर्ग **अद्ययुगीन** क्रान्ति में अग्रणी है 'वर्ग' शब्द का प्रयोग करना ही काफ़ी नहीं है। यह भी काफ़ी नहीं है कि हम यह साबित करने के लिए कि सर्वहारा वर्ग अग्रणी रहा है अपने समाजवादी उपदेश और मार्क्सवाद के सामान्य सिद्धान्त का निरूपण करें। इसके लिए यह जानना ज़रूरी है कि **अद्ययुगीन** क्रान्ति के बड़े बड़े सवालों का विश्लेषण करते समय, इस बात को **व्यवहार में** किस **प्रकार दिखाया** जाय कि श्रमिक दल के सदस्य **इस** क्रान्ति के हितों की, और **दूसरों** की अपेक्षा अधिक क्रमबद्धता, अधिक शुद्धता, अधिक दृढ़ता और अधिक कुशलता के साथ उसकी **सम्पूर्ण** विजय के हितों की, रक्षा करते हैं।**

लेनिन का कहना है कि आन्दोलन सिद्धान्त और व्यवहार का संबंध स्थापित करता है। इसी में उसकी शक्ति निहित है।

श्रमिकों के आर्थिक संघर्ष में आन्दोलन का बड़ा हाथ था। इसने श्रमिकों को यह सिखाया था कि हड़तालों को पूंजीवादियों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ने की प्रणाली के रूप में काम में लाया जाय। इसकी वजह से श्रमिकों को जो सफलताएं मिलीं उनसे श्रमिक वर्ग की दशा में बड़ा सुधार हुआ।

किन्तु, मार्क्सवादी सिद्धान्त का ठीक ठीक मूल्यांकन न कर सकने

---

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग १, पृष्ठ १७९।

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड [illegible] पृष्ठ २६१-६२।

के कारण, योजनाहीनता के पुजारी होने के कारण, अधिक अच्छी आर्थिक दशाओं के लिए संघर्ष करने तक ही सर्वहारा वर्ग के कामों को सीमित कर देने और परिणामतः, श्रमिक समुदाय में राजनीतिक आन्दोलन को न्यूनतम कर देने की इच्छा के कारण आर्थिक संघर्ष की सफलता ने सामाजिक-जनवाद के क्षेत्र में 'अर्थवादी' प्रवृत्तियों को जन्म दिया।

"**बिना क्रान्तिकारी सिद्धान्त के क्रान्तिकारी आन्दोलन जन्म नहीं ले सकता,**" लेनिन ने अपनी पुस्तक 'क्या करें?' में १९०२ में अर्थवादियों को उत्तर दिया था। "जब अवसरवादिता के फ़ैशनेबिल उपदेश व्यावहारिक क्रियाशीलता के संकीर्णतम स्वरूपों का मोह लेकर आगे बढ़ते हैं उस समय इस विचार पर बहुत अधिक ज़ोर नहीं दिया जा सकता।"*

जनता में उत्साह फूंकने के लिए मार्क्सवादी ही आन्दोलन का आश्रय नहीं लेते, बल्कि बूर्जवाओं को भी उसका अच्छा-खासा तजुर्बा है। लेकिन आन्दोलन आन्दोलन में फ़र्क़ होता है। लेनिन ने पार्टी की द्वितीय कांग्रेस में भाषण देते हुए कहा था कि "आन्दोलन में स्थायी सफलता सही सैद्धान्तिक हल पर ही **निर्भर है**"**।

सिद्धान्त को हीन समझने और उसके महत्व को कम करने का मतलब "**श्रमिकों पर बूर्जवा विचारधारा के असर को मज़बूत करना है, भले ही सिद्धान्त को हीन समझने वाला व्यक्ति इसे चाहे या न चाहे।**"*** इस प्रकार लेनिन के कथनानुसार आन्दोलन की सब से महत्वपूर्ण चीज़ है उसका **सार**।

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग १, पृष्ठ २२७। (मोटे टाइप में छपा अंश क्रूप्स्काया का है।—सं०)

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ६, पृष्ठ ४४६।

***व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग १, पृष्ठ २४२।

उन्होंने आन्दोलन को नारों तक सीमित रखने के प्रयासों का विरोध किया और इस बात पर ज़ोर दिया कि उसे व्याख्यात्मक कार्यों के साथ संबद्ध किया जाय।

लेनिन ने अनुभव किया था कि आन्दोलन की शक्ति ऐसे सुसंघटित कार्यों में निहित है जिनका स्वरूप स्पष्ट और सरल हो। यह ज़रूरी है कि "जो कुछ कहा जाय वह साफ़ साफ़ कहा जाय, सीधी-सादी भाषा में हो और एतदर्थ उन गूढ़ पारिभाषिक और विदेशी शब्दों, नारों, परिभाषाओं तथा निष्कर्षों की लफ़्फ़ाज़ी को निश्चयपूर्वक टाला जाय, जिनमें सिद्धहस्तता भले ही प्राप्त कर ली गई हो परन्तु जो जनसाधारण के लिए दुर्बोध हों," लेनिन ने यह बात १९०६ में 'सामाजिक-जनवाद और चुनाव समझौते'* शीर्षक अपने लेख में लिखी थी।

बेशक, इसके माने यह नहीं कि लेनिन ने नारों की उपयोगिता से इनकार किया था। "प्रायः यह एक उपयोगी और कभी कभी ज़रूरी चीज़ होगी कि सामाजिक-जनवादियों के मंच पर संक्षिप्त सामान्य नारे लगाये जायं, निर्वाचन के सिद्धान्त बताये जायं, जिनके सहारे तात्कलिक नीति के सर्वाधिक मूलभूत प्रश्नों का उल्लेख किया जाय और समाजवादी सिद्धान्तों के विवेचन के लिए सब से सुविधाजनक और सर्वोत्तम कारण तथा सामग्री सामने रखी जाय," व्लादीमिर इल्यीच ने १९११ में लिखा था।** वे बकवादी-नेताओं, जनसाधारण में दुर्भावना फैलाने वालों और जनता के अज्ञान और निरक्षरता का लाभ उठाने वालों के विरुद्ध थे। वे कहा करते थे कि "मैं बार बार यह बात दुहराऊंगा कि बकवादी-नेता श्रमिक

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ११, पृष्ठ १६२।

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १७, पृष्ठ २४८।

वर्ग के सब से भयंकर दुश्मन हैं।"* जनता को बहकाने की कला और झूठे वादे हमेशा उनके क्रोध के लक्ष्य बनते। समाजवादी-क्रान्तिकारियों ने किसानों को कौन-कौनसे सब्ज़ बाग़ नहीं दिखाये थे!

लेनिन ने किसानों से ऐसा कोई वादा **नहीं** किया जिसमें उन्हें **खुद** विश्वास न रहा हो। वे हमारे समाजवादी लक्ष्यों और हमारी विशिष्ट वर्ग-स्थिति को गुप्त रखने के विरुद्ध थे भले ही ऐसा करना सफलता के लिए ज़रूरी रहा हो। और जनता ने ऐसा अनुभव किया और देखा कि लेनिन 'गम्भीरतापूर्वक' बातचीत कर रहे हैं (यह शब्द उस श्रमिक के मुंह से सुना गया था, जिसने १९१७ में लेनिन के जोशीले भाषणों को सुना था)।

इल्यीच ने उन अर्थवादियों से सख़्त मोर्चा लिया जो **आन्दोलन के महत्व को कम करने** पर तुले हुए थे।

'रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्य' (१८९७) में उन्होंने लिखा था: "जिस प्रकार श्रमिकों के आर्थिक जीवन पर प्रभाव डालने वाला ऐसा एक भी प्रश्न नहीं, जिसका आर्थिक आन्दोलन के प्रयोजनों के लिए उपयोग न किया जा सकता हो, उसी प्रकार ऐसा एक भी राजनीतिक प्रश्न नहीं जो राजनीतिक आन्दोलन का विषय न बन सकता हो। ये दो प्रकार के आन्दोलन, सिक्के की दो तरफ़ों की भांति, सामाजिक-जनवादियों के कार्यों के साथ घुले-मिले रहते हैं। सर्वहारा की वर्ग-चेतना के विकास के लिए आर्थिक और राजनीतिक आन्दोलन की समरूपेण आवश्यकता है और रूसी श्रमिकों के वर्ग संघर्ष का पथ-प्रदर्शन करने के लिए आर्थिक और राजनीतिक दोनों ही आन्दोलन समान रूप से ज़रूरी हैं, क्योंकि प्रत्येक वर्ग संघर्ष एक राजनीतिक संघर्ष है।"**

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग १, पृष्ठ ३३४।

**वही, पृष्ठ १८३।

ग्रौर –

"... चतुर्दिक राजनीतिक आन्दोलन वह केन्द्र-बिन्दु है जहां सर्वहारा वर्ग की राजनीतिक शिक्षा के महत्वपूर्ण हित समस्त सामाजिक विकास और, समस्त लोकतंत्रात्मक तत्वों के अर्थों में, सारे ही लोगों के महत्वपूर्ण हितों के साथ, केन्द्रित होते हैं। हमारा तात्कालिक कर्तव्य यह है कि हम हर उदारवादी विषय में हस्तक्षेप करें, इसके प्रति अपना सामाजिक-जनवादी दृष्टिकोण स्पष्ट बनायें और ऐसी कार्रवाई करें कि सर्वहारा वर्ग इस विषय का समाधान प्रस्तुत करने में सक्रिय योग दे और अपनी इच्छानुसार हल प्रस्तुत करे।"*

"क्या इसे निरंकुशता के विरुद्ध श्रमिक वर्ग के विरोध के प्रचार तक सीमित रखा जा सकता है? बिल्कुल नहीं। श्रमिकों को यही **समझाना** काफ़ी नहीं है कि उनका राजनीतिक दमन हो रहा है (उन्हें यह **समझाना** भी काफ़ी नहीं है कि श्रमिकों के हित मालिकों के हितों के प्रतिकूल हैं) बल्कि इस दमन की प्रत्येक ठोस घटना को लेकर आन्दोलन आरम्भ होना चाहिए (ठीक वैसे ही जैसे हमने आर्थिक दमन की प्रत्येक ठोस घटना को लेकर आन्दोलन आरम्भ किया है)। और जहां तक **यह** दमन समाज के भिन्न भिन्न वर्गों को, जीवन और क्रियाशीलता के व्यावसायिक, नागरिक, वैयक्तिक, पारिवारिक, धार्मिक, वैज्ञानिक, आदि, आदि विभिन्न क्षेत्रों को प्रभावित करता है, उससे यह स्पष्ट है कि यदि **हम निरंकुशता के सभी पहलुओं की राजनीतिक कलई न खोलें** तो हम श्रमिकों की राजनीतिक जागरूकता का विकास करने के **अपने कर्तव्य का पालन न करेंगे**। दमन की ठोस घटनाओं को लेकर आन्दोलन छेड़ने के लिए यह आवश्यक है कि इन घटनाओं का पर्दाफ़ाश हो (वैसे

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ५, पृष्ठ ३१४।

ही जैसे आर्थिक आन्दोलन छेड़ने के लिए फ़ैक्ट्री में होने वाले दुरुपयोगों का भंडाफोड़ करना आवश्यक हो गया था)।"*

उन दिनों राजनीतिक भंडाफोड़ का साधन था अवैध अख़बार 'ईस्क्रा', जो विदेश में छपता था। इल्यीच चाहते थे कि यह अख़बार एक सामूहिक प्रचारक, सामूहिक आन्दोलनकर्ता, सामूहिक संघटनकर्ता और श्रमिक जनता के कार्यों को एक विशेष दिशा में मोड़ने में सहायक बने और सब से महत्वपूर्ण विषयों पर अपने विचार व्यक्त करे। लेनिन ने १९०२ में 'क्या करें?' में लिखा था कि "राजनीतिक जीवन है क्या! एक अनन्त शृंखला, जिसमें असंख्यों कड़ियां हैं। राजनीतिज्ञ की सारी कारीगरी है—उस कड़ी को खोजना और उसे यथाशक्ति अधिक से अधिक मज़बूती के साथ पकड़े रहना (इस प्रकार कि वह हाथों से न छूट सके) जो सम्प्रति सर्वाधिक महत्व की हो, जो कम से कम यह विश्वास तो अवश्य दिलाये कि उसके पास सारी ज़ंजीर की एक मुख्य कड़ी तो है ही।"**

लेनिन के पथ-प्रदर्शन में 'ईस्क्रा' को इस बात की अच्छी जानकारी रहती थी कि ऐसे सर्वाधिक महत्व के विषय कैसे ढूंढे जायं जिनके इर्द-गिर्द उन दिनों व्यापक आन्दोलन किया जा सकता था और किया जाता था।

समुचित राजनीतिक संघटन, जिसके अन्तर्गत श्रमिकों के बड़े बड़े समुदाय आ जाते थे, आन्दोलनकर्ता के कामों को व्यापक स्वरूप देता था।

इल्यीच कहते थे कि आन्दोलनकर्ता वह लोकप्रिय नेता है जो जनता

* व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग १, पृष्ठ २६३।
** वही, पृष्ठ ३७९।

को सम्बोधित करना जानता है, जो उसके उत्साह में रवानी पैदा कर सकता है, जो प्रत्यक्ष एवं सुस्पष्ट तथ्यों का इस्तेमाल कर सकता है। ऐसे ही लोकप्रिय नेता का भाषण जनता में उत्तेजना पैदा करता है, क्रान्तिकारी वर्ग उसे समझता है और फिर पूरी शक्ति के साथ उसका समर्थन करता है। सच पूछो तो लेनिन एक ऐसे ही आन्दोलनकर्ता, एक ऐसे ही लोकप्रिय नेता थे।

१९०५ की ग्रीष्म ऋतु में 'जनवादी क्रान्ति में सामाजिक-जनवाद की दो कार्यनीतियां' शीर्षक अपने पैम्फ्लेट में लेनिन ने लिखा था: "रूसी सामाजिक-जनवादी श्रमिक दल के सारे के सारे कार्य ने पहले से ही ऐसे सुदृढ एवं अविकल स्वरूप ग्रहण कर लिये हैं जो इस बात की पूरी पूरी गारंटी देते हैं कि हमारा मुख्य ध्यान प्रचार और आन्दोलन पर, छुटपुट तथा विशाल जन सभाओं पर, पत्रकों तथा पैम्फ्लेटों के वितरण पर, आर्थिक संघर्ष में सहायता देने और उस संघर्ष के नारों को फैलाने पर ही केन्द्रित होगा।"*

परन्तु इस तथ्य का, कि आन्दोलन हमारे कार्यों का एक अंग बन गया था और उसने कुछ निश्चित रूप ले लिये थे, **यह मतलब नहीं कि लेनिन ने उसकी नक़ल को भी सहन कर लिया था** ।

उन्होंने इस बात पर बल दिया था कि जनता के भिन्न भिन्न श्रेणियों के सामने प्रश्नों को भिन्न भिन्न ढंग से रखना चाहिए। लेनिन ने १९११ में लिखा था: "हर सामाजिक-जनवादी को, वह राजनीतिक भाषण किसी भी समय क्यों न कर रहा हो, हमेशा जनतंत्र की बात करनी चाहिए। परन्तु जनतंत्र के बारे में कैसे कहा जाय इस बात का उसे ज्ञान ज़रूर होना चाहिए। वह उसके बारे में किसी फ़ैक्ट्री की मीटिंग में, कज़्ज़ाक गांव में, विद्यार्थी समाज में, किसान के घर में,

---

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग २, पृष्ठ ११०।

तीसरी दूमा के मंच से और विदेशों में छपने वाले पार्टी के किसी अखबार में एक ही स्वर से, एक ही तरह से नहीं कह सकता। हर प्रचारक और आन्दोलनकर्ता की कारीगरी इसी में है कि वह उन श्रोताओं को, जिनके समक्ष वह भाषण कर रहा है, किस प्रकार, सर्वोत्तम ढंग से, प्रभावित करे और किस प्रकार सच्चाई को यथासम्भव अधिक विश्वासोत्पादक ढंग से, प्रभावकर तरीक़े से और बोधगम्य विधि से, श्रोताओं के गले तले उतारे।"* मगर इसका यह अर्थ नहीं कि हम किसी से कुछ कहें, किसी से कुछ। प्रश्न सिर्फ़ इस बात का है कि विषय को किस ढंग से प्रस्तुत किया जाय।

मुझे याद है उस समय हम पेरिस में रहते थे और प्रायः चुनाव की बैठकों में जाया करते थे। व्लादीमिर इल्यीच विशेष रूप से यह देखा करते थे कि समाजवादी भिन्न भिन्न सभाओं में कैसे बोलते हैं। मुझे याद है कि एक दिन हमने श्रमिकों की एक सभा में एक समाजवादी को बोलते हुए सुना था और उसी को फिर बुद्धिजीवियों, जिनमें से अधिकतर अध्यापक थे, की एक सभा में। इस दूसरी सभा में उसने जो कुछ कहा था वह पहली सभा में कही गई बातों से बिल्कुल भिन्न था। वह चुनावों में ज्यादा वोट प्राप्त करना चाहता था। मुझे याद है कि जब व्लादीमिर इल्यीच ने यह देखा था कि भाषणकर्ता श्रमिकों के आगे तो रैडिकल बनता है और बुद्धिजीवियों के सामने अवसरवादी तो उन्हें बड़ा क्रोध आया था।

लेनिन इस बात की जानकारी पर विशेष महत्व देते थे कि स्थानीय सामग्री के आधार पर सामान्य नारों को कैसे बोधगम्य बनाया जाय। "केन्द्रीय मुखपत्र को स्थानीय आन्दोलन के लिए इस्तेमाल करने के निमित्त

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १७, पृष्ठ ३०४।

हमें सभी कुछ करना चाहिए न सिर्फ़ पुनर्मुद्रण द्वारा ही अपितु **पत्रकों में** विचारों और नारों का **विवरण देकर** अथवा स्थानीय दशाओं के अनुकूल उनका **विकास करके** अथवा उनमें रद्दोबदल करके, आदि आदि,"* लेनिन ने यह बात १९०५ में 'रबोची'** अख़बार को 'प्रोलेतारी'*** के सम्पादक मंडल की ओर से लिखी थी।

लेनिन ने बार बार इस बात पर ज़ोर दिया था कि जनता के सवाल समुचित ढंग से समझने के लिए ख़ुद जनता का अध्ययन करना ज़रूरी है। उन्होंने स्वयं ऐसा ही किया था। वे जानते थे कि जनता की बातें कैसे सुनना चाहिए, जो कुछ जनता कहती है उसे कैसे समझना चाहिए, जो कुछ श्रमिक या किसान कहने की कोशिश कर रहा है उसके तत्व को **कैसे** ग्रहण करना चाहिए।

सर्वहारा वर्ग की अधिनायकत्व के बारे में, और हर जगह के कम्यूनिस्टों को उसकी तैयारी कैसे करनी चाहिए इस संबंध में, लेनिन ने 'कम्यूनिस्ट अन्ताराष्ट्रीय संघ की द्वितीय कांग्रेस के मूलभूत कार्य विषयक प्रबन्ध' (१९२०) में लिखा था: "सर्वहारा वर्ग का अधिनायकत्व समस्त श्रमिक जनता और उन शोषितों के नेतृत्व की पूर्णतम उपलब्धि है जो

* व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ९, पृष्ठ २९३।

** 'रबोची' – मास्को में, अगस्त से अक्तूबर १९०५ तक, रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केन्द्रीय समिति द्वारा प्रकाशित अवैध सामाजिक-जनवादी अख़बार। – सं०

*** 'प्रोलेतारी' – बोल्शेवीकों का अवैध अख़बार जो रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी का मुखपत्र था। यह पत्र १४ मई १९०५ से लेकर १२ नवम्बर १९०५ तक जेनेवा में छपा था। व्ला० इ० लेनिन इसके सम्पादक थे। – सं०

दलित हैं, पीड़ित हैं, कुचले हुए हैं, त्रस्त हैं, बंटे हुए हैं और जिन्हें पूंजीवादी वर्ग ने धोखा दिया है। और पूंजीवाद के सारे के सारे इतिहास ने इस नेतृत्व के लिए केवल सर्वहारा वर्ग को ही तैयार किया है। अतएव सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व की तैयारियां फ़ौरन और हर जगह निम्नलिखित तरीक़े का प्रयोग करके की जानी चाहिए।" कम्यूनिस्टों की गोष्ठियों के महत्व पर ज़ोर देते हुए लेनिन ने कहा था: "इन गोष्ठियों का एक दूसरे के साथ और पार्टी-केन्द्र के साथ निकट का संबंध होना चाहिए और अपने अनुभवों का आदान-प्रदान करके, आन्दोलन, प्रचार तथा संघटन संबंधी कार्यों को सम्पन्न करके, अपने को सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं, श्रमिक जनता के सभी विभिन्न पेशों और शाखाओं के साथ पूर्णतया अनुकूलित करके उन्हें चाहिए कि वे अपने आपको, पार्टी को, वर्ग और समुदाय को, इस बहु-पक्षीय क्रियाशीलता के विषय में, एक क्रमबद्ध तरीक़े से शिक्षित करें।" और: "जनता की हर श्रेणी, पेशे आदि के मनोविज्ञान की विशेषताओं, उनकी अपनी ख़ासियत को समझने के लिए, मनुष्य को चाहिए कि वह विशेष संयम और ध्यानपूर्वक उनके साथ पेश आना सीखे।"*

इल्यीच का कथन था कि **जन-सम्पर्क** का मतलब सर्वहारा वर्ग के अधिनायकत्व के लिए पार्टी को तैयार करना है। और यही बात, सारे जीवन पूरी लगन के साथ काम करते रहने के बाद, उन्होंने ख़ुद भी सीखी थी।

इसी प्रकार, लेनिन **नारों के चुनाव की नक़लबाज़ी के विरुद्ध थे** जो आन्दोलन के विषय बन रहे थे। उनका विचार था कि नारों का चुनाव एक बड़ी महत्वपूर्ण चीज़ है। नवम्बर १९१८ में पार्टी के

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३१, पृष्ठ १६७, १६८।

कार्यकर्ताओं की बैठक में टुटपुंजियों की पार्टियों के संबंध में रिपोर्ट देते समय व्लादीमिर इल्यीच ने कहा था कि चूंकि ठीक नारा बदली हुई स्थिति को ध्यान में नहीं रखता अतएव हो सकता है कि समय बीतने के साथ ही साथ वह ग़लत हो जाय। उन्होंने अर्थ-संकोच अथवा अर्थ-वृद्धि पर या तथ्यों की शृंखला से – आन्दोलन के हर चरण में – उस कड़ी को चुनने पर विशेष बल दिया था, जो सारी ज़ंजीर को खींच लेने के लिए, समस्त विकासों को स्पष्ट करने के लिए, आवश्यक है।

जब मैं १८९०-१९०० के आरम्भ में एक विद्यार्थी मंडल में शरीक हुई थी, जब मैं मार्क्सवादी नहीं थी, उस समय मेरे साथियों ने मुझे पढ़ने के लिए मीरतोव (लावरोव)* के 'ऐतिहासिक पत्र' दिये थे। इनका मुझपर गहरा असर पड़ा था। कुछ वर्ष बाद जब हम शूशेन्स्कोये गांव में अपने निर्वासन के दिन काट रहे थे उस समय इस विषय पर मैंने इल्यीच से बातचीत की थी। मैंने इन पत्रों की सराहना की थी जब कि इल्यीच ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण से उनकी आलोचना की थी। मेरा आख़िरी तर्क था: "जब लावरोव कहता है कि 'जो झंडा कभी क्रान्तिवादी हो सकता है वही दूसरे क्षण प्रतिक्रियावादी भी हो सकता है' तो क्या उसका कहना ठीक नहीं?" इल्यीच इससे सहमत थे परन्तु उन्होंने कहा कि इस एक बात से लावरोव की सारी पुस्तक तो ठीक नहीं हो सकती।

पार्टी की स्थापना हो चुकने के समय से ही उसे (पार्टी को) अपने मूल सिद्धान्तों के प्रति निष्ठावान रहते हुए भी, अपने नारों में बराबर परिवर्तन करना पड़ा ताकि वे बदलती हुई दशाओं के अनुकूल बने रहें। और जिन दशाओं में पार्टी को काम करना पड़ता था वे बराबर बदलती गईं।

*प० ल० लावरोव (मीरतोव) – विख्यात नरोदनिक सैद्धान्तिक (१८२३-१९००)।

१९०५ की गर्मी की ऋतु में इल्यीच ने रूस में इस आशय का एक पत्र लिखा था कि श्रमिकों को यह बताना ज़रूरी है कि पार्टी का मुखपत्र कहीं विदेश में प्रकाशित हो रहा है, इसकी २,००० प्रतियां वितरित की जाती हैं और यह चोरी चोरी रूस में भेजा और अवैध रूप से लोगों में बांटा जाता है। किन्तु श्रमिकों के पास थोड़ी-सी ही प्रतियां पहुंचती थीं। यह स्थिति थोड़े ही महीनों में बिल्कुल बदल गई। "**अब** सर्वहारा वर्ग को प्रभावित करने का सब से बड़ा साधन है पीटर्सबर्ग से प्रकाशित **दैनिक** (हम इसकी ग्राहक संख्या बढ़ा कर एक लाख तक और मूल्य घटा कर एक कोपेक प्रति अंक तक कर सकते हैं)", लेनिन ने यह पत्र अक्तूबर १९०५ के अन्त में प्लेखानोव को लिखा था।*

दिसम्बर १९११ में इल्यीच ने 'आन्दोलनकारी मंच के रूप में राज्य की दूमा'** के अत्यधिक महत्व पर बहुत कुछ लिखा था। इसका महत्व उन उदारवादियों और सांविधानिक-जनवादियों ने भी स्वीकार किया था जिन्होंने हमेशा ही दूसरी राज्य दूमा में इस बात पर बल दिया था कि बोल्शेवीक इसे आन्दोलन का मंच मानना छोड़ दें।

मैं फिर कहती हूं कि परिवर्तित होती रहने वाली दशाओं के अनुकूल नारों में रद्दोबदल किये गये थे।

'रूसी सामाजिक-जनवादियों के कार्य' (१८९७) शीर्षक अपने पैम्फ़्लेट में लेनिन ने यह चेतावनी दी थी कि पार्टी की शक्ति का अपव्यय न किया जाय। साथ ही इस बात पर भी ज़ोर दिया था कि नगरों के सर्वहारा वर्ग के मध्य काम करने की बड़ी ज़रूरत है। उस समय

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३४, पृष्ठ ३१६।

**व्ला०इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १७, पृष्ठ ३२४।

देहातों में आन्दोलन चलाने के माने होते पार्टी की शक्तियों को फ़िज़ूल ख़र्च करना। १९०७ में इल्यीच ने लिखा था: "हमें अपने आन्दोलनात्मक और संघटनात्मक कार्यों को बढ़ा कर दस गुना कर देना चाहिए और ये कार्य उन किसानों के बीच करने चाहिए, जो गांवों में भूखों मर रहे हैं और उन किसानों के बीच भी, जिनके बेटों ने क्रान्ति के महान वर्ष को देखा है और जो पिछली शरद ऋतु में सेना में भर्ती हुए हैं।"*

पार्टी ठीक ठीक नारों को चुन सकी और ज़ंजीर की समुचित कड़ी उसके हाथों में आई। इसका कारण था – मार्क्सवादी ढंग से उचित अवसर का निश्चय करना, समस्त घटनाओं के सारे पहलुओं का, उनके विकास का विश्लेषण करना, यह निर्णय करना कि सम्प्रति विजय प्राप्त करने के लिए श्रमिक वर्ग को किस किस चीज़ की ज़रूरत है; संक्षेप में द्वंद्वात्मक मार्क्सवादी ढंग से अपने सवाल हल करना। हर चरण में पार्टी के कामों का विश्लेषण करने की दिशा में लेनिन ने काफ़ी काम किया था। नारों का ठीक ठीक चुनाव वह था जो सिद्धान्त को व्यवहार के साथ संबद्ध करता था, जो आन्दोलन को विशेष रूप से सफल बनाता था। अक्तूबर क्रान्ति के कुछ ही पूर्व बोल्शेवीकों ने शान्ति तथा ज़मीन संबंधी जो नारे लगाये थे वे ऐसे नारे थे जिनके कारण श्रमिक वर्ग की विजय निश्चित हुई थी, जिन्होंने किसानों और सैनिकों पर बड़ा असर डाला था।

लेनिन का मत था कि नारे भले ही कितने स्पष्ट क्यों न हों परन्तु यदि उनमें वास्तविकता पर कोई ध्यान न दिया गया तो वे सिवा क्रान्तिवादी लफ़्फ़ाज़ी के और कुछ भी नहीं हो सकते।

१९१८ में जब जर्मनी की शान्ति संबंधी अपमानजनक शर्तों का स्वीकार करना आवश्यक हो गया और कुछ लोगों ने शान्ति-संधि के विरुद्ध और क्रान्तिवादी युद्ध के पक्ष में अपने विचार व्यक्त किये तो लेनिन

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १२, पृष्ठ ९६।

ने उन्हें 'क्रान्तिवादी लफ़्फ़ाज़ी' शीर्षक अपने एक लेख में करारा जवाब दिया था:

"क्रान्तिवादी लफ़्फ़ाज़ी क्रान्तिवादी नारों की पुनरावृत्ति मात्र है। इस पुनरावृत्ति में विकास के संबंधित चरण में, या किसी वातावरण विशेष में पाई जाने वाली स्थूल परिस्थितियों पर, ध्यान नहीं दिया जाता। क्रान्तिवादी लफ़्फ़ाज़ी के माने हैं वे नारे जो शानदार हों, आकर्षक हों, मदोन्मत्त करने वाले हों परन्तु साथ ही निराधार हों।" और "जो व्यक्ति शब्दों, भाषणों या घोषणाओं से बहकना नहीं चाहता, वह निश्चय ही यह देखेगा कि फ़र्वरी १९१८ में क्रान्तिवादी युद्ध का जो 'नारा' लगाया गया वह ख़ाली शब्दों का जाल है और उसका न कोई वास्तविक अर्थ है न स्थूल। सम्प्रति इस नारे में मुख्य **अन्तर्भूत बातें** हैं—अनुभूति, आकांक्षा, क्रोध, रोष। और इन सब से पुष्ट नारा ही क्रान्तिवादी लफ़्फ़ाज़ी है।"*

१९०८ में प्रतिक्रिया की चरम अवस्था में लेनिन ने लिखा था:

"**राजनीतिक आन्दोलन व्यर्थ नहीं संचालित किया जाता।** इसकी सफलता इसी एक तथ्य से नहीं आंकी जाती कि हम बहुमत को अपने पक्ष में करने में तत्काल सफल हुए हैं या नहीं, और न ही समन्वित राजनीतिक कार्यवाही के संबंध में लोगों की सहमति से। शायद हम तत्काल इस सहमति को प्राप्त भी न कर सकेंगे। लेकिन, फिर चूंकि हम सर्वहारा वर्ग के एक संघटित दल हैं इसलिए हम अस्थायी विफलताओं की चिन्ता नहीं करते, अपितु निरन्तर कर्मठता और दृढ़ता के साथ **अपना काम** करते हैं भले ही दशाएं कितनी ही कठिन क्यों न हों।"**

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २७, पृष्ट १, २-३।

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १५, पृष्ठ १९५ (आरम्भ का मोटे टाइप में छपा अंश क्रूप्स्काया का है। —सं०)

जीवन इस बात का साक्षी है कि इल्यीच का कथन सत्य था। १९१२ में क्रान्ति की एक लहर उठी, १९०५ की **परम्पराएं** पुनःस्थापित हुईं और उन्होंने लेना नदी की घटनाओं के जवाब में सामूहिक हड़ताल का आयोजन करने में श्रमिकों की सहायता की। श्रमिकों ने इन परम्पराओं के अनुकूल कार्य किया और उनमें जीवन फूंका।

लेनिन का कथन था कि सामूहिक क्रान्तिकारी हड़ताल आन्दोलन का एक सर्वहारा ढंग है।

जून १९१२ में उन्होंने लिखा था: "पहले पहल रूसी क्रान्ति ने ही जनता को आन्दोलित, उत्साहित और संघटित करने तथा उसे संघर्ष में घसीटने के इस सर्वहारा ढंग का बहुत अधिक विकास किया था। और अब सर्वहारा वर्ग फिर इसी ढंग का उपयोग कर रहा है और अधिक दृढ़ता के साथ। इस ढंग का इस्तेमाल करके सर्वहारा लोगों के क्रान्तिवादी अग्रणी जो कुछ कर सके हैं उसे दुनिया की कोई ताक़त नहीं कर सकती। आज सारा देश उबल रहा है—वह देश जिसकी जनसंख्या १५ करोड़ है, जो विशाल और बंटा हुआ है, दलित है, अधिकार से वंचित है, अज्ञानता के पाश में बंधा हुआ है और अधिकारियों, पुलिस वालों और जासूसों की सेना के कारण 'दूषित प्रभाव' से दूर है। श्रमिकों और किसानों के सब से पिछड़े हुए वर्ग भी हड़तालियों के प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष सम्पर्क में आ रहे हैं। एक ही समय में लाखों क्रान्तिवादी आन्दोलनकर्ता दिखाई पड़ने लगे हैं और उनका प्रभाव इसलिए और भी बढ़ रहा है कि वे निचले वर्गों की जनता के साथ अविच्छिन्न रूप से बंधे हैं, उन्हीं की श्रेणी में रह रहे हैं, हर श्रमिक परिवार की सब से ज़रूरी आवश्यकताओं के लिए लड़ते हैं और महत्वपूर्ण आर्थिक मांगों के लिए चलने वाले सीधे संघर्ष को राजनीतिक विरोधों और राजतंत्र के विरुद्ध चलने वाले संघर्षों के साथ संबद्ध करते हैं, क्योंकि प्रतिक्रान्ति ने लाखों,

करोड़ों व्यक्तियों में राजतंत्र के विरुद्ध गहरी घृणा भर दी, उन्हें इस बात का कुछ कुछ ज्ञान कराया कि राजतंत्र क्या क्या अनिष्ट कर सकता है। और अब राजधानी के प्रगतिशील श्रमिकों का नारा – 'जनवादी जनतन्त्र अमर हो!' – हर हड़ताल के दौरान में हजारों तरह से पिछड़े हुए लोगों तक, दूरस्थ प्रान्तों में, 'जनता' तक और 'रूस के भीतरी भागों में' पहुंच रहा है।"*

जनता को तथ्यों से ही यक़ीन दिलाया जा सकता है। वह शब्दों पर नहीं, कामों पर विश्वास करती है। सोवियतों की तीसरी कांग्रेस में दिये गये अपने भाषण में लेनिन ने कहा था: "हम जानते हैं कि जनता में एक दूसरी आवाज़ उठ रही है। वे अपने आप से कह रहे हैं – बन्दूक़ वाले आदमी से डरने की कोई ज़रूरत नहीं क्योंकि वह श्रमिक जनता की रक्षा कर रहा है और शोषकों के प्रभुत्व के विरुद्ध सख़्ती से लड़ेगा। लोग ऐसा ही समझते हैं और यही कारण है कि सीधे-सादे निरक्षर लोगों द्वारा चलाया जाने वाला आन्दोलन – जब ये लोग कहते हैं कि लाल सेना के लोग शोषकों के विरुद्ध अपनी शक्ति लगाये दे रहे हैं – अजेय है।"**

गृह-युद्ध के ज़माने में आन्दोलन एक अभूतपूर्व पैमाने पर चलाया गया था। अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यपालिका समिति की ओर से आन्दोलन-ट्रेनें और जहाज़ चलाये गये थे। व्लादीमिर इल्यीच इनके कामों की बड़े निकट से देखभाल करते और आन्दोलनकर्ताओं के चुनाव,

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १८, पृष्ठ ८८।

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २६, पृष्ठ ४२०-२१।

आन्दोलन के रुख़ और किये गये काम के पंजीयन के संबंध में निर्देश जारी करते।

सोवियत सरकार द्वारा जो आज्ञप्तियां जारी की गई थीं वे प्रचार और आन्दोलन इन दोनों ही दृष्टियों से बड़े महत्व की थीं। लेनिन ने लिखा था:

"अगर हम आज्ञप्तियों में यह न बताते कि हमें कौनसा रास्ता अख़्तियार करना चाहिए तो हम समाजवादद्रोही समझे जाते। यद्यपि ये आज्ञप्तियां व्यवहार में पूर्णतया और तात्कालिक रूप से क्रियान्वित न की जा सकीं, फिर भी प्रचार की दृष्टि से उनका विशेष महत्व था। पहले हम अपना प्रचार कार्य सामान्य सत्य-कथन द्वारा करते थे परन्तु **अब अपने कार्यों द्वारा कर रहे हैं**। यह भी एक तरह का शिक्षण ही है परन्तु है कार्यों के माध्यम से – कुछ उच्छृंखल व्यक्तियों द्वारा यत्र-तत्र किये जाने वाले वैसे काय नहीं जिनका हम सब अराजकता और पुराने ढंग के समाजवाद के युग में मज़ाक़ उड़ाया करते थे। हमारी आज्ञप्ति एक पुकार है परन्तु पुरानी पुकार नहीं कि 'श्रमिको उठो और बूर्जवाओं को सत्ताविहीन कर दो!' नहीं, यह पुकार जनता के लिए है, वह उन्हें व्यावहारिक रूप से काम करने के लिए उनका आह्वान कर रही है। **आज्ञप्तियां वे निर्देश हैं जो बड़े पैमाने पर व्यावहारिक काम करने के लिए लोगों का आह्वान करते हैं**। और यही एक महत्वपूर्ण चीज़ है।"*

इल्यीच ने आन्दोलन को न सिर्फ़ प्रचार के साथ ही अपितु संघटन के साथ भी संबद्ध किया। लेनिन ने आरम्भ से ही यह कहा था कि आन्दोलन संघटित होने में लोगों की मदद करता है, उन्हें एकत्र करता है और ठोस काम करने में उनकी सहायता करता है। क्रान्ति के ज़माने

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ १८३।

में आन्दोलन का एक संघटनात्मक महत्व था। समाजवादी निर्माण के लिए भी इसका महत्व कम नहीं है। आन्दोलन के स्वरूप बदलते रहते हैं परन्तु संघटन की दृष्टि से आन्दोलन का महत्व बना ही रहता है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि **आन्दोलन का आधार है कृति, कार्य और आदर्श।**

व्लादीमिर इल्यीच **आदर्श का आधार लेकर किये गये आन्दोलन** पर विशेष ध्यान देते थे। 'सोवियत सरकार के तात्कालिक कार्य' शीर्षक अपने लेख में, जो मार्च-अप्रैल १९१८ में लिखा गया था, इल्यीच ने सोवियत दशाओं में आदर्श के आन्दोलनकारी महत्व पर ज़ोर दिया था। उन्होंने कहा था कि "उत्पादन के पूंजीवादी ढंग के अधीन वैयक्तिक आदर्श का, मसलन किसी सहकारी कारख़ाने के आदर्श का, महत्व अत्यधिक परिमित था और सिर्फ़ वे लोग ही सदाचार-रत संस्थाओं के आदर्शों के प्रभाव द्वारा पूंजीवाद को 'राहे रास्त' पर लाने का स्वप्न देख सकते थे जिनमें छोटे छोटे बूर्जवाओं जैसी भ्रान्तियां घर कर रही थीं। राजनीतिक शक्ति के सर्वहारा वर्ग के हाथ में चले जाने के बाद, स्वामित्वहरण करने वालों का स्वामित्वहरण हो जाने के बाद परिस्थिति में महान परिवर्तन होता है और, जैसे कि प्रमुख समाजवादियों ने बारबार कहा है, पहली बार आदर्श की शक्ति जनता पर अपना असर दिखाती है। आदर्श कम्यूनों को शिक्षकों, अध्यापकों के रूप में कार्य करना चाहिए और वे इस रूप में कार्य करेंगी भी और इस प्रकार पिछड़ी हुई कम्यूनों का विकास करने में मदद देंगी। समाचारपत्रों को आदर्श कम्यूनों द्वारा प्राप्त सफलताओं और उनके सम्पूर्ण विवरणों का प्रचार करके, इन सफलताओं के कारणों का, इन कम्यूनों द्वारा किये जाने वाले प्रबन्ध के तरीक़ों का अध्ययन करके तथा साथ ही अराजकता, सुस्ती, अव्यवस्था और मुनाफ़ाख़ोरी जैसी 'पूंजीवाद की परम्पराओं' को कलेजे से चिपकाये रहने वाली कम्यूनों को 'ब्लैकलिस्ट' में रख

कर समाजवादी पुनर्निर्माण के साधन के रूप में कार्य करना चाहिए।"*

आदर्शों द्वारा आन्दोलन पर विशेष बल देकर इल्यीच ने **समाजवादी स्पर्द्धा को अत्यधिक आन्दोलनात्मक महत्व** दिया था।

जिस समय गृह-युद्ध समाप्त हो रहा था उस समय इल्यीच ने इस बात पर बल दिया था कि प्रचार और आन्दोलन को नया स्वरूप देने की और उन्हें समाजवादी निर्माण, और ख़ासकर आर्थिक निर्माण तथा नियोजित अर्थव्यवस्था के कार्यों के साथ यथासंभव अधिक से अधिक संबद्ध कर देने की ज़रूरत है।

लेनिन ने कहा था: "पुराने ढंग का प्रचार साम्यवाद का वर्णन करता है और उसे अच्छी तरह समझाता है। परन्तु पुराना प्रचार बिल्कुल बेकार है क्योंकि व्यावहारिक रूप से यह दिखाना ज़रूरी है कि समाजवाद का निर्माण हो कैसे सकता है। सारा प्रचार आर्थिक निर्माण के दौरान में प्राप्त राजनीतिक अनुभवों पर आधारित होना चाहिए... अब हमारी मुख्य नीति राज्य का आर्थिक निर्माण होनी चाहिए... और यही सारे आन्दोलन और सारे प्रचार कार्य का आधार होना चाहिए...

"हर आन्दोलनकर्ता को राज्य का और आर्थिक निर्माण में लगे हुए समस्त किसानों और श्रमिकों का नेतृत्व करना चाहिए।"**

उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि अखिल रूसी केन्द्रीय कार्यकारिणी समिति की आन्दोलन-ट्रेनों और जहाज़ों को अपने राजनीतिक विभागों के कर्मचारियों में कृषिविदों और टेक्नीशियनों को शामिल करके,

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग १, पृष्ठ ४७२-७३।

**व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३१, पृष्ठ, ३४६, ३४७।

आवश्यक विषयों पर टेक्निकल साहित्य और फ़िल्में चुन कर, अपने कार्यों के आर्थिक और व्यावहारिक क्षेत्रों में सुधार करना चाहिए। उनका कहना था कि कृषि तथा उद्योग विषयों पर अपने देश में भी फ़िल्में बनें और विदेशों से भी मंगाई जायं।

लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि राजनीतिक शिक्षा संस्थाएं एक बड़े पैमाने पर औद्योगिक प्रचार कार्यों का संघटन करें। उन्होंने इस विषय की रूपरेखाएं भी तैयार की थीं और यह मांग की थी कि विदेशों में, खासकर अमेरिका में, सभी प्रकार के औद्योगिक प्रचार और आन्दोलन का, और इन विधियों का हमारे देश में उपयोग करने के संबंध में प्राप्त अनुभवों का, अध्ययन किया जाय। गोएलरो* रिपोर्ट के बाद उन्होंने श्रमिकों के समूहों को विद्युतकरण के कामों में लगाने और एक संयुक्त विद्युत प्रणाली-योजना के लिए होने वाले आन्दोलन को राजनीतिक रूप देने पर ज़ोर दिया और यह मांग की कि श्रमिकों का पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण प्रसृत किया जाय क्योंकि बिना इसके सुनियोजित अर्थव्यवस्था का सार तक समझना असम्भव है।

लेनिन ने सोवियत देश को उदाहरण और आदर्श द्वारा कार्य करने वाले एक मूल आन्दोलन केन्द्र का, और दुनिया भर के सर्वहारा वर्ग का पथ आलोकित करने वाली एक दीपशिखा का, रूप देने का स्वप्न देखा था।

*गोएलरो — रूस के विद्युतकरण के लिए राज्य कमीशन। लेनिन के निर्देशों पर इस कमीशन ने १६२० में, देश के विद्युतकरण के लिए एक दीर्घकालिक योजना तैयार की थी। — सं०

बाल संघटनों के कार्य

अन्तारराष्ट्रीय बाल सप्ताह

('प्राव्दा', १९२३)

तरुण कम्यूनिस्ट अन्तारराष्ट्रीय संघ की कार्यकारिणी समिति ने २४ से ३० जुलाई तक के लिए तृतीय अन्तारराष्ट्रीय बाल सप्ताह का आयोजन किया है। रूस में बाल आन्दोलन अभी शैशवावस्था में ही है इसलिए बाल सप्ताह द्वारा इस आन्दोलन का प्रचार किया जायेगा।

कुछ साथी प्रश्न कर सकते हैं कि "बाल आन्दोलन अथवा बाल संघटन की ज़रूरत ही क्या?" वे यह भी कह सकते हैं कि "बच्चों को बड़ा हो लेने दो, परिपक्व हो लेने दो तब वे खुद तरुण कम्यूनिस्ट लीग में शामिल हो जायेंगे। अभी वे क्या समझें? खेले-कूदें और स्कूल जायं।"

बाल कम्यूनिस्ट संघटन अपने को 'तरुण पायोनियर संस्था' कहता है। ११ वर्ष और उसके ऊपर के सभी लड़के-लड़कियां इसके सदस्य हो सकते हैं।

तरुण पायोनियर संघटन अपने सदस्यों में सामूहिक भावनाओं का सृजन करता है, उन्हें दूसरों के सुख-दुःख में शरीक होना सिखाता है, और इस बात की शिक्षा देता है कि वे सामूहिक हितों को अपने निजी हित समझें और अपने को एक समूह के सदस्य मानें। यह संघटन उनमें सामूहिक आदतें डालता है, अर्थात् अपनी इच्छा को सामूहिक इच्छा के अधीन रखते हुए संघटित और सामूहिक रूप से काम करने की योग्यता पैदा करता है और समूह के माध्यम से स्वयं अपनी प्रेरणाओं का

प्रस्फुटन करना तथा सामूहिक मत का समादर करना सिखाता है। अन्ततः वह बच्चों में यह भावना भरता है कि वे उस श्रमिक वर्ग के सदस्य हैं जो मानव सुख के लिए संघर्षरत है, कि वे अन्ताराष्ट्रीय सर्वहारा की सेना के सेनानी हैं, और इस प्रकार वह बच्चों में साम्यवाद की चेतना पैदा करता है।

ये सारे कार्य इस बात को सिद्ध करते हैं कि जितनी ही जल्दी बच्चे इस संघटन में भाग लेना शुरू करें उतना ही अच्छा होगा। श्रमिकों के बच्चे प्रायः कहते हैं: "हम पिता को तो कभी देखते ही नहीं। वे दिन में काम करते हैं और शामों को बैठकों में चले जाते हैं।" मां भी या तो काम करती है या घर-गृहस्थी अथवा बच्चों के कारण उसे फ़ुरसत ही नहीं मिल पाती। और इसलिए श्रमिकों के बच्चे अकेले पड़ जाते हैं। वे या तो बिना किसी काम से घर पड़े रहते हैं या शैतानियां करते हैं या फिर सड़कों पर घूमने वाले गुंडे-बदमाशों के फेर में पड़ जाते हैं। बाल संघटन के कारण वे ख़ुश रह सकेंगे, उनकी क्रियाशीलता का क्षेत्र व्यापक बनेगा और उन्हें सोचने-विचारने का मसाला मिलेगा।

स्वाभाविक है कि तरुण पायोनियर संघटन का संचालन प्रौढ़ संघटन की भांति नहीं होना चाहिए। अगर दोनों एक ही ढंग से चलाये गये तो बड़ा खराब होगा। मगर बाल संघटनों में साम्यवाद की भावना अवश्य भरी जानी चाहिए।

प्रथमतः इन संघटनों में आमोद-प्रमोद की अच्छी व्यवस्था हो। समूह गान, खेलकूद, तैरना, बाहर घूमना, 'कैम्पफ़ायर' वार्ता, फ़ैक्ट्रियां देखना, सर्वहारा छुट्टियों में भाग लेना इन सब की बच्चों पर अमिट छाप पड़ेगी और बच्चों के सामने संघटन अथवा समूह का एक अच्छा चित्र आयेगा। सर्वहारा छुट्टियों में भाग लेने तथा श्रमिकों के क्लबों, फ़ैक्ट्रियों तथा बैठकों में आने जाने से बच्चों और श्रमिक वर्ग का पारस्परिक सम्पर्क बढ़ेगा। इस सम्पर्क को प्रायः हर सम्भव तरीक़े से बढ़ाया जाना

चाहिए। तरुण पायोनियरों की संरक्षता महिला विभागों, पार्टी संघटनों और ट्रेड-यूनियनों द्वारा होनी चाहिए। बच्चों में वर्ग एकता का विकास करने में इन सभी संस्थाओं को अपना पूरा सहयोग देना चाहिए।

श्रमिक संघटनों को चाहिए कि वे बाल आन्दोलन सप्ताह में तरुण पायोनियरों के कार्यों का संचालन करें, उनके लिए सैर-सपाटे की व्यवस्था करें और उन्हें अपने कामों का परिचय करायं। ख़ास तौर से कुछ स्त्रियां और कुछ पुरुष चुने जायं जो बच्चों को अपने बचपन के बारे में और उन संघर्षों के बारे में सुनायं जो उन्हें करने पडे थे। संक्षेप में, श्रमिक वर्ग को चाहिए कि अन्ताराष्ट्रीय बाल सप्ताह के दौरान में वह तरुण पायोनियरों का एक प्रकार से 'दत्तकग्रहण' करे।

बच्चे बच्चे ही हैं। इसी लिए तरुण पायोनियर संघटन खेलकूद पर इतना ध्यान देता है क्योंकि खेलकूद बच्चों के शरीर को पुष्ट करने के लिए बड़ा ज़रूरी है। खेल बच्चों की शारीरिक शक्ति का विकास करते हैं, उनके हाथों को मज़बूत, शरीर को लोचदार और आंखों को तेज़ बनाते हैं। वे उनकी प्रतिभा, साधन-सम्पन्नता और प्रेरणा को प्रखरता प्रदान करते हैं। इतना ही नहीं वे बच्चों की संघटन-क्षमता, आत्मनियंत्रण, सहनशक्ति, स्थिति समझने की योग्यता इत्यादि गुणों का विकास करते हैं। बेशक, खेल अच्छे भी होते हैं और बुरे भी और ऐसे भी जिनसे बच्चे निर्दय और रुक्ष बनते हैं, जो उनमें दूसरे राष्ट्रों के प्रति घृणा का संचार करते हैं, उनके स्नायुमंडल पर कुप्रभाव डालते हैं, उनमें जुए और दूसरे व्यसनों की लत डालते हैं। कुछ खेल ऐसे हैं जो बहुत अधिक शिक्षात्मक होते हैं, जो बच्चों की मन:शक्ति को सबल बनाते हैं, उनकी न्याय-भावना का विकास करते हैं और उन्हें ज़रूरतमन्द लोगों की मदद करना सिखाते हैं। कुछ खेल ऐसे भी हैं जो बच्चों को पशु बनाते हैं और ऐसे भी जो उन्हें कम्यूनिस्ट बनाते हैं। तरुण पायोनियर संघटन

का कार्य है बच्चों को कम्यूनिस्ट बनाना। तरुण कम्यूनिस्ट लीग इस काम में उनकी मदद करती है।

लेकिन तरुण पायोनियर केवल खेलों में ही भाग नहीं लेते। आज के बच्चों ने बहुत कुछ देखा है, सुना है और वे मानव-सुख और नव-जीवन निर्माण के संघर्ष में भाग लेना चाहते हैं। शायद इस दिशा में उनका काम बहुत नहीं होगा; बस जड़ी-बूटियां इकट्ठा करना, फ़ैक्ट्रियों के सामने के बाग़ों में सफ़ाई करना तथा फूलों के पौधे बोना, शिशु-गृहों के लिए कपड़े सीना, बैठकों के निमंत्रणपत्र बांटना, श्रमिक क्लब को साज-सज्जा देना, आदि आदि। इन सामूहिक कार्यों का परिणाम यह होगा कि तरुण पायोनियर बराबर यह समझता रहेगा कि वह समाज का एक उपयोगी अंग है और अन्य रचनात्मक कार्यों को सम्पन्न करेगा। सोवियत संस्थाओं को चाहिए कि वे तरुण पायोनियर पर ध्यान दें और उन्हें उपयोगी बनने के अवसर प्रदान करें।

बाल आन्दोलन स्कूलों के लिए एक बड़ी महत्वपूर्ण चीज़ है क्योंकि इससे बच्चों में ऐसी आदतें पड़ती हैं जो उनमें 'स्वशासन' की क्षमता का विकास करती हैं, अध्यापन की नयी नयी प्रणालियों का प्रयोग करने की सम्भावनाएं पैदा करती हैं और बच्चों में पढ़ाई-लिखाई के प्रति रुचि बढ़ाती हैं। फलतः उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़ती ही जाती है। प्रगतिशील अध्यापकों को तरुण पायोनियर संघटनों का उत्साहवर्द्धन करना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय बाल सप्ताह के दौरान में स्कूलों को चाहिए कि वे तरुण पायोनियरों के लिए अपने दरवाज़े खोल दें और ये पायोनियर भी एक नये स्कूल का निर्माण करने और इस स्कूल की रीढ़ बनने में अध्यापकों की मदद करें।

२४ जुलाई से ३० जुलाई तक के इस सप्ताह में हमें रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र में बाल आन्दोलन की एक ठोस बुनियाद रखनी चाहिए।

तरुण पायोनियरों में काम की चार प्रणालियां

(तरुण कम्यूनिस्ट लीग की सातवीं कांग्रेस में दिया गया भाषण, २१ मार्च, १९२६)

साथियो, आज इस बात की जरूरत है कि तरुण पायोनियरों के मध्य किये जाने वाले कामों की रूपरेखा स्पष्ट कर दी जाय। जब कभी हम बालस्काउटों के कार्यों का उल्लेख करते हैं, भले ही यह कार्य हमें कितने ही आकर्षक क्यों न लगें, उस समय हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि इस संस्था का उद्देश्य इस बढ़ती हुई पीढ़ी को सम्राटों और पूंजीपतियों का स्वामिभक्त सेवक बनाना है। जब कभी हम बाल कम्यूनिस्ट दलों के कार्यों का उल्लेख करते हैं तो हमें इन कार्यों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। जर्मनी अथवा किसी दूसरे पूंजीवादी देश के बाल कम्यूनिस्ट दलों का प्रत्येक सदस्य यह जानता है कि उसका काम है पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध श्रमिक वर्ग के संघर्ष में इस वर्ग की सहायता करना। पूंजीवाद के ज़माने में भी हमारे बच्चे इन सब बातों को जानते थे और यद्यपि उस पुराने ज़माने में न बाल-संघटन थे और न तरुण पायोनियरों के ही कोई संघटन, फिर भी जब कभी कोई हड़ताल होती थी तो बच्चे ही जलूसों के आगे आगे चलते थे और फ़ैक्ट्री के मैनेजरों और फ़ोरमैनों पर कीचड़ फेंकते थे। ये बच्चे तन और मन से श्रमिकों का साथ देते थे। गृह-युद्ध काल में भी हमने श्रमिकों के बच्चों को, चाहे वे संघटित रहे हों या असंघटित, श्रमिक वर्ग के पक्ष में देखा था। वे यह अच्छी तरह जानते थे कि श्वेतरक्षकों से अपनी रक्षा करना बहुत आवश्यक है। उन्होंने हर तरह से इन श्वेतरक्षकों के विरुद्ध अपनी घृणा का प्रदर्शन किया था।

परन्तु अब यदि हम अपने तरुण पायोनियरों से पूछें कि उन्हें किसलिए काम करना है तो मुझे इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि प्रत्येक यह जवाब देगा कि हम श्रमिकों के हित में लड़ने को तैयार हैं। "हम

समाजवाद के लिए लड़ना और उसका निर्माण करना चाहते हैं। हम लेनिन के मार्ग का अनुसरण करेंगे।" परन्तु इस सब का क्या अर्थ है यह समझना भी ज़रूरी है। हमारा सोवियत देश पूंजीवाद और समाजवाद के संक्रमण काल से हो कर गुज़र रहा है और हमारी समस्याएं उतनी आसान नहीं हैं जितनी दिखाई देती हैं। सत्ता मज़दूरों और किसानों के हाथ में है। पूंजीपतियों की हार हुई है लेकिन हमारे सम्बन्ध उस पूंजीवादी समाज की अपेक्षा अधिक जटिल हैं जहां एक वर्ग दूसरे का विरोध करता है और इसी लिए उन वर्गों के पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट हैं। समाजवाद का निर्माण करने का प्रश्न एक ऐसा प्रश्न है जिसे पूरी स्पष्टता के साथ हल करना चाहिए। इस अवसर पर मुझे व्लादीमिर इल्यीच का एक भाषण याद आ रहा है। उन्होंने कहा था कि जब हमारे यहां कोल्चक, देनीकिन और पूंजीपति थे उस समय हमारी जनता अच्छी तरह जानती थी कि हमें क्यों और किससे लड़ना है। वह कोल्चक और देनीकिन आदि अपने शत्रुओं को अच्छी तरह पहचानती थी। लेकिन अब उन्हें अतीत के उन अवशेषों से मोर्चा लेने और नवीनता का विकास करने की ज़रूरत के संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं रह गई है।

यदि आरम्भ में एक निरक्षर श्रमिक को कभी कभी इन बातों को समझने में कठिनाई हो सकती है तो यह स्वाभाविक है कि तरुण पायोनियर के लिए वह और भी अधिक होगी। और इसी लिए हमें उसकी सहायता करनी चाहिए और उसे समझाना चाहिए कि समाजवाद के निर्माण का अर्थ क्या है। जब वह कहता है कि मैं समाजवाद के लिए लड़ने को तैयार हूं तो सचमुच वह ठीक कहता है, सचमुच उसमें जोश है, परन्तु हम उससे यह आशा तो नहीं कर सकते कि वह हमें इन सब का निहितार्थ समझा सके। पार्टी और तरुण कम्यूनिस्ट लीग का काम है तरुण पायोनियर की सहायता करना।

आपको समझना चाहिए कि समाजवाद का निर्माण करना केवल किसी नये आर्थिक आधार का निर्माण करना नहीं है और न सोवियत शासन

की स्थापना करना और उसे मज़बूत बनाना ही। इसका उद्देश्य तो एक ऐसी नयी पीढ़ी को जन्म देना है जो कम्यूनिस्टों की तरह, समाजवादियों की तरह हर समस्या को एक नये ढंग पर हल करेगी। यह एक ऐसी नयी पीढ़ी होगी जिसकी आदतें और दूसरे लोगों के प्रति जिसका व्यवहार पूंजीवादी समाज में रहने वाले लोगों से बिल्कुल भिन्न होगा। समाजवाद के निर्माण का मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि उद्योगों का विकास किया जाय, सहकारी संस्थाओं की स्थापना की जाय अथवा सोवियत शासन को मज़बूत बनाया जाय—यद्यपि यह सारी बातें अनिवार्य हैं—अपितु इसका मतलब यह भी है कि हम अपने मनोविज्ञान को एक नया रूप दें और अपने संबंधों की फिर से नींव रखें। इस दिशा में निश्चय ही तरुण पायोनियर आन्दोलन एक ज़बरदस्त काम करेगा। जो प्रौढ़ व्यक्ति पूंजीवादी वातावरण में पैदा हुआ है, बड़ा हुआ है उसके लिए अपनी पुरानी आदतें, पुराने रीति-रिवाज और पुराने संबंध छोड़ देना बहुत दुष्कर है। हमारे तरुण पायोनियर ऐसे बच्चे हैं जिनमें सामाजिक विकास की वृत्तियां जन्म ले रही हैं, बढ़ रही हैं। मगर अभी इन वृत्तियों को एक ठोस आधार पर खड़े होना है। तरुण पायोनियर आन्दोलन का यही महत्व है और इसी लिए हम पार्टी के सदस्य इसपर इतना ज़ोर देते हैं। यह प्रश्न पूर्णतः स्पष्ट हो जाना चाहिए। एंगेल्स ने लिखा था कि पुराने पूंजीवादी समाज में एक नया संसार अंगड़ाइयां ले रहा है। उसने 'इंग्लैंड में श्रमिक वर्ग की दशा' नामक अपनी पुस्तक में श्रमिक पुरुषों और स्त्रियों तथा माता-पिताओं और बच्चों के बीच पनपने वाले पूर्णतः नये संबंधों तथा भाईचारे पर आधारित एकता की बढ़ती हुई उन प्रवृत्तियों का उल्लेख किया है जो समस्त श्रमिक जनता को भ्रातृत्व की भावना में बांधने में समर्थ थीं, एक ऐसी भावना में जो निश्चय ही समाजवादी समाज की एक अपनी विशेषता होगी।

अपने तरुण पायोनियरों के आन्दोलन को देखते हुए हम कहेंगे कि हमारा काम है समस्त श्रमिक जनता के साथ भ्रातृत्व पर आधारित एकता,

ग्रौर तरुण पायोनियर संघटनों के मध्य सौहार्द एवं मैत्री की भावना का विकास करना। मुझे कई बार तरुण पायोनियरों से बातचीत करने का मौक़ा मिला है। विशेषकर मैंने उनसे उस विषय पर बातचीत की है जिसमें मेरी ख़ास रुचि रही है। यह विषय है तरुण पायोनियर संघटनों के बीच भ्रातृत्व संबंधों की स्थापना। मुझे जो उत्तर मिले हैं वे प्राय: बड़े मज़ेदार रहे हैं। उदाहरणार्थ, मुझसे एक बड़े सक्रिय तरुण पायोनियर ने उस सामाजिक कार्य के बारे में बताया जिसे वे लोग कर रहे थे। जब मैंने उससे पूछा कि वह कौनसा काम है तो उसने मुझे जवाब दिया: "हम प्राय: मिलते जुलते हैं।" मैंने इस सामाजिक कार्य के बारे में कुछ ग्रौर जानकारी प्राप्त करने की कोशिश की। ग्रन्त में मेरा ग्रभिप्राय समझ कर वह बोल उठा: "मैं स्वच्छता कमीशन में हूं।"

"उस कमीशन में क्या करते हो?" मैंने उससे प्रश्न किया। "हम ठंढे पानी का छिड़काव कराते हैं, डाक्टरों से बातचीत करते हैं। निर्देश जारी करते हैं।" "ग्रौर तुम्हारे दस्ते में कितने बच्चे बीमार हैं?" "मैं नहीं जानता। यह डाक्टर का काम है।"

निश्चय ही यह कोई ग्रच्छी बात नहीं कि स्वयं स्वच्छता कमीशन के सदस्य को यह न मालूम हो कि उसके साथी स्वस्थ हैं या बीमार, सब के सब लिख-पढ़ सकते हैं या नहीं, ग्रौर वे कैसे रहते हैं। यह भी खेदजनक है कि उसमें मित्रता की भावना न पाई जाती है।

कांग्रेस की रिपोर्ट में कहा गया था कि बच्चों के फिर से ग्रूप बनाये जायं ग्रौर एक स्कूल के बच्चे यथासम्भव एक ही तरुण पायोनियर संघटन के हों। बेशक यह ठीक भी है क्योंकि ऐसा संघटन एकरूप होना चाहिए जिसकी स्थापना सभा-समाज के लिए ही नहीं, ग्रपितु सम्पर्क ग्रौर पारस्परिक सहायता के लिए हुई हो। हर मुमकिन तरीक़े से सौहार्द की भावना को मज़बूत बनाना चाहिए। लेकिन सम्प्रति हो क्या रहा है? कल मुझे एक तरुण पायोनियर का एक पत्र मिला था। वह लिखता है, "मैं एक पिछड़ा

हुआ पायोनियर हूं और शीघ्र ही तरुण पायोनियरों के वर्ग से निकाल दिया जाऊंगा। मैंने यरोस्लाव्स्की की पुस्तक* बड़े ध्यान से पढ़ी है, प्रायः ज़बानी रट ली है। कृषि के प्रति कम्यूनिस्टों के क्या विचार हैं यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। लेकिन मुझे यह सोच कर निराशा होती है कि मैं प्रार्थना नहीं करता। कृपया मुझे कुछ ऐसी पुस्तकें भेज दें जिनसे मैं कुछ सीख सकूं।" इस पत्र से क्या पता चलता है?

इससे पता चलता है कि यह तरुण पायोनियर अपने संघटन में खुश नहीं है, उसने यरोस्लाव्स्की की पुस्तक अच्छी तरह नहीं पढ़ी है और शायद उसे अच्छी तरह समझता भी नहीं। उसके साथी उसे पिछड़ा हुआ कहते हैं और उसे तरुण पायोनियरों के संघटन से निकाल देने की धमकी देते हैं। यही कारण है कि बच्चा अकेलापन महसूस करता है। और इसी लिए उसे धर्म की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है। अगर हमें धर्म को एक तरफ़ रख कर अपना काम करना है तो हमें ऐसी सामूहिक संस्थाओं की स्थापना करनी होगी जिनमें सौहार्दपूर्ण एकता की भावना हो और जो तरुणों को उन्हीं के भाग्य के भरोसे न छोड़ दें।

तरुण पायोनियर संघटन का मुख्य कार्य है सौहार्दपूर्ण एकता का विकास करना और मैत्री की भावनाओं को समुन्नत एवं सुदृढ़ बनाना। इस संघटन के कार्य सभाएं, विचार-विनिमय अथवा खेलकूद कुछ ही क्यों न हों उनमें सौहार्दपूर्ण एकता की भावना निश्चय ही होनी चाहिए।

दूसरी बात। प्रत्येक युवक पायोनियर सामाजिक कार्यकर्ता हो। मेरी मुलाक़ात एक ऐसे अध्यापक से हुई थी जो कई वर्षों तक अमेरिका

*यरोस्लाव्स्की (१८७८-१९४३) – प्रसिद्ध सोवियत राजनीतिज्ञ और पत्रकार, जिसने अपनी विख्यात कृति 'आस्तिकों और नास्तिकों के लिए बाइबिल' में यह सिद्ध किया था कि बाइबिल के सिद्धान्त पूर्णतः विज्ञान विरोधी हैं। – सं०

में रह कर रूस लौटा है। उससे मेरी बातचीत भी हुई जो बड़ी दिलचस्प रही। आपका क्या ख्याल है कि जिस समय वह विदेश में था उस समय रूस में ऐसा कौनसा परिवर्तन हुआ था जिसने उसे सब से अधिक प्रभावित किया होगा? यह परिवर्तन था—लोग अब 'मैं' के स्थान पर प्रायः सर्वनाम 'हम' का प्रयोग करने लगे थे। उसने बताया कि सड़कों पर बच्चे प्रायः 'हम' शब्द का प्रयोग करते हैं। यही बात लाल सेना के सिपाहियों पर और लड़कियों पर भी लागू होती है। यही एक बात थी जिसका उस अध्यापक पर सब से ज्यादा प्रभाव पड़ा था। सहसा उसकी निगाह एक सुन्दर पोशाक वाली स्त्री पर पड़ती है और वह उसे कहते हुए सुनता है, "और मैंने कहा था।" हर व्यक्ति 'हम' का प्रयोग करता है लेकिन यह बूर्जवा जैसी महिला कहती है 'मैं'। निश्चय ही यह एक ऐसी बात थी जिसकी ओर उसका ध्यान आकृष्ट हुआ था। हर चीज़ इस ओर इशारा कर रही है कि 'मैं' का स्थान 'हम' लेगा। लेकिन यह काफ़ी नहीं है। हर समस्या को सामान्य हितों और जनता के दृष्टिकोण से देखने की शिक्षा ग्रहण करना भी ज़रूरी है। इस संबंध में जो कुछ भी हो रहा है वह बहुत संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। उदाहरणार्थ, प्रायः हम दिन में बिजली के बल्ब जलते हुए देखते हैं और किसी को भी यह ज़रूरत नहीं महसूस होती कि वह उन्हें बुझा दे। शायद वे सोचते हैं कि यह मेरा काम नहीं; लोगों को इस काम की अलग तनख्वाह मिलती है। या एक दूसरी मिसाल ले लीजिये। एक बीमार आदमी सड़क पर पड़ा है और उसके पास से लोग गुज़र रहे हैं। पर वे सोचते हैं "यह काम मिलीशिया का है।" हमारे चारों ओर जो कुछ हो रहा है उसके प्रति इतनी उदासीनता! जहां जहां सामूहिक सहायता की ज़रूरत है वहां हस्तक्षेप तक न करना! यह सब ऐसी बातें हैं जो हमारे समाज में बहुत अधिक पाई जाती हैं। हमें चाहिए कि हम उन्हें दूर करने की कोशिश करें। इसमें कोई संदेह नहीं कि सामाजिक उपयोगिता के जिस

काम का उल्लेख भाषणकर्ता ने किया है – बशर्ते कि उसका सुचारु रूप से संघटन किया जाय, वह तरुण पायोनियरों की शक्ति के बाहर न हो, उसके परिणाम व्यावहारिक हों – वह सामूहिक भावना और बच्चों में सामाजिक उत्तरदायित्व का विकास करने का एक सर्वोत्तम साधन है।

जिस समय व्लादीमिर इल्यीच ने सहकारिता के बारे में लिखा था (और हम उनके इस लेख का हमेशा ही हवाला दिया करते हैं) उस समय उन्होंने न सिर्फ़ व्यापारिक सहकारिता के बारे में अपितु श्रम-सहकारिता के बारे में भी अपने विचार व्यक्त किये थे। इस लेख का संबंध एक दूसरे लेख 'महान आरम्भ' से है जिसमें उन्होंने सुबोतनिकों* के बारे में लिखा था। उन्होंने कहा था कि ज़रूरत इस बात की है कि नये नये श्रम-संबंध स्थापित किये जायं। भूदासत्व के दिनों में लोग कोड़ों के डर से और पूंजीवाद के ज़माने में भूख के डर से काम करते थे। अब ज़रूरत है मिल जुल कर काम करने की, सामूहिक रूप से काम करने की और पूरी लगन के साथ काम करने की।

तरुण पायोनियरों में इस सामूहिक सहकारी श्रम-भावना का विकास करना बड़ा ज़रूरी है। मैं आपका ध्यान एक बात की ओर आकृष्ट करूंगी। हमारे श्रमिक प्रायः कहते हैं, "हमारे तरुण पायोनियरों की दशा देख कर आंखें भर आती हैं।" मैं समझती हूं कि पार्टी के सदस्य और श्रमिक तरुण पायोनियरों में श्रम का संघटन करने में काफ़ी मदद कर सकते हैं। यही पर्याप्त नहीं है कि तरुण पायोनियर क्लब के पास सुयोग्य शिक्षक हो। इससे ज्यादा ज़रूरी यह है कि वह सुनियोजित श्रम, श्रम-विभाजन, श्रम-क्षेत्र में पारस्परिक सहायता और श्रमिकों के उपयुक्त संघटन के महत्व को समझे। बड़े पैमाने पर उत्पादन और फ़ैक्ट्रियों और प्लान्टों में श्रम-

* छुट्टी के दिनों में या ओवर-टाइम काम करके राज्य को दी जाने वाली निःशुल्क मेहनत।

संघटन से श्रमिकों को श्रम-समस्याओं पर ठीक ठीक कार्यवाही करने की शिक्षा मिलती है। श्रमिक अपनी फ़ैक्ट्री में श्रम-संघटन का ज्ञान प्राप्त करता है। उसे चाहिए कि इस ज्ञान को वह तरुण पायोनियरों में भी बांटे। प्रौढ़ श्रमिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे श्रम का संघटन करने में तरुण पायोनियरों की सहायता करें।

और अब एक आखिरी बात। बच्चे प्रायः कहते हैं, "बाबा लेनिन बच्चों को प्यार करते थे और हमसे कहते थे पढ़ो और पढ़ो।" वस्तुतः यह तो संक्षेप में वही बात है जिसे प्रायः अध्यापक बताया करते हैं। यह ठीक है कि व्लादीमिर इल्यीच ने बार बार इस बात पर ज़ोर दिया था—और आज हर व्यक्ति उसका कारण भी समझता है—कि ज्ञान प्राप्त करना अनिवार्य है और बिना इसके एक नये जीवन का निर्माण करना असम्भव। वह कहते थे कि श्रमिकों और किसानों के बच्चों के लिए तो ज्ञान प्राप्त करना विशेष रूप से अनिवार्य है। लेकिन खुद उन्होंने भी एक कम्यूनिस्ट तरीक़े से और इस श्रम में पारस्परिक सहायता का बहुत अधिक विकास करके ज्ञानार्जन की आवश्यकता पर ज़ोर दिया था।

मैं समझती हूं ये ऐसे सिद्धान्त हैं जिनपर तरुण पायोनियरों में होने वाला कार्य आद्धृत होना चाहिए। इसके अर्थ हैं सौहार्दपूर्ण एकता का विकास करना, प्रत्येक प्रश्न को एक सामाजिक ढंग से देखना, सामूहिक तथा सहकारी ढंग से काम करने तथा ज्ञान प्राप्त करने की योग्यता पैदा करना। यदि हम कार्य की इन चारों प्रणालियों की ठीक ठीक व्याख्या करेंगे तो हम तरुण पायोनियरों के आन्दोलन में ऐसी ऐसी बातों का समावेश कर सकेंगे जिनका समावेश अभी तक एक क्रमबद्ध तरीक़े पर उसमें नहीं हो सका है। यह समय की मांग है। साथियो, मैं इन्हीं सब बातों के लिए आपसे अपील करती हूं। पार्टी के प्रत्येक सदस्य, तरुण कम्यूनिस्ट लीग के प्रत्येक सदस्य और तरुण पायोनियरों के प्रत्येक नेता का कर्तव्य है कि वह इस ओर कार्य करे और प्रयास करने के साथ ही साथ इन

सभी समस्याओं पर सोच-विचार भी करे। तरुण पायोनियरों का हमारा आन्दोलन एक खास तरह का आन्दोलन है, जो किसी भी दूसरे देश में नहीं हो सकता। तरुणों की पीढ़ी पर अगर कोई सब से अधिक प्रभाव डाल सकता है तो वह यही आन्दोलन है। हमें चाहिए कि हम इसकी मांगों पर ध्यान दें और इसका कार्यक्षेत्र व्यापक बनायें। बस मैं यही कहना चाहती थी।

तरुण पायोनियर आन्दोलन – एक शिक्षणशास्त्रीय समस्या

('उचीतेल्स्काया गज़ेता,' अंक १५, ८ अप्रैल, १९२७)

हम बार बार कह चुके हैं कि स्कूल और तरुण पायोनियर आन्दोलन एक ही उद्देश्य की पूर्ति करते हैं अर्थात् वे बच्चों को इस योग्य बनाते हैं कि बच्चे एक नयी व्यवस्था के लिए संघर्ष और उसका निर्माण कर सकें। तरुण पायोनियरों के आन्दोलन का लक्ष्य ऐसे युवक पैदा करना है जो समाजवाद और साम्यवाद का निर्माण करें। समाजवाद के निर्माण का अर्थ यही नहीं है कि श्रम-उत्पादिता बढ़ जाय या अर्थ-व्यवस्था सुधर जाय। बेशक, अतिविकसित सामाजिक अर्थ-व्यवस्था जन-कल्याण का आधार है, उसकी नींव है। समाजवादी निर्माण की मुख्य बातें हैं – समस्त सामाजिक व्यवस्थाओं का पुनस्संघटन, नयी सामाजिक व्यवस्था की स्थापना और लोगों में नये नये संबंधों का विकास। हम जिस जीवन का निर्माण करना चाहते हैं वह सिर्फ़ भरपूर ही न हो, अपितु सुखद भी हो।

हमें चाहिए कि हम प्रौढ़ों को समाजवादी भावना के अनुसार पुन:शिक्षित करें और तरुणों की पीढ़ी में इस भावना का नये सिरे से विकास करें। इसका उद्देश्य क्या है? व्लादीमिर इल्यीच ने इस भावना की बड़ी आसान व्याख्या की है। श्रमिकों और लाल सेना के सैनिकों की ग़ैर-पार्टी कान्फ़ेन्स में उन्होंने कहा था: "पुराने ज़माने में लोग कहा

करते थे कि हर शख़्स अपने लिए और ईश्वर सब के लिए; और उसका नतीजा देखो–मनुष्य कितना दुखी है। अब हम कहेंगे कि एक व्यक्ति सब के लिए और बिना ईश्वर की सहायता के किसी प्रकार अपना काम चलायेंगे।"

यद्यपि ये शब्द शिक्षा के सिलसिले में नहीं कहे गये थे फिर भी मैं समझती हूं कि उनसे हमें स्पष्ट पता चल जाता है कि हमें अपने ज़माने की शिक्षा-समस्याएं कैसे हल करनी चाहिए। हमें चाहिए कि हम बच्चों का पालन-पोषण इस ढंग से करें कि उनकी रग रग में सामूहिक भावना का प्रवेश हो सके। यह किया कैसे जाय? यहीं शिक्षणशास्त्र विषयक एक गम्भीर समस्या सामने आती है।

बूर्जवा पद्धति में श्रमिकों के बच्चों तथा ज़मींदारों और पूंजीपतियों के बच्चों का पालन-पोषण भिन्न भिन्न तरीक़ों से होता है। बूर्जवा यही कोशिश करता है कि श्रमिकों के बच्चे आज्ञाकारी ग़ुलाम बनें और ज़मींदारों और पूंजीपतियों के बच्चे नेता। वह कोशिश करता है कि श्रमिकों के बच्चों का व्यक्तित्व और निजत्व समाप्त हो जाय। अतएव उसकी सारी शिक्षा-पद्धतियां एक इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिए तथा उन्हें निष्क्रिय बनाने के लिए हैं। और अगर उसके तरीक़े कुछ बच्चों पर कारगर नहीं होते तो बूर्जवा उन्हें आगे बढ़ाता है, दूसरों के विरुद्ध खड़ा करता है और अपने स्वामिभक्त नौकरों की श्रेणी में ला पटकता है। शासक-वर्ग के बच्चों के लिए पढ़ाई-लिखाई की विधियां बिल्कुल भिन्न हैं। बूर्जवा ऐसे बच्चों को उन व्यक्तियों का रूप देता है जो जनता और समूह के विरुद्ध खड़े होते हैं और उन्हें सिखाता है कि जनता पर शासन कैसे करना चाहिए।

शिक्षा की सोवियत प्रणाली का उद्देश्य है–हर बच्चे की योग्यता, क्रियाशीलता, जागरूकता, निजत्व और व्यक्तित्व का विकास करना। यही कारण है कि हमारी शिक्षा-प्रणाली बूर्जवा पब्लिक स्कूलों की शिक्षा-

प्रणाली से भिन्न है। शिक्षा के हमारे तरीक़े उन तरीक़ों से एकदम भिन्न हैं जिनका उपयोग बूर्जवा बच्चों को पढ़ाने-लिखाने में किया जाता है। बूर्जवा इस बात का प्रयत्न करता है कि अपने बच्चों को इस ढंग से शिक्षण दे कि वे अपने को दूसरों से अलग समझें और जनता का विरोध करें। कम्यूनिस्ट शिक्षा-प्रणाली में दूसरे तरीक़ों का इस्तेमाल किया जाता है। हम बच्चों के चतुर्दिक विकास पर जोर देते हैं – हम चाहते हैं कि हमारे बच्चे नैतिक और शारीरिक दोनों प्रकार से सबल बनें, हम उन्हें शिक्षा देते हैं कि वे अपने को समुदाय का एक अंग समझें और व्यक्तिवादी ही बन कर न रह जायं। हमारा लक्ष्य है कि हम बच्चों को यह सिखाय कि वे समुदाय के विरुद्ध न खड़े हो कर उसकी शक्ति बनें और उसे एक नये, ऊंचे स्तर पर स्थापित करें। हमारा विश्वास है कि बच्चे का व्यक्तित्व सिर्फ़ समुदाय में ही सब से अधिक विकसित हो सकता है। सामुदायिक शिक्षा से बच्चे के व्यक्तित्व का विनाश नहीं होता, अपितु शिक्षा का क्षेत्र व्यापक बनता है और शिक्षा देने का ढंग समुन्नत।

इस दृष्टि से तरुण पायोनियर आन्दोलन बहुत कुछ कर सकता है। प्रश्न यह है कि शिक्षा संबंधी कार्यों में वह कौनसा रास्ता अपनाये? पहले तो यह कि तरुण पायोनियरों को मौक़ा मिलना चाहिए कि वे दूसरे बच्चों के अनुभवों में शरीक हों, उनसे फ़ायदा उठायें। जिस बच्चे के भाई-बहन न हों तथा मां 'हानिकर प्रभावों से' जिसकी रक्षा बड़ी उत्कंठा के साथ करती हो उसमें सामूहिक भावनाएं कभी न आ सकेंगी।

तरुण पायोनियर संघटन को इस बात पर बराबर ध्यान देना चाहिए कि उसके सदस्यों को एक दूसरे के अनुभवों में शरीक होने का हर सम्भव अवसर मिलता रहे। इसके माने यह नहीं हैं कि उनके लिए 'मनोविनोद की व्यवस्था की जाय', और सिनेमा-नाटक आदि का प्रबंध किया जाय। सवाल उनके मनोविनोद का नहीं अपितु यह है कि उनके संघटन के कार्यों को सजीव और भावुकतापूर्ण बनाया जाय।

ऐसे भी मामले देखने-सुनने में आये हैं जबकि पायोनियर नेता रैली में देर से आता है और तरुण पायोनियर उसके इन्तज़ार में इधर-उधर मटरगश्ती करते हैं। और जब नेता आता भी है तो उनके साथ धूम्रपान और अनुशासन के संबंध में ऐसी चर्चाएं ले बैठता है जो मन को उबा डालती हैं। या फिर बहुत हुआ तो राजनैतिक शिक्षा की कक्षा शुरू कर देता है। परिणाम यह होता है कि ऐसे संघटन टूट जाते हैं।

समूह-गान, रोचक और बौद्धिक खेलकूद, सामूहिक वाचन इत्यादि को संघटित करने की क्षमता भी अनिवार्य है। ऐसा करना बच्चों की एकता के लिए बहुत ज़रूरी है, क्योंकि इन कामों में बच्चों को दूसरों के जिस सुख-दुख में शरीक होना पड़ता है उससे वे एक दूसरे के और पास आते हैं। ऐसे कामों में औपचारिकता कम होनी चाहिए और तत्व की बातें अधिक। किन किन खेलों को चुनना चाहिए यह देखना भी ज़रूरी है, क्योंकि कुछ खेल ऐसे होते हैं जो बच्चों की सामूहिक भावना के विकास में बाधक बनते हैं और उन्हें एकता के सूत्र में बांधने के बजाय उनका विघटन करते हैं। बच्चे कौन कौन सी पुस्तकें पढ़ें यह एक दूसरा ज़रूरी सवाल है—उन्हें पढ़ने के लिए वे गन्दी पुस्तकें दी जायं जिनसे व्यक्तिवाद की अहम्-भावना का विकास होता हो अथवा वे पुस्तकें जो सचमुच उपयोगी हों?

एकता के मार्ग में जिन दूसरी चीज़ों की ज़रूरत है वे हैं—निकट की मैत्री, मित्रों की स्कूली और घरेलू स्थिति की जानकारी, उनकी सहायता करना, आदि। जिसे ज्यादा आता है उसे चाहिए कि अपने पिछड़े हुए साथियों की उन कामों में मदद करे जो उन्हें घर के लिए दिये गये हैं। जिसके पास खाना ढेर है उसे चाहिए कि अपना भोजन उन व्यक्तियों के साथ मिल बांट कर खाये जिन्हें खाना नहीं मिलता। जिसके पास घर-गृहस्थी की झंझटें नहीं हैं उसे चाहिए कि उन लोगों के कामों में हाथ बंटाये जो इन

झंझटों में फंसे रहते हैं। तरुण पायोनियर संघटनों में सौहार्द के आधार पर सुसंघटित पारस्परिक व्यवहार की व्यवस्था होनी चाहिए।

तीसरी बात है सामूहिक अध्ययन, पढ़ना-लिखना, सैर-सपाटा, दीवालपत्र, डायरी इत्यादि, इत्यादि। यह बात खास तौर से ज़रूरी है कि बच्चों को एक ओर ऐसे समूहों में न बांटा जाय जो बहुत सक्रियता से काम करते हों, हर काम को पूरा कर लेते हों और इसी लिए काम से बुरी तरह लदे रहते हों, और दूसरी ओर उन निष्क्रिय बच्चों के समूहों में न रखा जाय जिन्हें कोई भी काम न दिया जाता हो। सामूहिक प्रयास, श्रम का सम्यक् विभाजन, सम्यक् रूप से कार्यों का वितरण, बच्चों की निजी रुचियों का सामूहिक हितों के साथ सामंजस्य ये सारी समस्याएं ऐसी हैं जिनका समाधान होना ही चाहिए।

चौथी बात है श्रम के संबंध में व्यक्ति की निजी कुशल मेहनत को सामूहिक श्रम के साथ समन्वित करना, श्रम क्षेत्र में वैयक्तिक और सामूहिक स्वभावों का विकास, श्रम का समुचित समन्वय, किये गये कार्य को आंकना, पारस्परिक नियंत्रण, जीवन के सभी आर्थिक क्षेत्रों में सहयोग।

पांचवीं बात है संघटन के भीतर अनुशासन बनाये रखने की स्वतः-उद्भूत भावना। कम्यूनिस्ट सुबोतनिकों के संबंध में लेनिन ने 'महान आरम्भ' शीर्षक अपने लेख में पूंजीवाद के अधीन स्थापित अनिवार्य अनुशासन के स्थान पर स्वतःउद्भूत और चेतनाशील सामाजिक अनुशासन का समर्थन किया है। स्कूल और तरुण पायोनियर संघटन में अनुशासन और दंड के संबंध में क्या कार्यवाही की जाय इसपर भी लेनिन ने इस लेख में प्रकाश डाला है।

और आखिरी बात है सामाजिक कार्य तथा सामूहिक कार्यों के माध्यम से प्राप्त ज्ञान और पड़ी हुई आदतों का सभी की भलाई के लिए उपयोग। हम सामाजिक कार्य के चुनाव के संबंध में विचार करेंगे। इसके

अन्तर्गत स्वेच्छा और जागरूकता के साथ किया जाने वाला चुनाव, सामूहिक निर्णय, सामूहिक नियोजन, योग्यता और क्षमता का वास्तविक अनुमान आदि अनेक बातें आती हैं। तरुण कम्यूनिस्ट लीग की तीसरी कांग्रेस में व्लादीमिर इल्यीच के दिये गये भाषण के अधिकांश का संबंध सामाजिक कार्यों तथा सामाजिक उपयोगिता के सामूहिक श्रम से था।

इस प्रश्न का कई बातों से निकट का संबंध है, जैसे प्रौढ़ नर-नारियों को अपने बच्चों की सामूहिक शिक्षा और स्वाध्याय में कैसे मदद करनी चाहिए? स्कूल तथा तरुण पायोनियर आन्दोलन के बीच कैसे संबंध होने चाहिए?

उपर्युक्त प्रश्नों का संबंध अनेक ऐसी समस्याओं से है जो अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। फलतः तरुण पायोनियर आन्दोलन के नेताओं और शिक्षाशास्त्रियों को उन्हें हल करना चाहिए।

हमारे बच्चों को उन पुस्तकों की ज़रूरत है जो उन्हें वास्तविक अन्ताराष्ट्रीयवादी बनायेंगी

('लितेरातूर्नया गज़ेता', १७ अक्तूबर, १९३३)

मुझे वह दिन याद आ रहा है जब मैं एक स्विस स्कूल देखने गई थी। स्कूल की परिचय-पुस्तिका में इस बात का उल्लेख था कि स्कूल का अपना पुस्तकालय है। मैं एक पाठ सुनने बैठ गई और जब वह समाप्त हुआ तो मैंने अध्यापिका से पुस्तकालय दिखाने का अनुरोध किया।

"हमारे यहां तो कोई पुस्तकालय नहीं," उसने जवाब दिया, "और सच पूछिये तो उसकी हमें ज़रूरत भी नहीं। यह काफ़ी है कि बच्चे पाठ्यपुस्तकों को ही ठीक ठीक पढ़ते रहें। देखिये तो कि ये कितने सुन्दर चिकने काग़ज़ पर छपी हैं और इनमें कितने बढ़िया चित्र हैं।"

यह बात स्वीट्ज़रलैंड के एक गांव की अध्यापिका ने कही थी।

एक साल बाद मुझे पेरिस और वहां के रंगीन जीवन के दर्शन करने का मौक़ा मिला। वहां के स्कूली बच्चों को ढेरों पुस्तकें दी जाती थीं और सभी में बूर्जवा नैतिकता और धनियों के आदर्शों के बखान रहते थे। यह बात १६०८-०६ की है। मैंने अपने ज़माने में इसके बारे में लिखा था। अब दुनिया में ऐसे 'शान्त कोने' नहीं रहे। डूबते को तिनके का सहारा मिला। मरणासन्न पूंजीवाद बढ़ती हुई पीढ़ी से चिपका हुआ है और हर सम्भव तरीक़े से—इनमें बच्चों की पुस्तकें भी शामिल हैं—युवकों को बरगलाने में लगा है। ये पुस्तकें सीधी-सादी ज़बान में, बड़े कौशल के साथ, लिखी मिलती हैं। इनमें सनसनीखेज़ बातें होती हैं और भ्रामक विषय। इस वर्ष हमारी पाठ्यपुस्तकें ख़राब नहीं रही हैं किन्तु बहुत कुछ अच्छी पाठ्यपुस्तकें निकाल चुकने के बाद अब हम स्कूलों में पुस्तकालय खोल रहे हैं और यह देख रहे हैं कि हमारे बच्चे और अधिक पुस्तकें पढ़ें। सचमुच हमें बच्चों के लिए अच्छी पुस्तकों की ज़रूरत है, ऐसी पुस्तकों की ज़रूरत है जिनमें साम्यवाद की भावना हो, जो बच्चों में जोश भरें, सीधी-सादी ज़बान में हों और सच्चाई के साथ लिखी गई हों।

ऐसी पुस्तकें ज़रूर लिखी जानी चाहिए। और वे लिखी जायं न सिर्फ़ हमारे प्रतिभासम्पन्न बच्चों के लिए, जो हमारे सारे क्रिया-कलापों में एक महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और जिन्हें देख कर हमारे विदेशी दर्शक सराहना करते करते नहीं थकते, अपितु साधारण से साधारण स्कूली बच्चों तक के लिए। पहले की अपेक्षा अब हमें साधारण बच्चों पर अधिक ध्यान देना चाहिए। क्या हम इन साधारण स्कूली बच्चों को जानते हैं? शायद नहीं। हम भूल जाते हैं कि वे उस पीढ़ी के हैं जिसने न तो ज़ार के किसी सिपाही, या पूंजीपति को ही देखा है और न शोषण को ही। ये बच्चे वर्गविषमताओं, वर्ग-संघर्ष और पूंजीपतियों के विरुद्ध श्रमिक वर्ग संघर्ष के बारे में ज़रा भी नहीं जानते। आज के प्रौढ़ व्यक्ति अपने बचपन में 'बॉस', 'मजदूर', 'शोषक' और 'शोषित' जैसे

शब्दों के अर्थ जानते थे और इसी लिए उन्हें यह नहीं समझ पड़ता कि आजकल के बहुत से बच्चे इन शब्दों के बारे में बिल्कुल नहीं जानते और बहुतों के लिए तो ये शब्द निस्सार धारणाएं मात्र हैं। और कभी कभी कोई योग्य विद्यार्थी, जो तरुण पायोनियर की लाल टाई भी लगाये होगा, ऐसी बेतुकी बात बोल सकता है जिसे सुन कर उस प्रौढ़ को यह विश्वास भी न जमेगा कि बच्चा इतनी साधारण बात तक नहीं जानता। आज का बच्चा ऐसी बहुत सी बातें जानता है जिन्हें कल का बच्चा नहीं जानता था, लेकिन फिर भी आज का बच्चा ऐसी कोई चीज़ नहीं जानता जिसे देहात और शहर के बच्चे और श्रमिकों के बच्चे अपने छुटपन ही में जानते थे। अध्यापक को इस बात का सन्देह तक नहीं होता और तरुण पायोनियर नेता इसपर कोई ध्यान नहीं देता। बच्चों को जो कुछ बताया जाता है उसे वे, इन छोटी छोटी बातों के बारे में अनभिज्ञ होने के कारण, अपने ही और कभी कभी बड़े विचित्र तरीक़े से समझते हैं। बच्चों को अधिकाधिक पढ़ना चाहिए। हमारे यहां विगतकालीन पूंजीवाद संबंधी पुस्तकें हों, ऐसी पुस्तकें जो ईमानदारी के साथ, सच्चाई के साथ लिखी गई हों, जिन्हें पढ़ कर जोश आता हो और पुरानी व्यवस्था के प्रति घृणा पैदा होती हो। परन्तु इस व्यवस्था का पूरी सच्चाई के साथ, यथावत् और उसकी सारी जटिलताओं सहित चित्रण किया गया हो और साथ ही यह चित्रण यथासम्भव संगत हो, ठोस हो। इस प्रकार की पुस्तकें काफ़ी अधिक होनी चाहिए। हमारे पास बच्चों की पुस्तकें ऐसी हों जिनमें पूंजीवादी देशों में चलने वाले संघर्ष का स्पष्ट एवं यथावत् चित्रण हो। हाल ही में जर्मनी से सोवियत संघ आये हुए एक साथी ने कहा था: "मैंने आपके तरुण पायोनियरों से बातचीत की है और वे इस बारे में बिल्कुल नहीं जानते कि हमारे तरुण पायोनियर कैसे रहते हैं और उन्हें कितना कठिन संघर्ष करना पड़ रहा है। जी हां, इन सब का उन्हें रत्ती भर ज्ञान नहीं!"

बच्चों को यह समझाना बड़ा ज़रूरी है कि "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" इस नारे का क्या महत्व है। यदि आप इस नारे को नहीं समझते, यदि आप इसके महत्व को नहीं समझते तो आप श्रमिक वर्ग के सच्चे हिमायती नहीं बन सकते। यह नारा क्रियाशीलता का पथ-प्रदर्शक है, सारी दुनिया के श्रमिक वर्ग की विजय का प्रतीक है। बच्चों को चाहिए कि वे इसे अच्छी तरह समझ लें। और अगर वे उसे एक बार भी समझ लेंगे तो फिर निश्चय ही यह समझ जायेंगे कि फ़ासिस्टवाद क्या है और उसे विश्वव्यापी श्रमिक संघटन से क्यों भय लगता है।

समाज विज्ञान के अध्यापक प्रायः बच्चों को यथासम्भव अधिक से अधिक 'तथ्य' देने का प्रयास करते हैं और उनकी स्मृति को संक्रमणकालीन अथवा, ज़्यादा से ज़्यादा, उदाहरणों के रूप में संग्रहीत तथ्यों से बोझिल बना देते हैं। अगर उनके शिष्य ब्यौरे देने में कुड़मुड़ाते हैं तो वे उन्हें नम्बर कम देते हैं, लेकिन उन्हें यह बात समझ में नहीं आती कि बच्चे अन्ताराष्ट्रीय बाल सप्ताह संबंधी मूल बातें समझते हैं या नहीं। बच्चे तभी अन्धराष्ट्रवादी विचारों से दूर रह सकेंगे जब वे इस नारे को समझ सकें– "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!"

हाज़िरी के समय तरुण पायोनियर नेता इस बात का ध्यान रखता है कि बच्चों को अन्तारा्ष्ट्रीय बाल सप्ताह के नारे याद रहें, लेकिन उसे यह कभी ध्यान नहीं आता कि कोई छोटी सी बालिका उन्हें अपने ही ढंग से कह-सुन सकती है क्योंकि वह उनके सार को नहीं समझती। और फिर भी अगर 'अन्तारा्ष्ट्रीय सप्ताह' को महज़ दान-खाते नहीं जाना है तो इसे समझाने के लिए बहुत बड़े कौशल की ज़रूरत होगी। बच्चे 'अन्तारा्ष्ट्रीय बाल सम्मेलनों' में क्या कहें उन्हें यह समझाने के लिए बहुत कुछ करना होगा। इन सम्मेलनों में बड़ी धूमधाम रहती है परन्तु वहां भाषणकर्ता यह कहना सुनना भूल जाते हैं कि अन्तारा्ष्ट्रीय सर्वहारा वर्ग ने कौन कौन से संघर्ष छेड़े हैं।

हमें ऐसी पुस्तकें चाहिए जो बच्चों में अपेक्षित अन्ताराष्ट्रीय विचारों को जन्म दे सकें। ये किन रूपों में हों इसकी कोई चिन्ता नहीं। भले ही वे परी-कथाओं के रूप में क्यों न हों। बस कथा में सच्चाई हो और त्यागरत बच्चों के लिए केवल संवेदनात्मक आंसू ही न बहाये गये हों, और वह बच्चों को यह सिखाती हो कि वे फ़ासिस्टवाद की काली शक्तियों के विरुद्ध लड़ने वाले बालबच्चों की इज़्ज़त करें, उन माता-पिताओं की इज़्ज़त करें जो, बच्चों के प्रति आशंकित रहते हुए भी, उनसे आगे बढ़ने और मोर्चा लेने के लिए कहते हों। कथा का एक उद्देश्य यह भी हो कि वह हमारे बच्चों को स्वतंत्रता के साहसी सेनानी बनने की शिक्षा देती हो। यही मुख्य चीज़ है। हमें ऐसी पुस्तकें चाहिए जो बच्चों से गम्भीरतापूर्वक बातें करती हों न कि केवल बाल सुलभ ढंग से। परी-कथाएं, 'बच्चों की' छोटी छोटी कहानियों से उनका मनोरंजन करने के साथ साथ प्रायः उन्हें अधिक गम्भीर बातें सिखाती हैं। प्रश्न यह नहीं है कि जो कुछ उन्हें सिखाया जाय उसका स्वरूप क्या हो अपितु यह है कि उसका विषय क्या हो।

बच्चों का चतुर्दिक विकास

('वोजाती' पत्रिका, अंक ६, १९३७)

... हम प्रायः ओर से छोर तक पहुंच जाते हैं। पहले लोगों का कहना था कि बच्चों में राजनीतिक चेतना का विकास उनकी शैशवावस्था से ही होना चाहिए। ये लोग बच्चों से ऐसे ऐसे गम्भीर विषयों पर बातचीत करते थे, जिन्हें बच्चे कुछ भी नहीं समझ पाते थे। ये लोग बच्चों को स्कूल जाने से पहले ही कम्यूनिस्ट बना डालना चाहते थे। यह बात ग़लत थी। वस्तुतः हमें न तो उनके साथ बहुत अधिक 'बच्चों' जैसा व्यवहार करना चाहिए और न उन्हें मन्द-बुद्धि ही समझना चाहिए। हमें उन्हें

बहुतेरी बातें बतानी चाहिए, उनके ज्ञान-क्षेत्र का प्रसार करना चाहिए और सामाजिक कार्यकर्ता बनने में उनकी मदद करनी चाहिए। हम उन्हें अधिकतर अप्सरा-कथाएं सुनाते हैं, और आजकल, जब जीवन खुद ही प्राय: कहीं अधिक दिलचस्प है। और हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे यहां अप्सरा-कथाएं कई प्रकार की हैं।

ऐसी आकर्षक अप्सरा-कथाएं हैं जो लोगों के आचरणों और मानव-संबंधों का स्पष्ट चित्रण करती हैं और ऐसी भी, जो बच्चों के दिमाग़ों को आक्रान्त करती हैं और वातावरण के संबंध में उनकी जानकारी बढ़ाने में बाधक सिद्ध होती हैं। जीवन बच्चों को मजबूर करता है कि वे बहुत सी चीज़ों पर ध्यान दें और यहां हम हथियार नहीं डाल सकते। बूर्जवा सरकारें बच्चों में बूर्जवा राजनीति और धर्म की आदत डालती हैं और दूसरे राष्ट्रों के प्रति उनमें घृणा पैदा करती हैं। ये सरकारें बच्चों को धोखा देने में बड़ी सिद्धहस्त हैं और इसी लिए वे सारे कार्य बड़े कौशल के साथ सम्पन्न करती हैं। इस क्षेत्र में न सिर्फ़ बूर्जवाओं को ही अपितु कैथालिक चर्च को भी काफ़ी अनुभव है।

हमें बच्चों की जागरूकता में वृद्धि करनी है और इस विषय में पुस्तक को हमारी सहायता करनी है। हमारे यहां बच्चों के अच्छे और अधिक पुस्तकालय होना बहुत जरूरी है। लेकिन यही तो काफ़ी नहीं है। बच्चे क्या पढ़ें यह देखना भी ज़रूरी है। इस दृष्टि से अच्छी पुस्तकों का चुनाव करना आवश्यक है। अब जब हमारे सामने देहातों के सांस्कृतिक स्तर को नगरों के सांस्कृतिक स्तर तक लाने का सवाल आता है तो यह जरूरी हो जाता है कि गांवों के बच्चों के पास आवश्यक पुस्तकें हों, और देहाती स्कूलों में भी सचमुच श्रेष्ठ साहित्य हो, ऐसा साहित्य जिसे बच्चे समझ सकें, जो उन्हें अच्छा लगे, उनके दृष्टिकोण को व्यापक बनाये।

बच्चों को तरुण पायोनियरों के क्रिया-कलाप पसन्द हैं। वे इनमें भाग लेते हैं। एक दिन जब हम गांवों के पुस्तकालयों की एक प्रतियोगिता

आयोजित कर रहे थे तो मैंने पुस्तकालयों के बारे में बच्चों को एक पत्र लिखा था और उस समय मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ जब सामूहिक और राजकीय फ़ार्मों पर काम करने वाले लोगों ने मुझे बताया कि बच्चे ही पुस्तकालयों का सब से अधिक प्रचार करते हैं। परन्तु ऐसे भी मौक़े आते हैं जब बच्चे ये चीज़ें ज़रूरत से ज़्यादा कर डालते हैं। एक बार एक बालक ने मुझे पत्र लिख कर बताया कि उसने अपना हर ख़ाली क्षण सामूहिक किसानों के समक्ष पढ़ने में बिताया था और वे कहते थे "ओह, हमें कुछ विश्राम भी करने दोगे कि नहीं ?"

स्कूल के पुस्तकालयों के निमित्त पुस्तकें चुनने के लिए यह आवश्यक है कि बच्चों की दिलचस्पियों और उनके विकास-स्तर पर भी विचार कर लिया जाय। पुस्तकालय की स्थापना हो जाने के बाद बच्चों को चुनाव की स्वतंत्रता भी देनी चाहिए। जब मैं लोगों को यह कहते सुनती हूं कि अमुक अमुक अवस्था के लोगों को अमुक अमुक पुस्तकें पढ़नी चाहिए तो निश्चय ही मुझे क्रोध आ जाता है। बच्चों को इतना बच्चा भी समझना क्या! उन्हें चुनाव की कुछ न कुछ स्वतंत्रता अवश्य होनी चाहिए और अपनी योग्यता का परिचय देने का अवसर अवश्य मिलना चाहिए। जब बच्चे किसी चीज़ की योजना बनाते हैं उस समय वे अपनी अंत:प्रेरणा का परिचय देते हैं, अपने को संघटित करना सीखते हैं। इस प्रकार उनकी अनुशासन भावना में वृद्धि होती है। उन्हें उस प्रकार का काम दिया जाना चाहिए जिसमें उनकी दिलचस्पी हो, जो उन्हें अच्छा लगे।

बच्चों का विकास किस स्तर तक हो चुका है इसपर भी विचार कर लेना ज़रूरी है। मैंने अभी हाल ही में एक अप्सरा-कथा का नाट्य रूपान्तर देखा था। इसमें बहुत सी दिलचस्प बातें थीं, गुलाब की झाड़ी का खिलना आदि। लेकिन मैं समझती हूं कि उन बच्चों के लिए यह कथा बड़ी जटिल है जो रूसी सामन्तों, ज़ारशाही दूतों अथवा पुराने ज़माने

के ज़ारों के बारे में कुछ नहीं जानते। और इसी लिए बच्चों की समझ में यह कथा नहीं आई। जहां तक ११, १२ साल के बच्चों का संबंध है उन्हें यह अप्सरा-कथा बिल्कुल पसन्द नहीं आई।

पता नहीं क्यों हम यह सोचने लगे हैं कि ज्ञान सिर्फ़ पुस्तकों से ही प्राप्त किया जा सकता है। लेकिन हम जीवन का अनुकरण करना नहीं जानते, यह नहीं जानते कि इसका निरीक्षण एवं अध्ययन कैसे किया जाय, नये ढंग से जीवनयापन कैसे किया जाय। यह बात न हमीं जानते हैं, न तरुण पायोनियरों के नेता ही और न शिक्षक ही। फिर भी खेल-कूद और सैर-सपाटों से हमें यह पता चल सकता है कि जीवन क्या है। अपने पाठशाला-इतर कार्यों के दौरान में हमें सैर-सपाटों आदि का काम उठाना चाहिए और प्रकृति, प्राणियों और जीवन का अध्ययन करना चाहिए। हम यह बात नहीं सिखाते। हमारे मंडल प्रायः या तो खेल-कूद के लिए होते हैं या फिर नाटक-तमाशे के लिए।

फिर हम यह सोचते हैं कि साहित्यिक, प्राकृतिक विज्ञान अथवा इतिहास मंडल का काम है शिक्षा में विकास करना। हम यह सोचने के आदी हो गये हैं कि ऐसे मंडल में कोई ऐसा शिक्षक अवश्य होना चाहिए जो बच्चों को वे सारी बातें बताये जो उन्हें जाननी चाहिए। हम समझते हैं कि उन्हें चिड़ियों की तरह अपने मुंह खोल देना चाहिए और जो कुछ भी उन्हें चुगाया जाय उसे निगल लेना चाहिए। हम बिना शिक्षक के मंडल की कल्पना तक नहीं कर सकते—उस समय जब कि हमें ज्यादा ज़रूरत इस बात की है कि बच्चे ख़ुद ही अपनी अन्तःप्रेरणा से काम लें।

दुर्भाग्यवश हम बच्चों की रुचियों और उनकी मांगों की ओर काफ़ी ध्यान नहीं देते। और यह एक ऐसी चीज़ है जो तरुण पायोनियरों के नेताओं और अध्यापकों को जाननी चाहिए। जब पेदोलोजिस्टों की इसलिए आलोचना की जाती है कि वे बच्चों के प्रति उदासीन और औपचारिक

रूप से व्यवहार करते हैं, उन्हें योग्य और अयोग्य इन दो श्रेणियों में रखते हैं और उनके पालन-पोषण तथा विकास में कोई सहायता नहीं देते तो फिर आलोचना ठीक ही होती है। अगर हम यह नहीं जानते कि बच्चों की ज़रूरतें क्या हैं, अमुक अमुक उम्र का बच्चा किस किस चीज़ में दिलचस्पी लेता है, वह अपने चारों ओर की चीज़ों को देख कर क्या समझता है तो हमें अपने कामों में कभी सफलता नहीं मिल सकती।

हम संस्कृति-प्रासादों के बारे में बहुत कुछ कहते सुनते हैं। जिस समय मैंने यह सुना था कि पुराने बोल्शेवीकों के संघ के भवन को केवल अत्यधिक प्रतिभाशाली बालक-बालिकाओं के प्रासाद का रूप दिया गया है तो मुझे बड़ा क्रोध आया। हमारे देश में ऐसे बच्चे लाड़-दुलार से बिगड़ जाते हैं। एक दिन इस प्रासाद में मेरी मुलाक़ात एक बालिका तथा उसकी अध्यापिका से हो गई। मैं उसकी ओर मुड़ी और अध्यापिका ने मुझसे कहा : "यह एक बड़ी होनहार लड़की है।"

अगर हम अपने बच्चों से कहें कि वे होनहार हैं तो हम उन्हें बिगाड़ देंगे। मुझे इस संबंध में व्लादीमिर इल्यीच से हुई एक बातचीत की याद आ रही है। मैंने उन्हें एक अच्छे योग्य बच्चे के बारे में बताया था जिसके माता-पिता उसे कन्सर्ट ले जाया करते थे। उन्होंने मुझसे कहा था कि इस बच्चे को उसके मां-बाप से ले लेना चाहिए नहीं तो वे ही उसकी मौत का कारण बनेंगे। इल्यीच की भविष्यवाणी ठीक निकली। मां उस बच्चे को विदेशों में ले गई, उसने लोगों को दिखाया कि उसका बच्चा कितना होनहार है और आख़िर में बच्चा मस्तिष्क ज्वर के कारण मर गया। बेशक, हमेशा ऐसी दुर्घटनाएं नहीं होतीं परन्तु यह उदाहरण तो शिक्षात्मक है ही।

हमें होनहार बच्चों के दिमाग़ में यह बात नहीं बिठलानी चाहिए कि वे असाधारण हैं, और न ही उन्हें कोई विशेषाधिकार देने चाहिए।

हमें सिर्फ़ यही देखना है कि उन्हें हर तरह की शिक्षा मिलती रहे। इससे उन्हें नुक़सान नहीं होगा। इसके विपरीत, जब वे बड़े होंगे तो वे कोई ऐसा पेशा चुन सकेंगे जो हर तरह से उनके उपयुक्त सिद्ध होगा। किसी लड़की के लिए पहले ही से यह निश्चित कर लेना कि वह नर्तकी बनेगी, या लड़के के लिए यह तय कर लेना कि वह इंजीनियर बनेगा, एक अनुचित बात है।

हमें सभी बच्चों की चिन्ता और उनकी यथासम्भव अधिक से अधिक सहायता करनी चाहिए।

पाठशाला-इतर कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। इससे बच्चों के समुचित पालन-पोषण में मदद मिलती है और उनके चतुर्दिक विकास के लिए अपेक्षित दशाओं का सृजन होता है। हमें चाहिए कि हम उनकी प्रेरणाशक्ति को प्रखर बनायें, रचनात्मक कार्यों में उनकी मदद करें, उनका पथप्रदर्शन करें और उनके हितों को ठीक दिशा में अग्रसर करें। माता-पिता प्रायः लाड़-दुलार में अपने बच्चों को बहुत अधिक सिनेमा देखने की या थियेटर जाने की अनुमति दे देते हैं। सिनेमा बच्चों में उत्तेजना पैदा करता है। आप उन्हें ध्यान से देखें तो आपको लगेगा कि चित्र देखने के पश्चात् बच्चे प्रायः अपनी मां से रुक्षता का व्यवहार करने लगते हैं या फिर अपने सहपाठियों से झगड़ा मोल ले लेते हैं। बेशक, बच्चों को आप फ़िल्में दिखाइये मगर वे फ़िल्में जिन्हें वे समझ सकते हों, जिनमें उन्हें मज़ा आये, जो उनके सामान्य ज्ञान को व्यापक बनायें। प्रौढ़ों के देखने के लिए बनाये गये फ़िल्मों को देख कर बच्चे प्रायः मतलब नहीं समझते लेकिन अभिनेताओं की नक़ल करते हैं। मुझे बताया गया कि बच्चों ने चैपलिन की किसी फ़िल्म में पेंचकश द्वारा नाक खोली जाती हुई देख कर ख़ुद भी पेंचकश लेकर वैसा ही करने का प्रयत्न किया था। आवश्यकता इस बात की है कि उन्हें सार समझना और ठीक दिशा में सोचना-विचारना चाहिए।

हमें बच्चों के टेक्निकल मंडलों की संख्या में वृद्धि और फ़ैक्ट्रियों तथा बिजलीघरों में सैर-सपाटे की व्यवस्था करनी चाहिए, आदि। हर संस्कृति-प्रासाद में ऐसे ऐसे कमरों की व्यवस्था होनी चाहिए जहां बच्चे अपनी इच्छानुसार जो चाहें कर सकें।

बच्चों का पालन-पोषण इस ढंग से होना चाहिए कि वे उस काम को चालू रख सकें जो उनके बाप-दादाओं ने आरम्भ किया था। व्लादीमिर इल्यीच चाहते थे कि बच्चे अपने पिताओं द्वारा शुरू किये गये कामों में सफलता प्राप्त करें। वे कहा करते थे कि हमारे बच्चे और भी अच्छी तरह लड़ना सीखेंगे और उन्हें विजय मिलेगी।

बच्चों को आवश्यक ट्रेनिंग देने, उनके चरित्र का विकास करने, उपयोगी बनने की उनकी इच्छा को प्रोत्साहित करने और सामाजिक कार्यकर्ताओं और समुदायवादियों के रूप में उनका पालन-पोषण करने की दिशा में अधिकाधिक ध्यान दिया जाना चाहिए। उनके चतुर्दिक विकास की अच्छी देखरेख की जाय ...

युवक संघटन

युवक लीग

('प्राव्दा', २७ मई, १९१७)

बूर्जवा शिक्षाशास्त्री युवकों की 'नागरिक शिक्षा' की आवश्यकताओं पर बहुत कुछ कहते हैं, बहुत कुछ लिखते हैं। उनके लिए नागरिक शिक्षा के माने हैं निजी संपत्ति और वर्तमान शासनतंत्र की इज़्ज़त, अन्धराष्ट्रवाद (या, जैसा वे स्वयं कहते हैं देशभक्ति), दूसरे राष्ट्रों से घृणा करना इत्यादि। बच्चों में ये भावनाएं भरने के लिए वे ऐसे सभी तरह के संघों का संघटन करते हैं, जिनमें ये अनुभूतियां पनप सकती हैं। उदाहरणार्थ, बाल-स्काउटों को ले लीजिये। जहां तक बच्चों का सवाल है वे खुश हैं कि उन्हें अपनी शक्ति और अपनी प्रतिभा के प्रदर्शन का अवसर मिलता है। ये बेचारे नहीं समझते और न देखते ही हैं कि यह संघटन उनकी आत्मा को विषाक्त कर रहे हैं। उनकी आत्मा में जो विष प्रवेश कर रहा है वह बूर्जवाई दृष्टिकोण और नैतिकताओं का विष है। इसी विष के कारण युवक वर्ग मुक्ति के उस महान आन्दोलन में भाग लेने में असमर्थ है जो दुनिया में दमन और शोषण को नष्ट करने के लिए, समाज का वर्गों में विभाजन करने के लिए, और मानव जीवन को सुखद बनाने के लिए आरम्भ किया गया है। हमने इस नागरिक शिक्षा के परिणामों को रूस में, पेत्रोग्राद में उस समय देखा था जबकि अस्थायी सरकार के पक्ष में प्रदर्शन करने के लिए माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थियों को भड़काया गया था। ये लोग श्रमिक वर्ग के शत्रुओं से घिरे हुए,

बढ़िया बढ़िया हैट पहने हुए पुरुषों, सुन्दर पोशाकों वाली स्त्रियों और ऐसे व्यक्तियों के साथ चल रहे थे जो कहते थे कि लेनिन ने जर्मनी के रुपये से श्रमिकों को घूस दी है, जो समाजवादियों को गालियां देते थे और उन भाषणकर्ताओं को मारते मारते बेदम कर देते थे जो ईमानदारी के साथ इस भीड़ के सामने कोई सच्ची बात कहना चाहते थे। युवकों को समझाया जाता था कि इस भीड़ के साथ प्रदर्शन में भाग लेने में वे अपने नागरिक कर्त्तव्यों का ही पालन कर रहे हैं।

हर युवक संघटन अच्छा नहीं होता। कुछ ऐसे संघटन भी हैं जो बाह्यतः बच्चों का मनोरंजन करते हैं किन्तु यथार्थतः उन्हें गुमराह करते हैं।

'नागरिक शिक्षा' की एक क़िस्म और है, यानी वह नागरिक शिक्षा जो युवक श्रमिकों में जान डालती है। यह उनमें सर्वहारा वर्ग की एकता की महान अनुभूति जाग्रत करती है, "दुनिया के मज़दूरों, एक हो!" इस नारे को उनतक पहुंचाती है, इसके प्रति उनमें आस्था उत्पन्न करती है और उन्हें "भ्रातृ शान्ति के लिए, पावन स्वतंत्रता के लिए" लड़ने वालों की कोटि में रखती है। दुनिया के तरुण श्रमिक सर्वहारा वर्ग की अपनी अपनी युवक लीगों की स्थापना करते हैं। ये लीगें युवक अंतारार्ष्ट्रीय संघ में मिल कर एक समान लक्ष्य की प्राप्ति के लिए श्रमिक वर्ग के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर बढ़ती हैं। युवक अंतारार्ष्ट्रीय संघ का विघटन युद्ध में भी नहीं हुआ था। उस खूंख़ार युद्ध में भी इस संघटन ने समस्त देशों के समस्त तरुण श्रमिकों का आह्वान किया और उन्हें आदेश दिये कि वे उसे मज़बूत बनायें, और अपने आन्दोलन को आगे बढ़ायें। बहुत समय तक इस युवक अन्तारार्ष्ट्रीय संघ की जर्मन शाखा की अध्यक्षता कार्ल लीब्क्नेख़्त करता रहा। इस व्यक्ति ने, स्वार्थपूर्ण उद्देशों को लेकर लड़े जाने वाले सर्वभक्षी युद्ध के ख़िलाफ़ बड़े साहस के साथ अपनी आवाज़ बुलन्द की, अपने देश की सरकार की खुल

कर भर्त्सना की और इन सब के परिणामस्वरूप उसे कठोर श्रम कारावास का दंड मिला। युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ की रूसी शाखा का प्रतिनिधित्व श्रमिक युवकों के उस अन्ताराष्ट्रीय सम्मेलन में ठीक ठीक नहीं किया जा सका था जो अन्ताराष्ट्रीय महिला सम्मेलन के बाद १९१५ में आयोजित किया गया था। इसका कारण यह था कि रूसी निरंकुशता के अधीन रहते हुए काम करनेवाले युवक नर-नारी किसी अच्छे संघटन का निर्माण नहीं कर सकते थे। इसका एक कारण यह भी था कि युद्ध ने अंताराष्ट्रीय सम्पर्कों को कठिन बना दिया था और रूस के साथ संचार के साधनों की कोई संभावना न रह गई थी। लेकिन रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी की केन्द्रीय समिति ने इस सम्मेलन में अपना एक सदस्य भेजा था जिसने रूसी श्रमिक युवकों के नाम से यह घोषणा की थी कि वे तन-मन-धन से दुनिया के तरुण श्रमिकों के साथ हैं और अन्ताराष्ट्रीय झंडे के नीचे उनके साथ साथ आगे बढ़ रहे हैं। और केन्द्रीय समिति का कहना सच था। यह बात पेत्रोग्राद की फ़ैक्ट्रियों और प्लान्टों के शिशिक्षुओं ने सिद्ध कर दी थी – इनके संघटन में अब ५०,००० सदस्य हो चुके थे। उन्होंने युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ की रूसी शाखा का शिलान्यास किया है और वे समस्त युवक श्रमिकों से एक होने का अनुरोध कर रहे हैं – सिर्फ़ उन्हीं श्रमिकों से नहीं जो फ़ैक्ट्रियों और प्लान्टों में काम करते हैं लेकिन दस्तकारी उद्यमों के शिशिक्षुओं से भी, व्यापारिक संस्थापनों के तरुण कर्मचारियों और अख़बार बेचने वाले तरुणों से भी। संक्षेप में वे इस प्रकार का अनुरोध उन समस्त किशोरों और नौजवानों से कर रहे हैं जिन्हें अपना श्रम बेचना पड़ता है। वे मास्को, मास्को क्षेत्र, येकातेरिनोस्लाव, ख़ारकोव – सारांश यह कि रूस के समस्त भागों के तरुणों से अनुरोध कर रहे हैं कि वे उनके साथ मिल कर चलें और सुखद भविष्य के लिए, समाजवाद के लिए, अपनी लड़ाई जारी रखें। युवक अंताराष्ट्रीय संघ की रूसी शाखा अमर हो!

तरुण श्रमिकों के लिए संघर्ष

('प्राव्दा', ३० मई, १९१७)

भविष्य उनका है जिनके पीछे श्रमिक-युवकों की शक्ति है। सारे संसार के समाजवादी इस बात को समझते हैं और इसी लिए युवकों में अपना प्रचार करते हैं। वे निष्कपट भाव से अथवा अपने विचारों या अपने आप को छिपाये बिना युवकों के पास जाते हैं, उन्हें साफ़ साफ़ और निश्चित रूप से समझाते हैं कि उनके लक्ष्य क्या हैं और वे किस लिए लड़ रहे हैं। वे इन युवक श्रमिकों से कहते हैं, "तुम सर्वहारा वर्ग की संतान हो, तुम्हें जम कर मोर्चा लेना होगा। विजय पाने के लिए तुम्हें अपने में वर्ग-चेतना पैदा करनी होगी, अपना संघटन करना होगा और साफ़ साफ़ समझना होगा कि तुम जा कहां रहे हो। और जितनी ही जल्दी तुम सर्वहारा की समस्याएं समझ लो उतना ही अच्छा। तुम फैक्ट्रियों और प्लान्टों में काम करते हो, तुम चाहो या न चाहो जीवन ने तुम्हें सर्वहारा के वर्ग संघर्ष में घसीट लिया है। तुम तब तक इसके बाहर नहीं रह सकते जब तक वर्ग संघटन के साथ गद्दारी न करो। पश्चिमी यूरोप के समाजवादी युवक संघटन सर्वहारा के संघटन हैं। उनके अखबारों और उनकी पत्रिकाओं में एक निश्चित राजनैतिक विचारधारा होती है।

बूर्जवा पार्टियां श्रमिक युवकों को सर्वहारा दल से अलग करना और उनके संघटन की वर्ग-चेतना को कमज़ोर बनाना चाहती हैं।

लेकिन उन्हें खुल्लमखुल्ला ऐसा कहने की हिम्मत नहीं होती, क्योंकि वे जानते हैं कि अगर उन्होंने ऐसा किया तो युवक श्रमिक उनकी एक न सुनेंगे, उनसे अपना संबंध-विच्छेद कर लेंगे। यही कारण है कि जब वे युवकों से मिलते हैं तो किसी पार्टी के सदस्यों के रूप में नहीं अपितु हमेशा सदय, संवेदनाशील लोगों के छद्म-वेश में ही। वे युवकों की उदारता का लाभ

उठा कर पहले-पहल उनके मनोनुकूल बातें करते हैं और यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि जो कुछ वे कह रहे हैं वह उन्हीं के हित में है। सीधे सीधे यह कहने के बजाय कि श्रमिक पार्टी ख़राब है वे कहते हैं : "साथियो, तुम्हारी बुद्धि अभी परिपक्व नहीं है। अभी तुम्हें राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए और निश्चित रूप से कोई एक मत नहीं अपनाना चाहिए। पहले अच्छी तरह अध्ययन करो, ज्ञानार्जन करो और उसके बाद ही कहीं तुम सम्यक् रूप से निश्चय कर सकोगे कि तुम्हारे लिए कौनसी पार्टी उचित है। किसी को ऐसा मौक़ा मत दो कि वह तुमपर अपना प्रभाव डाले। अपने व्यक्तित्व और अपनी स्वतंत्रता की रक्षा करो।" और प्रायः युवक साथी इन अपीलों के अनुसार आचरण करते हैं। और यह देख कर, कि उनका ज्ञान सीमित है उन्हें अभी बहुत कुछ अध्ययन करना है, वे इन लोगों की बातों का विश्वास कर लेते हैं। वे "अपनी आध्यात्मिक स्वतंत्रता की रक्षा करो" जैसे शब्दों में व्यक्त रुक्ष चाटुकारिता पर ध्यान नहीं देते। क्या एक अनुभवहीन व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक स्वतंत्रता की रक्षा कर सकता है? उससे कहा जाता है कि वह राजनीति से नाता तोड़ ले और इतिहास, साहित्य आदि का अध्ययन करे। किन्तु आख़िर इतिहास की, साहित्य के इतिहास आदि की किताबों में रहता क्या है — उसके लेखक का सांसारिक दृष्टिकोण ही तो। बूर्जवा लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक में उसके विचारों का संग्रह मिलता है और ये विचार पाठक पर अपनी छाप छोड़ते हैं। अतएव ऐतिहासिक और साहित्यिक पुस्तकों की सहायता से अनुभवहीन व्यक्ति को प्रभावित करना पूर्णतः सम्भव है।

पाठक अगर जीवन से अनभिज्ञ है तो वह इस प्रभाव से भी अनभिज्ञ रहेगा। और इस प्रकार बूर्जवा हमेशा युवकों पर अपना प्रभाव डालता है — हां स्पष्ट और प्रत्यक्ष रूप से नहीं अपितु अप्रत्यक्ष रूप से।

यह प्रभाव सब से ख़राब क़िस्म का होता है। लोग कहते हैं: "अभी तुम्हें राजनीति में नहीं पड़ना चाहिए, किसी को ऐसा मौक़ा न दो कि

वह तुमपर प्रभाव डाले," लेकिन उनका मतलब होता है "सिवा मेरे और मेरी पार्टी के और दूसरे को कोई ऐसा मौक़ा न दो कि वह तुमपर प्रभाव डाले।"

रूसी युवक अब संघटित होने लगे हैं। पहले क़दम सब से अधिक महत्वपूर्ण हैं, सब से अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण, क्योंकि बहुत हद तक वे युवक का मार्ग निश्चित करते हैं—क्या रूसी युवक संघटन सर्वहारावादी होगा, क्या वह अपने देश के श्रमिक संघटनों और युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ में काम करेगा और क्या वह स्वयं अपना सर्वहारा पत्र प्रकाशित करेगा जिसमें सीधी-सादी और जनता की भाषा में आर्थिक और राजनीतिक सवालों की चर्चा होगी या वह श्रमिकों के आन्दोलन से, अस्थायी रूप से, अपना नाता तोड़ लेगा और सांस्कृतिक एवं शिक्षात्मक ढंग का कोई ऐसा पत्र प्रकाशित करेगा जिसपर बूर्जवा वर्ग का प्रभाव होगा और जिसमें स्थूल विषयों की चर्चा होगी। पहली स्थिति में, पेत्रोग्राद के कार्यकारी युवक संघटन रूस के समस्त श्रमिक युवकों को संघटित करने की दिशा में शायद बड़ा सम्मानित काम करेंगे। दूसरी में, वे ग़ल्तियां करेंगे जिसके परिणामस्वरूप इस संघटन के विकास में विलम्ब होगा। हमें इसमें कोई सन्देह नहीं कि पेत्रोग्राद का क्रान्तिकारी युवक संघटन पहला रास्ता चुनेगा।

श्रमिक युवक कैसे संघटित हों?

('प्राव्दा', २० जून, १९१७)

रूस भर से 'प्राव्दा' के पास जो पत्र आया करते हैं उनमें प्राय. यही प्रश्न पूछा जाता है। युवकों की यह प्रबल इच्छा होती है कि वे संघटित हों, लेकिन संघटन कैसे किया जाय इस संबंध में वे कुछ भी नहीं जानते। प्राय: वे नहीं जानते कि वे यह काम कैसे उठायें और अपने कंधों

पर ऐसे ऐसे काम ले लेते हैं जो या तो बहुत बड़े होते हैं – जैसे "स्वतंत्र रूप से पार्टी का कोई कार्यक्रम निश्चित करना" – या बहुत छोटे – जैसे "पूर्णतः सांस्कृतिक एवं शिक्षात्मक उद्देश्य"। संघटन को ठीक मार्ग पर चलाने के लिए उन्हें चाहिए कि वे सामान्य नियम निश्चित करें, प्रतिनिधियों की तथा युवकों की अन्य बैठकों में उनपर विचार-विनिमय करें और फिर पूरे उत्साह के साथ उनके अनुसार काम करें। ये नियम जल्दबाज़ी में स्वीकार नहीं किये जाने चाहिए। उनपर भली भांति विचार-विनिमय होना चाहिए क्योंकि अगर ऐसा नहीं किया जाता और कोई संघटन उन्हें अंगीकार करने में जल्दबाज़ी से काम लेता है तो रूसी श्रमिक युवक को एकता के सूत्र में बांधना बड़ा कठिन होगा। पार्टियां बड़े गम्भीर वाद-विवाद के बाद ही कोई नियम अंगीकार करती हैं। सामान्य बैठकों में इन नियमों के कई कई मसौदों पर विचार-विनिमय होता है, हर पैराग्राफ़ और हर शब्द तौला जाता है और तब कहीं कोई निश्चय होता है। युवकों के लिए यह कार्य बड़ा कठिन है क्योंकि एक तो उनमें ज्ञान की कमी रहती है और दूसरे वे भिन्न भिन्न पार्टियों के नियमों से परिचित नहीं होते और इसी लिए अपनी बात साफ़ साफ़ कहने के आदी नहीं होते। सामान्य नियम बनाने की दिशा में नवयुवकों की सहायता करने के लिए मैं सुझाव देती हूं कि वे निम्नलिखित मसौदे पर विचार-विनिमय करें।

रूसी तरुण श्रमिक लीग के नियम

पैरा १: रूस में काम करने वाले सभी तरुण जन – लड़के, लड़कियां, युवक नर-नारी, जो अपनी श्रम शक्ति के विक्रय पर जीवित रहते हैं – बिना उनके धर्म या उनकी मातृभाषा का विचार किये हुए, 'रूसी तरुण श्रमिक लीग' के रूप में संघटित किये जाते हैं।

इस बात पर ज़ोर देना बहुत आवश्यक है कि लीग में, बिना लिंग-भेद, धर्म और राष्ट्रीयता का विचार किये हुए, तरुण जन ही लिये जायेंगे।

यदि इस बात पर ध्यान न रखा गया तो कुछ युवक लीगें लड़कियों अथवा लाटवी, पोलिश, यहूदी, तातार आदि को न लेने का निश्चय कर सकती हैं। इससे मुख्य उद्देश्य को क्षति पहुंचेगी और श्रमिक वर्ग की भ्रातृत्व भावना के सिद्धान्त को ठेस लगेगी।

पैरा २: 'रूसी तरुण श्रमिक लीग' का उद्देश्य स्वतंत्र एवं वर्ग-चेतना वाले नागरिकों और उस लड़ाई में भाग लेने वाले योग्य व्यक्तियों को प्रशिक्षित करना है जो समस्त दलित और शोषित व्यक्तियों को पूंजीवादी जुए से मुक्त करने के लिए, सर्वहारा होने के नाते, उन्हें आगे बढ़ानी होगी।

इस उद्देश्य पर ज़ोर देना ज़रूरी है। यही वह महान उद्देश्य है जो दुनिया भर के श्रमिकों को प्रोत्साहित करता है, उनमें जान डालता है। यह उद्देश्य निश्चय ही युवकों में भी जीवन फूंकेगा क्योंकि वे उन समस्त बातों के प्रति जागरूक होते हैं जो महान होती हैं, अच्छी होती हैं और ईमानदारी पर आद्धृत होती हैं। और विशेष रूप से यह उद्देश्य रूसी युवक को इसलिए और भी उत्साहित करेगा क्योंकि उसने अभी हाल ही में क्रान्ति को न सिर्फ़ अपनी आंखों देखा था बल्कि कुछ हद तक उसमें भाग भी लिया था। जो संघटन अपने सामने यह उद्देश्य नहीं रखता वह सर्वहारा-वादी कहलाने का दावा नहीं कर सकता।

पैरा ३: चूंकि युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ, जिसके सदस्यों में सभी देशों के तरुण श्रमिक हैं उसी उद्देश्य को मानता है और चूंकि 'रूसी तरुण श्रमिक लीग' "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" इस नारे में आस्था रखती है, अतएव वह युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ से सहमत है और अपने को इस संघटन का एक अंग घोषित करती है।

बूर्जवा सरकारों ने श्रमिकों को संहारकारी, सर्वभक्षी युद्ध में झोंका, एक देश के क्षमिकों को दूसरे देश के श्रमिकों के विरुद्ध खड़ा किया, उन्हें एक दूसरे पर गोली चलाने को मजबूर किया, एक दूसरे का गला

काटने को विवश किया। श्रमिक युवक यह सब नहीं सहन कर सकता और न इसके प्रति अपनी सहानुभूति ही प्रकट कर सकता है। उसका नारा है "सारी क़ौमों का भाईचारा"। अतएव अपनी नियमावली में 'रूसी तरुण श्रमिक लीग' को समस्त देशों के तरुण श्रमिकों के साथ भाईचारे पर आधारित एकता पर ज़ोर देना चाहिए।

पैरा ४: तरुण श्रमिक श्रमिकों की भलाई के लिए लड़ सकें और तदर्थ उपयोगी भी साबित हों इसके लिए यह आवश्यक है कि वे मज़बूत हों और स्वस्थ हों।

एतदर्थ उन्हें चाहिए कि वे (क) बाल श्रम की रक्षार्थ, छ घंटे के कार्य-दिवस की व्यवस्था किये जाने, काम की दशाएं स्वस्थ बनाने और किशोरों को रात की पारियों में काम न करने देने और चिकित्सा-सहायता, आदि के लिए संघर्ष छेड़ें; (ख) ऊंची मज़दूरियों के लिए संघर्ष छेड़ें, जहां मज़दूरी तरुण नर-नारियों के पौष्टिक एवं स्वास्थ्यकर भोजन तथा रहने के साफ़ और गर्म क्वार्टर के लिए अपर्याप्त हो; (ग) कारख़ाने के विभागों के मानीटरों की परिषद में अपने प्रतिनिधि भेजें; ट्रेड-यूनियनों में भाग लें, रहने-सहने के स्तरों को ऊंचा करने के लिए प्रौढ़ों के साथ साथ सामान्य संघर्ष छेड़ें क्योंकि इस संघर्ष में उन्हें प्रौढ़ श्रमिकों की सहायता की वैसी ही ज़रूरत रहती है जैसी कि प्रौढ़ों को उनकी रहती है।

पैरा ५: उज्जवल भविष्य के लिए कर्मठ होने के निमित्त यह आवश्यक है कि तरुण नर-नारी यथासम्भव अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करें। फलत: (क) 'रूस की तरुण श्रमिक लीग' १६ वर्ष से कम के सभी बालबच्चों के लिए सार्वभौम, अनिवार्य और नि:शुल्क शिक्षा की मांग करती है; (ख) 'रूस की तरुण श्रमिक लीग' पुस्तकालयों, वाचनालयों, अध्ययन-कोर्सों, शिक्षा फ़िल्म प्रदर्शनों आदि की मांग करती है; (ग) श्रमिक युवक तत्काल ही स्वाध्याय मंडलों, गश्ती पुस्तकालयों, क्लबों और सैर-सपाटों आदि के संघटन का कार्य हाथ में लेंगे।

इन सब का उद्देश्य प्रधान लक्ष्य की पूर्ति होना चाहिए, अर्थात् युवकों में वर्ग-चेतना और इतनी योग्यता पैदा की जाय कि वे बिना दूसरों की सहायता के स्वयं ही वर्तमान विकास-कार्यों को समझ सकें और घटनाओं का विश्लेषण कर सकें।

पैरा छ: तरुण श्रमिकों के लिए अकेले ज्ञान ही की नहीं अपितु अपने को संघटित करने की योग्यता की भी जरूरत है। यह योग्यता सर्वोत्तम ढंग से स्वतंत्र रूप से काम करने वाली तरुण श्रमिक लीगों में ही प्राप्त की जा सकती है। अतएव, स्वयं संघटन की तो बात ही क्या, सारे स्वाध्याय मंडलों, क्लबों, वाचनालयों आदि का निर्माण आत्मप्रशासन के आधार पर और इस प्रकार होना चाहिए कि युवक अपनी प्रेरणाशक्ति का विकास करने में समर्थ हो सकें।

यदि श्रमिक युवक को दुनिया में होने वाली घटनाओं द्वारा इंगित महान कार्यों को सम्पन्न करना है तो वर्ग-चेतना और संघटन कौशल की नितान्त आवश्यकता पड़ेगी।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग की आठवीं अखिल संघीय कांग्रेस में दिये गये भाषण से

(८ मई, १९२८)

व्लादीमिर इल्यीच ने संघटन के बारे में बहुत कुछ कहा था। जिस समय सोवियत शासन की स्थापना का समय आया उस समय उन्होंने इस प्रश्न पर विशेष ध्यान दिया था। उन दिनों उन्होंने कहा था कि सामाजिक निर्माण का मतलब है संघटन और संघटन—समाजवाद की जड़ है। उन्होंने प्रायः इसी विचार की पुनरावृत्ति भी की थी। उनके लिए सोवियत शासन सारी जनता के संघटन का केन्द्र था।

उन्होंने एक नये तरीक़े से, एक नये ग्राधार पर संघटन करने की ग्रावश्यकता पर प्रायः ज़ोर दिया था। उन्होंने यह बात उस समय कही थी जब हम ग्रपनी पार्टी का निर्माण कर रहे थे। उन्होंने हम लोगों का ध्यान इस बात की ग्रोर ग्राकृष्ट किया था कि पार्टी के हर सदस्य को चाहिए कि वह ग्रपने को सम्पूर्ण का एक ग्रावश्यक ग्रंग समझे। सचमुच हमारी पार्टी एक क़ायदे का संघटन है ग्रौर तरुण कम्यूनिस्ट लीग उसी के चरण चिह्नों पर चल रही है। लेकिन ग्रगर हम ध्यानपूर्वक ग्रपनी पार्टी की ग्रोर देखें तो हम ग्रच्छी तरह समझ सकेंगे कि बहुत कुछ इसकी व्यवस्था का (ग्रौर तरुण कम्यूनिस्ट लीग की व्यवस्था का भी) उद्देश्य है बाहर से दुश्मन को रोकना।

हमारी पार्टी का प्रादुर्भाव हुग्रा ज़ारशाही, पूंजीवाद ग्रौर श्वेतरक्षकों के विरुद्ध होने वाले संघर्ष में। युवकों ने भी वही मार्ग ग्रपनाया। पूंजीवाद के विरुद्ध जो मोर्चा लिया जा रहा है उसने सम्प्रति एक दूसरा ही रूप ले लिया है। यह मोर्चा भी ग्रब बहुत कुछ ठंढा पड़ता जा रहा है।

इस समय सब से ज़रूरी चीज़ है निर्माण। फिर भी, हमारा संघटन हमेशा ग्रपने मध्य पाये जाने वाले शत्रुग्रों के दुष्कृत्यों को रोकने में समर्थ नहीं रहता ग्रौर न वह हमेशा ऐसा संघटन ही सिद्ध होता है जो समाजवाद का निर्माण करने में समर्थ हो। उदाहरणार्थ शाख़्ति केस* ही ले लीजिए। इससे क्या पता चलता है? यही कि यद्यपि काफ़ी समय बीत चुका है फिर भी हमारी पार्टी, ट्रेड-यूनियनें ग्रौर तरुण कम्यूनिस्ट लीग ग्रभी तक इतनी

---

*इस केस की सुनवाई मास्को में (१८ मई से ५ जुलाई, १६२८ तक) हुई थी। ग्रभियोग इस प्रकार था: बूर्जवा विशेषज्ञों के एक बड़े संघटन ने शाख़्ति तथा दोनबास की खानों के कुछ ज़िलों में तोड़-फोड़ के काम किये थे। इस संघटन की स्थापना १६२२-२३ में हुई थी। संघटन का उद्देश्य कोयला उद्योग को ग्रव्यवस्थित तथा नष्ट-भ्रष्ट कर डालना था।—सं०

संघटित नहीं हो सकी हैं कि वे इंजीनियरों के राजद्रोह का पता चला सकतीं। प्रतिक्रान्ति का पता तब चला था जब काफ़ी देर हो चुकी थी। यदि हम अपने निर्माण-प्रयासों को निकट से देखें तो हमें पता चलेगा कि हमें अपनी वड़ी भारी ग़ल्तियों का ज्ञान तब होता है जब वे साफ़ सामने आ जाती हैं। उदाहरणार्थ, ग़बन के मामले प्रायः हमें तभी सुनाई पड़ते हैं जब ग़बन हो चुकता है। हमें अपराधों का पता उनके किये जा चुकने पर ही चलता है। अभी हमने इस ढंग से काम करना नहीं सीखा है कि हम अपने कामों के दौरान में ही शाख़्ति जैसे छोटे-बड़े केसों का घटना रोक सकें। हमारा संघटन ऐसा होना चाहिए कि हम—अपने कार्यों के दौरान में ही—इस बात का पता चला सकें कि हम ठीक रास्ते से कहां कहां भटके हैं, अपनी ग़ल्तियों को ठीक कर सकें और शाख़्ति जैसे केसों, ग़बन तथा दूसरे अपराधों की घटना वस्तुतः असम्भव बना दें। हमने अभी इस ढंग से काम करना नहीं शुरू किया है और अभी हम उतने संघटित भी नहीं हैं जितना हमें होना चाहिए। मैं समझता हूं कि तरुण कम्यूनिस्ट लीग को इसपर विचार करना चाहिए और इस प्रश्न पर अच्छी तरह सोचना चाहिए कि वह ऐसे कौनसे काम करे कि न सिर्फ़ पूंजीवाद अथवा बाहरी दुश्मनों से ही मोर्चा ले सके अपितु एक ऐसे संघटन के रूप में भी रह सके जो ठीक ठीक काम करने में समर्थ हो और अपनी व्यवस्था इस प्रकार कर सके कि, स्वयं व्लादीमिर इल्यीच के शब्दों में, मशीन ठीक दिशा में चलती जाय, संघटन गुमराह न हो।

इसके लिए हमें किस चीज़ की ज़रूरत है? पहले पहल, **कम्यूनिस्टों की निगाह तेज़ हो**। साथियो, तरुण कम्यूनिस्ट लीग का प्रत्येक सदस्य राजनीतिक शिक्षा ग्रहण करता है लेकिन प्रायः राजनीतिक शिक्षा एक चीज़ है और ज़िन्दगी दूसरी।

यद्यपि लीग के सदस्य दिल से चाहते हैं कि वे अच्छे कम्यूनिस्ट बनें फिर भी प्रायः वे यह नहीं जानते कि राजनीतिक शिक्षा को जीवन

पर घटित कैसे किया जाय और उनके आपसी संबंध किस ढंग के हों। राजनीतिक पाठ्यपुस्तकों से वे यह तो जान लेते हैं कि हमारी स्त्रियों को पुरुषों के बराबर अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन फिर भी कुछ सदस्य, उदाहरणार्थ, इस बात की रंचमात्र परवाह नहीं करते कि उनकी नन्हीं बहनें स्कूल नहीं जातीं। कभी कभी वे कुलकों के बारे में बातें करते हैं और प्रायः शोषण होते देखते हुए भी आंखें मूंद लेते हैं। बेघर बच्चों के प्रश्न पर शिक्षा संबंधी जन कमिसेरियट के एक अधिवेशन में एक श्रमिक महिला ने इस बात पर प्रकाश डाला था कि बहुत-से श्रमिक नगरों के अपने अपने घरों में नौ-नौ दस-दस साल की छोटी छोटी ग्रामीण लड़कियों को ले आये थे जो या तो अनाथ थीं या फिर ग़रीब घराने की। इन बच्चियों का काम था उन श्रमिकों के छोटे छोटे बच्चों की देखरेख करना। जब उनसे पूछा गया कि वे इन लड़कियों को स्कूल क्यों नहीं भेजते तो वे जवाब देते थे कि हम उन्हें इसलिए देहातों से थोड़े ही लाये हैं। "मैं उसे काम करने के लिए लाया हूं," वे कहते थे। ऐसे परिवार में प्रायः लीग का सदस्य भी होता है मगर वह ऐसा बन जाता है मानो उसने कुछ देखा ही न हो। वह यह तो जानता है कि कुलक शोषण करता है लेकिन उसे यह विश्वास नहीं होता कि श्रमिक भी ऐसा कर सकता है। फिर इसका संबंध राजनीतिक शिक्षा से भी तो नहीं है और वह इसे अनदेखा कर देता है। जीवन में, फ़ैक्ट्रियों में ऐसी अनेक घृणित बातें हैं जो हमें अतीत की विरासत-स्वरूप प्राप्त हुई हैं। ये बातें हमारे निर्माण-प्रयासों के मार्ग में बाधक बनती हैं। लेकिन बात कुछ भी हो हम उसपर ग़ौर नहीं करते।

व्लादीमिर इल्यीच कहा करते थे "हमें अध्ययन करना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए"। हमें पूरी निष्ठा के साथ अध्ययन करना चाहिए। आप जानते हैं कि मुझे तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यों, लड़कों और लड़कियों से ढेरों पत्र मिला करते हैं। वे

लिखते हैं : "व्लादीमिर इल्यीच का कहना है कि हमें अध्ययन करना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए, अध्ययन करना चाहिए। क्या आप किसी श्रमिक फ़ैकल्टी या इंस्टीट्यूट में मेरा जल्दी से जल्दी दाखिला करवा देने में मेरी मदद नहीं करेंगी ?" व्लादीमिर इल्यीच ने इस अध्ययन की चर्चा करते हुए भिन्न भिन्न स्कूलों में चलने वाले अध्ययन के बारे में नहीं कहा था। उन्होंने ये शब्द पार्टी के सदस्यों को संबोधित करते हुए कहे थे और उनका मतलब जीवन के गम्भीर अध्ययन से था। मनुष्य को चाहिए कि वह आंखें खोल कर देखना सीखे, इतना अध्ययन करे कि वह चीज़ों की गहराई में प्रवेश कर सके। उसे अध्ययन सिर्फ़ किसी इन्स्टीट्यूट या उच्च शिक्षा की किसी अन्य संस्था की पढ़ाई समाप्त करने के लिए ही नहीं करना चाहिए। उसके अध्ययन का लाभ यह भी होना चाहिए कि वह ग़लती समझ ले और ग़लती कहां हुई है इसका पता चला ले। तरुण कम्यूनिस्ट लीग का यह एक मुख्य काम है। बेशक लीग के सदस्यों को इन्स्टीट्यूटों में अध्ययन करना चाहिए, उन्हें अध्ययन के हर मौक़े से लाभ उठाना चाहिए, लेकिन उन्हें जीवन से भी सीखना चाहिए, उसका पूरी तरह अध्ययन करना चाहिए, और उन सभी अवसरों पर सजग रहना चाहिए जब उन्हें विषमताओं से मोर्चा लेने की ज़रूरत महसूस हो।

यहीं कुछ लोग यह तर्क उपस्थित करते हैं : तरुण कम्यूनिस्ट लीग एक संघटन है। फिर पार्टी भी है। परन्तु प्रायः लीग इस बात पर ग़ौर नहीं करती कि सोवियतें और उनकी शाखाएं भी तो हैं। उदाहरणार्थ, मुझे यह याद नहीं पड़ता कि लीग के सदस्य नियमित रूप से सार्वजनिक शिक्षा शाखा में जाते रहे हों। मैं जानती हूं कि प्रतिनिधि और लीग के थोड़े-से सदस्य जाते हैं मगर तरुण कम्यूनिस्ट लीग की किसी भी बैठक में किसी को समझ में यह बात न आई कि पूछे आखिर इस शाखा का कार्य क्या है।

साथियो, शायद मैं ठीक नहीं कह रही हूं? (आवाजें : "आप

ठीक कह रही हैं!") कुछ भी हो शाखाएं एक प्रकार का संघटन ही हैं, एक ऐसा संघटन जिसमें सोवियत के सदस्य ही न हों अपितु दूसरे लोग भी हों जो संबद्ध विषय में दिलचस्पी रखते हों। ऐसे व्यक्ति उस केन्द्र के रूप में काम करें जिनके चारों ओर जनसाधारण अपने अपने कार्य सम्पन्न करता हो। फिर भी जब कोई व्यक्ति नगर सोवियत शाखा में जाता है और इसके बारे में बातचीत करता है तो ट्रेड-यूनियनें कहती हैं "हमें डर है कि इससे ट्रेड-यूनियनों का महत्व कम हो जायेगा।" बेशक, मैंने तरुण कम्यूनिस्ट लीग के किसी सदस्य को यह कहते कभी नहीं सुना कि इससे उनके संघटन का महत्व कम हो जायेगा। लेकिन यह बात कि उन सोवियतों की शाखाओं के कार्यों के संबंध में इतना कम ध्यान दिया जाता है, मैं समझती हूं, बड़ी महत्वपूर्ण है। आवश्यकता इस बात की है कि **हमें ज़िन्दगी को कैसे देखना चाहिए और उसे बनाना कैसे चाहिए?**

दूसरा मसला है उदाहरणार्थ, शाख़्ति केस। ऐसा क्यों हुआ? क्योंकि हमारे पास ऐसे लोग न थे जो यह जानते हों कि इंजीनियर क्या करते हैं। बेशक, विशेषज्ञता बहुत ज़रूरी है और यही कारण है कि हमारे युवक ज्ञान प्राप्त करने के लिए इतनी हाय-तोबा मचा रहे हैं। आपकी कार्यक्रम-सूची में दूसरा विषय है पेशेवर ट्रेनिंग और शिक्षा। बेशक यह भी एक बड़ी ज़रूरी चीज़ है। और तरुण कम्यूनिस्ट लीग इसके बारे में क्यों इतनी उत्सुक है इसे आसानी से समझा जा सकता है। एक वक्ता ने यहां ठीक कहा था कि जो व्यक्ति जिस काम को कर रहा है उसके लिए उसका जानना बड़ा ज़रूरी है।

अब कन्ट्रोल की बात ले लीजिए। मैं समझती हूं कि प्रश्न सिर्फ़ 'लाइट कैवेलरी' कन्ट्रोल* का ही नहीं है। बेशक, यह एक अच्छी चीज़

* जांच-पड़ताल के लिए तरुण कम्यूनिस्ट लीग द्वारा किये जाने वाले आकस्मिक छापे। – सं०

है। अपने इर्द-गिर्द क्या हो रहा है उसे देखने-समझने में इससे मदद मिलती है। सचमुच यह एक अच्छी चीज़ है मगर प्रधान चीज़ नहीं। प्रधान चीज़ तो यह है कि दैनिक जीवन में इसे कैसे कार्यान्वित किया जाय इसका निश्चित ज्ञान हो। भ्रष्ट ग़लती हो जाने के बाद उसके बारे में बातचीत करने से क्या लाभ? मनुष्य को चाहिए कि वह उसे रोके। अभी कुछ ही दिन पहले मैंने एक इन्स्पेक्टर से बातचीत की थी–शिक्षा के जन कमिसेरियट में मुआइना करने की लोगों को एक धुन सी होती है–और मुआइने का ढंग समझ कर मुझे बड़ा मज़ा आया था।

और इसलिए मैंने एक इन्स्पेक्टर से–एक अच्छे साथी और कम्यूनिस्ट से–बातचीत के दौरान में पूछा कि वह मुझे अपना काम करने का तरीक़ा बताये। उसने मुझे बताया कि मैंने एक शिशुगृह का मुआइना किया। शिशुगृह की छत बैठने वाली थी। शिशुगृह की मरम्मत पर ६३,००० रूबल लगे थे और इतने अधिक धन की बरबादी अस्वीकार्य थी। "और क्या तुमने यह भी पूछा कि कन्ट्रोल की व्यवस्था क्या थी, यह काम किसे सौंपा गया था और मरम्मत के कामों के लिए कौन कौन उत्तरदायी था?" मैंने उससे प्रश्न किया। पता चला कि उसने यह बात पूछी ही न थी कि काम के लिए ज़िम्मेदार कौन है। और सवाल यह है: काम के लिए कौन ज़िम्मेदार है? ऐसी घटना फिर न घटे इसकी देखरेख किसे करनी है? जब धन बरबाद हो चुका हो, जब छत बैठ रही हो उस समय ज़िम्मेदारी वग़ैरह की बातचीत करने से क्या लाभ? नियंत्रण होना चाहिए काम के दौरान में न कि जब वह पूरा हो चुका हो।

मैं एक और प्रश्न पर भी विचार करना चाहूंगी... हमें अराजकता फैलाने वाली आलोचनाएं रोकनी चाहिए। इनसे सारा काम चौपट हो जाता है। आलोचना का काम है लोगों के कामों में उनकी सहायता करना। मैं समझती हूं कि यह एक बहुत बड़ा सवाल यानी सब से बड़े सवालों में से एक है और तरुण कम्यूनिस्ट लीग को उसे हल करना चाहिए...

प्रश्न यह है: मित्रतापूर्ण और पारस्परिक नियंत्रण की, प्रभाव कर ढंग से, कैसे व्यवस्था की जाय – उस नियंत्रण की नहीं जो सिर्फ़ ग़लतियां ढूंढने के उद्देश्य से या छापे मारने के रूप में हो परन्तु सौहार्द पर आधारित सच्चे नियंत्रण की, जिससे काम में मदद मिलती हो।

राजनीतिक शिक्षा के क्षेत्र में तरुण कम्यूनिस्ट लीग के आवश्यक कार्य

('कोम्सोमोल्स्काया प्राव्दा', २६ नवम्बर, १६३२)

पार्टी के नेतृत्व में और तरुण कम्यूनिस्ट लीग की अध्यक्षता में हमारे युवक युवतियां समाजवाद का निर्माण कर रहे हैं और इस दिशा में अपनी सारी शक्ति और सारे उत्साह से काम ले रहे हैं। लेकिन हर क़दम पर उन्हें ऐसा लगता है जैसे उन्हें अपेक्षित जानकारी नहीं है। जो भी हो, समाजवादी निर्माण का अर्थ यही तो है नहीं कि फ़ैक्ट्रियां और प्लान्ट या बड़े बड़े मकान तथा दूसरी इमारतें बना ली जायें। समाजवादी निर्माण एक संघर्षपूर्ण कार्य है। इल्यीच का कथन था कि समाजवादी निर्माण कुल मिला कर समाजवादी पद्धति की स्थापना का संघर्ष है। इसका अर्थ है कि यह संघर्ष है उत्पादन की सुनियोजित, समाजवादी व्यवस्था के लिए; यह संघर्ष है समाजवादी वितरण के लिए, श्रम और जन सम्पत्ति के संबंध में कम्यूनिस्टों के दृष्टिकोण के लिए, सामूहिकता के संबंध में गहरी जानकारी के लिए, लोगों के बीच नये नये संबंधों की स्थापना के लिए; यह संघर्ष है साधारण बूर्जवा और मामूली स्वामी की आदर्शवादिता के विरुद्ध; यह संघर्ष है मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों को कार्यान्वित करने के लिए।

यह एक बड़ा जटिल संघर्ष है, उस संघर्ष से भी कहीं अधिक जटिल जो ज़ार के विरुद्ध किया गया था, जो ज़मींदारों और पूंजीवादियों

को सत्ताविहीन करने के लिए किया गया था। इसके लिए ज़रूरत है समाजवाद के लिए लड़ने वाले प्रत्येक व्यक्ति में गम्भीर ज्ञान की और ज़रूरत है इस ज्ञान के सदुपयोग की योग्यता की, मार्क्सवाद-लेनिनवाद की प्रणाली और भावना से काम करने की क्षमता की।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग को ज्ञान प्राप्त करने के लिए संघर्ष छेड़ना चाहिए। लेकिन हमें हमारे देश के सामान्य सांस्कृतिक स्तर को ध्यान में रखना चाहिए। क्रान्ति के बाद के इन पन्द्रह वर्षों में यह स्तर काफ़ी ऊंचा हो गया है। यह याद रखना चाहिए कि सिर्फ़ ६० प्रतिशत लोग ही साक्षर हैं, कि बहुत-से लोगों को स्कूल में चार वर्ष से भी कम शिक्षा मिली है और इसलिए हमें बड़ी गम्भीरता से पढ़ना-लिखना चाहिए।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग को ज्ञानार्जन का यह संघर्ष न सिर्फ़ अपने मध्य ही, अपितु सामान्यतया युवकों के बीच भी, आरम्भ करना चाहिए। यह भी बड़ा ज़रूरी है कि समस्त युवक वर्ग स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने की योग्यता तथा पुस्तकों, पुस्तकालयों, पत्र-व्यवहार कोर्सों और रेडियो की सहायता से भी, स्वतंत्र रूप से ज्ञान प्राप्त करे। एतदर्थ उसे पूरा सहयोग मिलना चाहिए। एक सब से ज़रूरी काम है स्वतंत्र अध्ययन के और ऐसे विषयों के कार्यक्रम तैयार करना जिनका भिन्न भिन्न मंडलों में अध्ययन किया जा सकता हो। पुस्तकालयों की संख्या में वृद्धि, पुस्तकालयों में पुस्तकों की व्यवस्था, वाचनालयों की स्थापना और इस क्षेत्र में अन्य अनेक सुविधाएं—यह सब मूलतः तरुण कम्यूनिस्ट लीग का काम है। लेकिन इस क्षेत्र में उसे अपना सहयोग उन प्रयासों में देना चाहिए जो राष्ट्रव्यापी आधार पर किये जा रहे हैं, और सब से अलग रह कर कोई काम न करना चाहिए।

मैं एक प्रश्न पर अर्थात् सामान्य शिक्षा के तरीक़ों पर लोगों का ध्यान आकृष्ट करना चाहूंगी। प्रायः कहा जाता है कि युवकों के लिए जो स्कूल हों उनका कोई औद्योगिक आधार होना चाहिए। यह ठीक है।

अर्द्ध-साक्षरों तथा स्वतंत्र रूप से अध्ययन करने वालों के लिए जो पुस्तकें हों उनके विषय ऐसे व्यक्तियों के कार्यों के साथ संबद्ध हों। इसे समझा कैसे जाय? कुछ लोगों का कहना है कि अगर इन पुस्तकों में 'प्लान्ट', 'ब्लूमिंग' अथवा 'ट्रैक्टर' जैसे शब्द आ जायं तो काफ़ी होगा। दूसरों का ख़्याल है कि 'औद्योगिक आधार' का मतलब है संकीर्ण विशेषज्ञता। वे भूल जाते हैं कि सामान्य शिक्षा के स्कूलों और कोर्सों का उद्देश्य विद्यार्थियों में व्यापक पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण का विकास करना है। लेनिन ने इस बात पर विशेष बल दिया था। उन्होंने पोलीटेक्निकल शिक्षा के बारे में अपने विचार १८९०-१९०० में ही व्यक्त कर दिये थे और जब हमने १९२०-२१ में सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था के प्रश्न पर विचार किया था उस समय तो उन्होंने इस विषय पर ख़ास तौर से ज़ोर दिया था। समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का विकास योजनानुसार होता है और यहीं पर इसमें और उस पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था में मूल अन्तर है जिसका आधर है प्रतियोगिता और लाभ। पूंजीवादी देशों में सुनियोजित अर्थ-व्यवस्था हो ही नहीं सकती। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था का निर्माण होता है लाखों व्यक्तियों के सहयोग से और इसलिए यह आवश्यक है कि ये लाखों ही व्यक्ति नियोजित अर्थ-व्यवस्था के जागरूक निर्माता हों, खनिज और प्रक्रिया उद्योग का, तथा उत्पादन की भिन्न भिन्न शाखाओं का पारस्परिक संबंध समझें और यह भी समझ लें कि अमुक अमुक उद्योग का स्थान महत्वपूर्ण क्यों है? जनता के लिए यह देखना कि अर्थ-व्यवस्था किस प्रकार पनपती है और यह जानना कि उनके समक्ष महत्वपूर्ण कार्य कौन कौनसे हैं एक तरह से अपरिहार्य है। हमारे अख़बार, समाजवादी प्रतिस्पर्द्धा, तूफ़ानी मज़दूर आन्दोलन तथा औद्योगिक और आर्थिक योजनाओं की पूर्ति के लिए होने वाले संघर्ष श्रम के प्रति जनता की चेतनाशील प्रवृत्ति का विकास करते हैं, पोलीटेक्निकल प्रचार को सुगम

बनाते हैं और एक सुनियोजित समाजवादी अर्थ-व्यवस्था का निर्माण करने में राष्ट्रव्यापी प्रयासों में जनता का सहयोग देते हैं। तरुण कम्यूनिस्ट लीग के प्रत्येक सदस्य में एक निश्चित पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण पैदा करने के लिए यथासम्भव सभी प्रयत्न किये जाने चाहिए क्योंकि तभी वह अपनी फ़ैक्ट्री के आर्थिक कार्यों को अच्छी तरह समझ सकेगा।

एक दूसरा कार्य भी है: शिक्षा संबंधी, प्रचारात्मक, आन्दोलनात्मक तथा राजनीतिक शिक्षा विषयक कार्य सम्पन्न करने में मनुष्य को इतना ज्ञान अवश्य होना चाहिए कि चालू निर्माण-कार्यों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद के मूलभूत सिद्धान्तों से कैसे संबद्ध किया जाय।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग को इस संबंध पर विशेष ध्यान देना चाहिए। उसे चाहिए कि वह उन प्रचारात्मक और आन्दोलनात्मक तरीक़ों को समझे और उन्हें भली भांति सीखे जिन्हें पार्टी आरम्भ ही से प्रयोग में लाती रही है तथा जिन्हें उसके संघर्ष के पूरे इतिहास ने पूर्णतः उचित ठहराया है। प्रचारक ने श्रमिकों की ज़रूरतों को लेकर अपना काम शुरू किया यानी उसने एक ऐसे विषय को उठाया जो उस समय श्रमिकों के मस्तिष्क को सब से अधिक आन्दोलित कर रहा था और दिखा दिया कि आज श्रमिकों की जो हीन दशा है उसका एकमात्र कारण है पूंजीवादी व्यवस्था। एक समय था जब कि श्रमिक को फ़ैक्ट्री में गर्म पानी के लिए संघर्ष करना पड़ता था; इस संघर्ष को समाजवाद के लिए किये जाने वाले संघर्ष से संबद्ध किया गया था। एक इसी पद्धति के कारण १९१७ में पार्टी श्रमिक जनता को विजय और सफलता के मार्ग पर ले जाने में समर्थ हो सकी। आज भी इसी पद्धति का उपयोग करना अपरिहार्य समझा जा रहा है। उदाहरणार्थ, अगर ऐसे किसानों की मीटिंग हो रही हो जो अन्न की सरकारी खरीदारी संबंधी प्रश्नों पर विचार-विमर्श कर रहे हों और वक्ता राज्य को अनाज देने की आवश्यकता के संबंध में ही बोले जा रहा हो किन्तु इस प्रश्न का संबंध समाजवादी

निर्माण से स्थापित न कर रहा हो, तो उसका भाषण बिल्कुल बेकार होगा।

इसी प्रकार यदि कोई व्यक्ति किसी छुट्टी के दिन वाली मीटिंग में भाषण देते हुए सिर्फ़ हमारी सफलताओं की ही बात करता है और आंकड़े देता है तथा यह नहीं जानता कि हमारी सफलताओं की इस कहानी के साथ किसानों के अपने विचारों को किस प्रकार पिरोना चाहिए तो उसकी बात श्रोताओं के गले तले न उतरेगी।

इस वर्ष केन्द्रीय कमेटी ने कई कम्यूनिस्ट कालेजों को बन्द करने और उनके स्थान पर उन कम्यूनिस्ट कृषि कालेजों का एक जाल-सा बिछा देने का निश्चय किया है जिनमें ऐसे स्थानीय कार्यकर्ता काम सीखें जिन्होंने किसी स्कूल में चार-चार पांच-पांच वर्षों तक शिक्षा पाई हो। और फिर भी यह निश्चय बड़ा महत्वपूर्ण है क्योंकि इसका उद्देश्य सिद्धान्त और व्यवहार के बीच के अन्तर को दूर करना है। स्थानीय कार्यकर्ताओं को ऐसी अनेक व्यावहारिक समस्याओं का सामना करना पड़ा है जिन्हें हल करना उन्हें खुद नहीं मालूम। यहां इन कार्यकर्ताओं को प्रारम्भिक परामर्श के अवसर सुलभ हैं जिसके परिणामस्वरूप उन्हें मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों के अनुसार इन प्रश्नों को हल करने में काफ़ी सहायता मिलेगी। मार्क्सवाद-लेनिनवाद की भावना से कैसे काम किया जाय इसकी उन्हें शिक्षा मिलेगी और वे अपना काम निपुणता के साथ कर सकेंगे। इन कम्यूनिस्ट कृषि कालेजों का सम्यक् ढंग से संगठन हो जाने से देहातों में भी मार्क्सवाद-लेनिनवाद का प्रचार होगा और इस प्रकार ग्राम्य-क्षेत्र में होने वाला सामूहिक फ़ार्म संबंधी कार्य एक नया रूप ग्रहण करेगा।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग के राजनीतिक शिक्षा के कार्य भी इसी ढंग से किये जायं, इसके सदस्यों को मार्क्सवाद-लेनिनवाद के सिद्धान्त समझाये जायं और उन्हें यह बताया जाय कि वर्तमान समस्याओं को सुलझाने के लिए व्यवहार में उनका उपयोग कैसे किया जाय।

राजनीतिक शिक्षा संबंधी एक सम्मेलन में लेनिन ने कहा था कि राजनीतिक शिक्षा के काम में लगे हुए लोगों को हर चीज़ में रुचि दिखानी चाहिए: निरक्षरता दूर करने में, नौकरशाही से मोर्चा लेने में और उन सारी समस्याओं को हल करने में जो देश के सामने हैं। बेशक, यही बात तरुण कम्यूनिस्ट लीग के राजनीतिक शिक्षा संबंधी कार्यकर्ताओं के लिए भी है। लीग के हर सदस्य को भले ही उसका पेशा कोई भी क्यों न हो राजनीतिक शिक्षा के क्षेत्र में काम करना चाहिए। सांस्कृतिक निर्माण का प्रश्न आज बड़ा महत्वपूर्ण बन गया है। हमारी जनता को ज्ञान की ज़रूरत है। हर सोवियत विशेषज्ञ को यह जानना चाहिए कि जनता में रह कर कैसे काम करना चाहिए। आज, विज्ञान अकादमी के प्रत्येक अधिवेशन में कार्यकर्ताओं के मध्य होने वाले व्याख्यात्मक कार्यों पर विचार-विनिमय होता है। अकादमी का नारा है "ज्ञान, विज्ञान और टेक्नीक सारी जनता के लिए।" लेकिन यह बात सिर्फ़ अकादमी पर ही लागू नहीं होती। हर शिक्षा संस्था को, हर टेक्निकल कालेज को और हर विश्वविद्यालय को इसी रास्ते का अनुसरण करना चाहिए।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यों को चाहिए कि वे उक्त नारे का पूरा पूरा समर्थन करें। अकादमीशियनों ने जो कार्य आरम्भ किये हैं उनका स्वागत भर कर लेना काफ़ी नहीं है। टेक्निकल कालेज, कृषि कालेज या विश्वविद्यालय के प्रत्येक विद्यार्थी को सर्वसाधारण की भाषा में बोलना और लिखना आना चाहिए। उसे यह भी सीखना चाहिए कि अपने ज्ञान को दूसरों तक कैसे पहुंचाया जाय।

इन शिक्षा संस्थाओं के प्रत्येक विद्यार्थी का यह कर्तव्य है कि वह यह देखे कि उसकी संस्था जनता में व्यापक प्रचार कार्य करे। तरुण कम्यूनिस्ट लीग को इसपर ध्यान देना चाहिए।

अन्त में मैं एक बात और कहूंगी।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग स्कूलों का संरक्षक है।

स्कूलों की दिशा में जितनी कुछ प्रगति हो चुकी है, उसे हम देख ही रहे हैं। अच्छी शिक्षा और सम्यक् भरण-पोषण के लिए अध्यापकों ने जो आन्दोलन चलाया है, उसे तथा साथ ही इस बात को भी हम देख रहे हैं कि वृद्ध और युवक अध्यापकों में एकत्व की भावना बढ़ रही है, अनुभवी अध्यापक युवकों की मदद करते हैं और युवक लोग आन्दोलन में उत्साह दिखाते हैं। अध्यापक अध्ययनरत हैं। तरुण कम्यूनिस्ट लीग खड़े खड़े तमाशा ही तो नहीं देख सकती। उसे इस कार्य में भाग भी तो लेना चाहिए, स्कूल के संरक्षक के रूप में उसे इस कार्य में हाथ बंटाना चाहिए, सर्वसाधारण में प्रचार कार्य करना चाहिए, यह देखना चाहिए कि स्कूल सचमुच पोलीटेक्निकल रूप में काम करे, बच्चों को सर्वहारा के अनुशासन की शिक्षा दे, उनमें ज्ञान का प्रसार करे, और काम और अध्ययन के प्रति उनमें चेतना का प्रादुर्भाव करे।

मुझे विश्वास है कि उपर्युक्त प्रश्नों को तरुण कम्यूनिस्ट लीग द्वारा निश्चित किये जाने वाले कार्यक्रम में समाविष्ट कर लेना चाहिए। संक्षेप में ये प्रश्न हैं – संस्कृति संबंधी व्यापक क्रियाशीलता, सांस्कृतिक क्रिया-कलापों का उत्पादन कार्यों से समन्वय, उत्पादन संबंधी प्रचार कार्यों का लोगों के पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण से समन्वय, राजनीतिक शिक्षा और व्यावहारिक कार्यों का मार्क्सवादी-लेनिनवादी सिद्धान्तों में समावेश, अध्यापकों के बीच होने वाले कार्य, इन कार्यों के लिए सोवियत विशेषज्ञों की भर्ती, शिक्षा संस्थाओं को राजनीतिक शिक्षा के कामों में लगे हुए केन्द्रों का रूप देना। सम्प्रति यह कार्य बड़ा जरूरी है।

युवकों के संबंध में लेनिन के विचार

(‘तरुण कम्यूनिस्ट’ पत्रिका, अंक १, १६३५)

क्रान्तिकारी आन्दोलन और समाजवादी निर्माण में सर्वहारा युवकों के भाग लेने के संबंध में लेनिन के विचार

सामान्यतया युवक क्रान्ति आन्दोलन के सिलसिले में व्लादीमिर इल्यीच ने उन तरुण श्रमिकों के क्रान्तिवादी आन्दोलन पर विशेष ध्यान दिया था, जिन्होंने अपने हितों के लिए ही श्रमिक-वर्ग-संघर्ष में भाग लिया था, जिनमें उत्साह था, वर्ग-चेतना थी, जिन्होंने इस संघर्ष में तप कर इस्पात की शक्ति प्राप्त की थी।

१६०१ में ओबूख़ोव के श्रमिकों पर एक मुक़दमा चला। इन श्रमिकों ने पुलिस का मुक़ाबला किया था। मुक़दमे के समय मार्फ़ा याकोवलेवा नामक एक १८ वर्षीय श्रमिक युवती ने जो एक रविवारीय महिला सायंकालीन स्कूल की छात्रा थी, साफ़ साफ़ और दृढ़ता के साथ यह कहा था कि "हम अपने भाइयों के साथ हैं"। उस समय वह दूसरी श्रमिक युवतियों के नाम से ही अपनी आवाज़ बुलन्द कर रही थी। ‘कालेपानी के नियम और कालेपानी के निर्णय’ शीर्षक एक लेख में व्लादीमिर इल्यीच ने कहा है—

"हमारे उन वीर साथियों की, जिनकी हत्या की गई थी अथवा जिनपर जेलों में अत्याचार किये गये थे, यादगार उन लोगों की शक्ति बढ़ायेगी जो अन्याय से लड़ने के लिए पहले-पहल बढ़ रहे हैं और उनके पक्ष में ऐसे हज़ारों सहायकों को खड़ा कर देगी जो १८ वर्षीय

मार्फ़ा याकोवलेवा की भांति खुल्लमखुल्ला कहेंगे कि 'हम अपने भाइयों के साथ हैं!'"*

१५ अगस्त १९०३ को लिखे गये अपने एक लेख में लेनिन ने बताया था कि शासक युवकों से डरते हैं क्योंकि पुलिस के कथनानुसार "औद्योगिक आबादी के सब से अधिक अव्यवस्था फैलाने वाले लोग" १७ और २० वर्षों के बीच के ही उम्र के थे। इन्हीं 'अव्यवस्था फैलाने वालों' ने १९०५ की क्रान्ति में साहस और वीरता का परिचय दिया था। दिसम्बर १९०५ के मास्को विद्रोह में प्रदर्शित वीरता का वर्णन करते हुए 'मास्को विद्रोह के सबक़' शीर्षक एक लेख में इल्यीच ने (११ सितम्बर १९०६ को) लिखा था—

"दस दिसम्बर को प्रेस्न्या ज़िले की दो श्रमिक लड़कियां १० हज़ार की भीड़ में एक लाल झंडा लिये हुए दौड़ती हुई कज़्ज़ाकों के पास आईं और चिल्ला चिल्ला कर कहने लगीं 'हमें मार डालो, हम ज़िन्दा रहते झंडा नहीं देंगी' और कज़्ज़ाक घबड़ा गये तथा भीड़ के 'कज़्ज़ाक हुर्रा!' नारे सुनते हुए घोड़ों पर भाग गये। साहस और वीरता के इन उदाहरणों को सर्वहारा के दिमाग़ों में बराबर बिठाना चाहिए।"**

फ़रवरी १९०५ में इल्यीच ने गूसेव और बोग्दानोव को लिखे गये अपने पत्र में कहा था कि युवकों के साथ अधिक विश्वास से व्यवहार किया जाय और उन्हें क्रान्तिकारी आन्दोलन में सम्मिलित किया जाय। यही बात उन्होंने 'नये कार्य और नयी नयी शक्तियां' (मार्च १९०५) में कही थी।

युवक श्रमिक पार्टी में भर्ती होने लगे। मेन्शेवीकों को और लारिन

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रंथावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ५, पृष्ठ २२८।

**व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रंथ, खंड १, भाग २, पृष्ठ १६७।

को भी, जो उस समय एक मेन्शेवीक था, यह बात अच्छी न लगी। इसके बारे में लेनिन ने २० दिसम्बर १९०६ को 'मेन्शेविज़्म के संकट' शीर्षक लेख में लिखा था–

"उदाहरणार्थ, लारिन की शिकायत है कि हमारी पार्टी में युवकों की बहुतायत है और परिवार वाले लोग बहुत कम हैं तथा वे (परिवार वाले) पार्टी से अलग होते जा रहे हैं। इस रूसी अवसरवादी की शिकायत से मुझे एंगेल्स द्वारा लिखी गई एक बात याद आ गई। (मैं समझता हूं यह 'रिहायशी मकानों की समस्या'–'Zur Wohnungsfrage' में कही गई थी।) किसी अशिष्ट बूर्जवा प्रोफ़ेसर को, जो एक जर्मन सांविधानिक-जनवादी था, उत्तर देते हुए एंगेल्स ने लिखा था: हमारी क्रान्तिवादी पार्टी में युवकों की बहुतायत हो, क्या यह स्वाभाविक नहीं? हमारी पार्टी भविष्य की पार्टी है और भविष्य युवकों का है। हमारी पार्टी नयी व्यवस्था क़ायम करने वालों की पार्टी है और इसी लिए युवक पूरी लगन से उसके साथ हैं। हमारी पार्टी हर पुरानी और घिसी-घिसाई व्यवस्था के विरुद्ध निःस्वार्थ संघर्ष कर रही है और युवक हमेशा इस संघर्ष में अग्रणी रहेंगे।

"नहीं, हम तीस तीस वर्ष के 'थके-थकाये' बूढ़ों का, उन क्रान्तिवादियों का 'जो और अधिक बुद्धिमान हो चुके हैं' और सामाजिक-जनवादी ग़द्दारों का चुनाव सांविधानिक-जनवादियों पर ही छोड़ दें। हम हमेशा ही प्रगतिशील वर्ग के युवकों की पार्टी बने रहेंगे!"*

इल्यीच की इच्छा थी कि हमारे युवक दमन और शोषण के ख़िलाफ़ लड़ने वाले पुराने लोगों के अनुभवों को, और संघर्ष में लगे हुए उन व्यक्तियों के अनुभवों को संग्रहीत करें और उनसे फ़ायदा उठायें जिन्होंने

---

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ११, पृष्ठ ३१९।

बहुत-सी हड़तालों और क्रान्तियों में भाग लिया था, जिन्हें क्रान्तिवादी परम्पराओं और व्यापक व्यावहारिक दृष्टिकोण का अच्छा ज्ञान था। "प्रत्येक देश में सर्वहाराओं को सर्वहारा वर्ग द्वारा संचालित विश्वव्यापी संघर्ष के अधिकार की आवश्यकता पड़ती है। हमें भी अपनी पार्टी के कार्यक्रम और कामों को स्पष्ट करने के लिए विश्व सामाजिक-जनवाद के सिद्धान्तवादियों के अधिकार की ज़रूरत है।"* यह बात लेनिन ने १९०६ में कौत्स्की के 'रूसी क्रान्ति की प्रेरक शक्तियां और संभावनाएं' के रूसी संस्करण की भूमिका में लिखी थी। उन्होंने यह भी लिखा था कि तात्कालिक नीति की अत्यधिक ज़रूरी, व्यावहारिक एवं निश्चित समस्याएं उठने पर सब से बड़ा अधिकार भिन्न भिन्न देशों के उन प्रगतिशील और वर्ग-चेतन श्रमिकों का होगा जिनका संघर्ष से सीधा संबंध है। ऐसे प्रश्न दूर रह कर हल नहीं किये जा सकते।

८ वर्ष बाद, १९१४ में, 'एकता की चीख-पुकारों की आड़ में एकता का विघटन' शीर्षक अपने लेख में लेनिन ने युवकों का ध्यान इस ओर दिलाया था कि रूस के अद्ययुगीन श्रम आन्दोलन के अनुभवों पर ध्यान देना तथा पार्टी द्वारा किये गये निर्णयों के अनुसार काम करना बहुत ज़रूरी है। त्रोत्स्की ने अपनी स्थिति को किस प्रकार बदला इसका जिक्र कर चुकने के बाद इल्यीच ने लिखा था—

"इस प्रकार के लोग इतिहास के प्राचीन निर्माणों के, उस समय के ध्वंसावशेष हैं जब रूस में सामूहिक श्रमिक वर्ग आन्दोलन सुप्त अवस्था में था और जब समाज के हर छोटे छोटे गिरोह के पास इतना 'पर्याप्त स्थान' होता था जिसमें रह कर वह एक प्रवृत्ति, समूह अथवा दल, संक्षेप में, दूसरों के साथ एक हो जाने के लिए वार्ता करने की 'शक्ति' का ढोंग कर सकता था।

---

*वही, पृष्ठ ३७४।

"श्रमिकों की युवक पीढ़ी को यह बात अच्छी तरह समझ लेनी चाहिए कि वे किस तरह के लोगों से बातचीत कर रहे हैं: उनके पास ऐसे लोग आते हैं जो विश्वास से परे बड़े बड़े दावे करते हैं लेकिन **या तो** पार्टी के निर्णयों को बिल्कुल अस्वीकार कर देते हैं—पार्टी के उन निर्णयों को जिन्होंने १६०८ के बाद विसर्जनवाद के प्रति हमारे रुख को स्पष्ट और परिभाषित किया था—**अथवा** उपर्युक्त निर्णयों की पूर्ण मान्यता के आधार पर बहुमत में वास्तविक **एकता** की स्थापना करने वाले अद्ययुगीन रूसी श्रमिक वर्ग के अनुभवों पर कोई ध्यान नहीं देते।" *

लेनिन की इच्छा थी कि युवक लोग मूल समस्याओं के हल करने के प्रश्न पर खुद ही मनन करें और उन प्रश्नों का उत्तर ढूंढें जो उनके दिमागों को व्यथित कर रहे हैं। उन्होंने यह बात 'युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ' विपयक अपने लेख में दिसम्बर १६१६ में लिखी थी—

"यह स्वाभाविक है कि **अभी तक** युवक संघटन में सैद्धान्तिक रूप से स्पष्टता और दृढ़ता नहीं आ सकी हैं। ये गुण उसमें शायद कभी न आ सकेंगे क्योंकि यह बलवती इच्छावाले, प्रचंड और उत्सुक युवकों का संघटन है। परन्तु हमें चाहिए कि हम, **ऐसे** लोगों में जो सैद्धान्तिक स्पष्टता की कमी है उसे, उस ढंग से भिन्न तरह पर समझें जिस ढंग से हम दिमागों की सैद्धान्तिक अव्यवस्था और अपने 'ओकिस्त'**, 'सामाजिक-क्रान्तिवादी', 'तोलस्तोयवादी', अराजकतावादी, अखिल यूरोपीय कौत्स्कीवादी ('केन्द्र'), आदि, के दिलों में क्रान्तिवादी दृढ़ता की कमी को समझते हैं, या हमें समझना चाहिए। जब सर्वहारा वर्ग उन प्रौढ़ों के कारण मदोन्मत्त हो रहा हो जो दूसरों के नेतृत्व का

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग २, पृष्ठ २७०।

**ओकिस्त—रूसी में इस नाम की व्युत्पत्ति मेन्शेवीकों के नेतृत्व-केन्द्र के नाम से हुई है। यह केन्द्र वस्तुतः एक संगठनात्मक कमेटी था।—सं०

अथवा उन्हें सिखान का दावा करते हैं तब तो बात ठीक नहीं। हमें ऐसे लोगों के विरुद्ध **निर्दय** संघर्ष छेड़ना चाहिए। हां **युवक** संघों की बात दूसरी है क्योंकि वे तो साफ़ साफ़ यह स्वीकार करते हैं कि वे अभी सीखते हैं कि उनका मुख्य काम समाजवादी पार्टियों के कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना है। हमें इन लोगों की हर सम्भव तरीक़े से मदद करनी चाहिए, उनकी ग़ल्तियों के प्रति सहनशील होना चाहिए, उन्हें धीरे धीरे ठीक करना चाहिए, मुख्यतया **समझा-बुझा कर** न कि लड़-झगड़ कर। प्रायः ऐसा होता है कि वृद्धों की पीढ़ी के लोग युवकों के साथ व्यवहार करना भी **नहीं जानते** और युवक अपने बाप-दादाओं मे **उलटे ढंग पर** समाजवाद की ओर बढ़ते हैं, एक **भिन्न** रास्ते से, **भिन्न तरह से** और **भिन्न** दशाओं में।"* लेनिन को युवकों में बड़ी बड़ी आशाएं बनी रहीं। 'श्रमिक वर्ग और नियो-मेलथूज़ियानिज़्म' शीर्षक अपने लेख में, जो जून १९१३ में प्रकाशित हुआ था, उन्होंने यह बात निम्नलिखित पंक्तियों में कही थी: "हां, **और** हम भी, श्रमिक और छोटे छोटे मालिकों के कुछ समूह, असह्य दमन **और** कष्टों का जीवन व्यतीत कर रहे हैं। अपने बाप-दादाओं की अपेक्षा हमारा जीवन अधिक कठोर है। लेकिन एक बात में हम उनसे भी अधिक भाग्यशाली हैं। **हमने लड़ना सीख लिया है और तेज़ी से सीख भी रहे हैं** – और अकेले रह कर लड़ना नहीं जैसा हमारे बाप-दादा किया करते थे, बूर्जवाई हवाई नारों के अधीन भी नहीं जो आध्यात्मिक रूप से हमारे लिए पूर्णतः अस्वीकार्य हैं, अपितु ख़ुद अपने नारों के अधीन, वर्ग के नारों के अधीन। हम अपने बाप-दादाओं की अपेक्षा कहीं अच्छी तरह लड़ रहे हैं। हमारे बच्चे हमसे अच्छा लड़ेंगे और **वे जीतेंगे भी**।

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २३, पृष्ट १५४।

"श्रमिक वर्ग मरणासन्न नहीं है। वह आगे बढ़ रहा है, मज़बूत बन रहा है, और अधिक मज़बूती के साथ संघटित हो रहा है। वह संघर्ष में क़दम रख कर फ़ौलाद की तरह बन रहा है। भूदासत्व, पूंजीवाद और छोटे पैमाने पर उत्पादन जैसे मामलों में हम निराशावादी हैं परन्तु जब सवाल श्रमिक वर्ग के आन्दोलन और उसके उद्देश्यों का उठता है तो हम सोत्साह आशावादी हैं। हम एक नयी इमारत की नींव रख रहे हैं जिसे हमारे बच्चे पूरा करेंगे।" *

लेनिन को श्रमिक वर्ग की विजय में दृढ़ विश्वास था और यह भी विश्वास था कि यह वर्ग जीवन का पुनर्निर्माण करने और एक शानदार समाजवादी इमारत की रचना करने में पूर्णतया समर्थ है। इसी लिए वे समझते थे कि बढ़ती हुई पीढ़ी हमारे उद्देश्य को आगे बढ़ायेगी और चाहते थे कि हम इस तरुण पीढ़ी के लोगों को निर्माता और संघर्षशील बनायें।

'सर्वहारा क्रान्ति के युद्ध कार्यक्रम' में लेनिन ने लिखा था कि यह संघर्ष गम्भीर संघर्ष होगा। "वर्ग-चेतन नारी-श्रमिक अपने बच्चे को समझा कर कहेगी: 'शीघ्र ही तुम आदमी बनोगे। तुम्हें बन्दूक़ दी जायेगी। इसे उठाओ और सैनिक शिक्षा ग्रहण करो। सर्वहारा को इस ज्ञान की ज़रूरत है – अपने भाइयों को, अन्य देशों के श्रमिकों को, गोली से उड़ाने के लिए नहीं, जैसा कि वर्तमान युद्ध में हो रहा है, और जैसा कि समाजवाद के शत्रु तुमसे करने के लिए कह रहे हैं लेकिन अपने देश के बूर्जवाओं के विरोध का मुक़ाबला करने तथा शोषण, ग़रीबी और युद्ध को समाप्त करने के लिए, परन्तु, सदुद्देश्यों के प्रदर्शन से नहीं अपितु, बूर्जवा वर्ग पर विजय प्राप्त कर के, उन्हें निरस्त्र कर के।" **

* व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १६, पृष्ठ २०६।

** व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड १, भाग २, पृष्ठ ५७६।

युवकों को बन्दूक़ भर इस्तेमाल कर लेना ही नहीं सीखना है। उन्हें चाहिए कि वे कम अवस्था से ही राजनीतिक जीवन में भाग लेना शुरू करें।

व्लादीमिर इल्यीच ने ६ फ़र्वरी १९१३ को, दूमा की बहस के दौरान में, स्कूल के प्रश्न पर सभी पार्टियों की स्थिति का विश्लेषण किया था। अक्तूब्रिस्टों, प्रगतिवादियों और सांविधानिक-जनवादियों का कहना था कि स्कूली बच्चों को राजनीति में घसीटना बड़ा हानिकर है। इस दोष के अपराधी विद्यार्थियों को सज़ा दी जानी चाहिए, परन्तु पुलिस द्वारा नहीं अध्यापकों द्वारा। वे सरकार से असन्तुष्ट थे क्योंकि उनका कहना था कि सरकार में सद्भावना की कमी है, वह सुस्त है। सांविधानिक-जनवादियों के प्लेटफ़ार्म की व्याख्या करते हुए लेनिन ने लिखा था—

"वे 'अल्पायु' राजनीतिक क्रियाशीलता की **भी** भर्त्सना करते हैं, यद्यपि ऐसा वे बड़ी अस्पष्टता और मृदुता के साथ करते हैं। यह एक जनवाद-विरोधी दृष्टिकोण है। अक्तूब्रिस्ट और सांविधानिक-जनवादी पुलिस की कार्रवाइयों को खराब कहते हैं सिर्फ़ इसलिए कि वे इन कार्रवाइयों के बजाय **निरोधक उपायों** की मांग करते हैं। शासन को चाहिए कि वह मीटिंगों की रोकथाम करे, न कि उन्हें भंग करे। यह स्पष्ट है कि ऐसा सुधार शासन को बदलेगा नहीं उसे ज़रा कस देगा... सर्वप्रथम जनवादी को कहना चाहिए था: मंडल और वार्ताएं **स्वाभाविक भी हैं और वांछनीय भी**। बात यही है। राजनीतिक क्रियाशीलता की, यहां तक कि 'अल्पायु' क्रियाशीलता की भी, भर्त्सना—पाखण्ड और सुधार या जागृति का विरोध है। जनवादी को एक मंत्रालय का नहीं अपितु सारी राज्य व्यवस्था का सवाल उठाना चाहिए था।"*

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड १८, पृष्ठ ५३९-४१।

फ़र्वरी क्रान्ति के बाद व्लादीमिर इल्यीच ने उन सब चीज़ों में विशेष रुचि का प्रदर्शन किया जिनका समाजवादी निर्माण से कोई भी संबंध था। इस संबंध में उनके विचार 'दूर देश से पत्रों' में अधिक स्पष्टता से व्यक्त हो सके हैं। पेरिस कम्यून तथा मार्क्स और एंगेल्स द्वारा की गई उसकी व्याख्या और १९०५ की क्रान्ति के अनुभवों के आधार पर व्लादीमिर इल्यीच का मत था कि राज्य की पुरानी व्यवस्था नष्ट हो जाने के बाद एक नयी किस्म का संघटन बनाना ज़रूरी होगा। श्रमिकों और सैनिकों के डिप्टियों की सोवियतों का कार्यपालिका-संघटन जनता की मिलीशिया होना चाहिए जिसमें सभी नागरिक काम करें तथा सेना, पुलिस और प्रशासकीय व्यवस्था के कृत्यों का सम्पादन करें। लेनिन ने लिखा है: "ऐसी मिलीशिया जनवाद को उस सुन्दर परदे से, जिसके पीछे पूंजीपति जनता को ग़ुलाम बनाते और उनका अपमान करते हैं, बदल कर उस वास्तविक स्कूल का रूप दे देगी, जहां ट्रेनिंग पा कर जनता राज्य के **समस्त** कार्यों में भाग ले सकेगी। ऐसी मिलीशिया बच्चों को राजनीति में प्रवेश दिलायेगी और उन्हें ज़बानी शिक्षा ही नहीं, अपितु आचार-व्यवहार और **कार्यों** की शिक्षा भी देगी।"*

'हमारी क्रान्ति में सर्वहारा वर्ग के लक्ष्य' में, जो १० अप्रैल १९१७ को लिखा गया था, उक्त विचार को और भी आगे बढ़ाते हुए, इल्यीच ने वह उम्र निर्दिष्ट कर दी थी जब कि लोगों को सार्वजनिक सेवाओं में जाना चाहिए। उन्होंने कहा था कि मिलीशिया की सेवा में १५ और ६५ वर्ष के बीच के सभी नर-नारी होने चाहिए बशर्ते कि अस्थायी रूप से प्रस्तावित उम्र की ये सीमाएं तदर्थ किशोरों और वृद्धों के लिए ठीक समझी जायं।

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २३, पृष्ठ ३२०।

श्रमिकों श्रौर लाल सैनिकों के डिप्टियों की मास्को सोवियत के अधिवेशन में, ६ मार्च १९२० को, भाषण देते हुए व्लादीमिर इल्यीच ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि राज्य पर नियंत्रण रखने के लिए जनता का सहयोग प्राप्त करना अपरिहार्य है। उनका विचार था कि राज्य-नियंत्रण शासन का वह स्कूल है जहां सब से अधिक बुज़दिल श्रौर पिछड़े हुए लोगों को भी शासन करना सिखाया जाता है बशर्ते कि निर्देशन ठीक हो। श्रमिक श्रौर किसान जनता को राज्य-नियंत्रण की व्यवस्था करनी चाहिए। लेनिन का कथन था: "आपको यह यंत्र उस श्रमिक श्रौर कृषक समुदाय श्रौर उन श्रमिक श्रौर कृषक युवकों की सहायता से मिलेगा जो सरकार की बागडोर अपने हाथों में लेने के लिए अभूतपूर्व आकांक्षा, तत्परता श्रौर निश्चय के साथ जुटे हुए हैं। हमने युद्ध के दौरान में अनेक अनुभव प्राप्त किये हैं श्रौर हमारे पास हज़ारों ऐसे लोग हैं जिन्होंने सोवियत प्रणाली को देखा-समझा है श्रौर जो राज्य का संचालन करने में समर्थ हैं।"*

बढ़ती हुई पीढ़ी की सार्वभौम शिक्षा श्रौर पोलीटेक्निकल कार्यों पर लेनिन के विचार

व्लादीमिर इल्यीच ने किशोरों एवं तरुण श्रमिकों के श्रम का प्रश्न उन्हें प्रशिक्षण देने तथा उनके श्रम को एक नये ढंग से संघटित करने के प्रश्न के साथ संबद्ध कर दिया था। 'नरोदनिकों की ख़रगोशी योजनाओं के रत्न कण' लेख में, जो १८९७ में लिखा गया था, उन्होंने कहा था—

"प्रशिक्षण को तरुण पीढ़ी के उत्पादनशील श्रम के साथ संबद्ध किये बिना भावी समाज की कल्पना करना भी असम्भव है। बिना

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३०, पृष्ठ ३८९।

उत्पादनशील श्रम के प्रशिक्षण एवं शिक्षा और बिना समानान्तर प्रशिक्षण और शिक्षा के उत्पादनशील श्रम आधुनिक टेक्नोलाजी और विज्ञान के स्तर तक नहीं लाये जा सकते।" और–

"सार्वभौम शिक्षा के साथ उत्पादनशील श्रम को संबद्ध कर देने के लिए स्पष्टतया यह आवश्यक है कि उत्पादनशील श्रम में **सभी को** भाग लेने के लिए विवश किया जाय।"*

और इसलिए, शिक्षा, स्कूल की हाज़िरी, सब के लिए वैसे ही अनिवार्य हो जैसे कि समाजोपयोगी उत्पादनशील श्रम। पार्टी की दूसरी कांग्रेस ने जो कार्यक्रम अंगीकार किया था उसमें एक ओर तो १६ वर्ष से कम के सभी बच्चों को सार्वभौम शिक्षा और व्यावसायिक प्रशिक्षण देने की बात थी और दूसरी ओर १६ वर्ष से कम के बालकों को श्रम करने की मनाही थी, साथ ही उसमें १६ से १८ वर्ष तक के तरुणों के लिए काम के घंटों को छः तक सीमित कर देने की बात थी। इल्यीच ने इस प्रश्न पर १९१७ में उस समय फिर विचार किया जब पुराने कार्यक्रम में संशोधन करना आवश्यक हो गया था। 'पार्टी कार्यक्रम के संशोधन की सामग्री' में उन्होंने किशोर श्रम संबंधी खंडों की रचना इस प्रकार की थी–

"मालिकों को स्कूली उम्र (१६ से नीचे) के बच्चों को काम पर लगाने की मनाही है; तरुणों (१६ से २० वर्ष तक) के लिए कार्य-दिन चार घंटे तक ही सीमित हो और उनसे रात में अस्वास्थ्यकर दशाओं अथवा खानों में काम न लिया जाय।

"... १६ वर्ष से कम के बालक-बालिकाओं के लिए शिक्षा तथा पोलीटेक्निकल प्रशिक्षण (उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं में सिद्धान्त और व्यवहार)

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रंथावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २, पृष्ठ ४४०-४१।

मुफ़्त और अनिवार्य हो। शिक्षा को समाजोपयोगी बाल-श्रम के साथ संबद्ध किया जाय।"*

यहां अन्तिम वाक्य पर विशेष ध्यान देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि स्कूल के लिए सिर्फ़ यही ज़रूरी नहीं है कि वह ज्ञान का प्रसार करे और पोलीटेक्निकल ढंग का प्रशिक्षण दे अपितु यह ज्ञान तथा प्रशिक्षण बच्चों और किशोरों के समाजोपयोगी श्रम के साथ संबद्ध हों। इस प्रकार इस श्रम का त्याग नहीं किया जा रहा है बल्कि इसे सब के लिए अनिवार्य बनाया जा रहा है और इसका संघटन कुछ इस ढंग से किया जा रहा है कि वह व्यावसायिक ट्रेनिंग और साथ ही टेक्नोलाजी और विज्ञान के चतुर्दिक अध्ययन के साथ संबद्ध हो।

श्रमिकों को उद्योगों का प्रबन्ध करना सीखना चाहिए। यह बात १९२० में उस समय विशेष रूप से स्पष्ट हो गई थी जब गृहयुद्ध पीछे पड़ रहा था और ज़रूरी आर्थिक कार्यों ने एक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया था। मार्च १९२० में जलयातायात-श्रमिकों के तीसरे सम्मेलन में भाषण करते हुए लेनिन ने कहा था: "जो व्यक्ति जीवन का निकट से अनुसरण करता है और जिसे दुनिया के काफ़ी अनुभव हैं वह यह जानता है कि प्रबन्ध के लिए ज़रूरी है क्षमता और उत्पादन की समस्त प्रक्रियाओं, उसकी आधुनिक टेक्नोलाजी और वैज्ञानिक शिक्षा के एक निश्चित स्तर का अच्छे से अच्छा ज्ञान।"**

श्रम संबंधी प्रश्न प्रमुख प्रश्न बन गये थे। अप्रैल १९२० में, 'कोमुनिस्तीचेस्की सुब्बोतनिक' नामक एक विशेष समाचारपत्र में इल्यीच

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २४, पृष्ठ ४३७, ४३५।

** व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३०, पृष्ठ ४०१।

ने 'पुरानी व्यवस्था के विध्वंस से ले कर नयी व्यवस्था की रचना तक' शीर्षक एक लेख लिख कर साम्यवादी श्रम का अर्थ समझाया था। १ मई को आयोजित अखिल रूसी सुब्बोतनिक के संबंध में लिखे गये अपने लेख में लेनिन ने कहा था—

"हमें इस ढंग से काम करना चाहिए कि हम 'हर व्यक्ति अपने लिए और ईश्वर सब के लिए' इस सिद्धान्त का और श्रम को बन्धन के रूप में समझने के स्वभाव और इस भावना का उन्मूलन कर सकें कि न्यायोचित श्रम केवल वही है जिसमें पारिश्रमिक निश्चित दरों के अनुसार दिया जाता है। हमें जनता के दिमाग़ में कुछ नियमों को भी बिठाना होगा जैसे 'एक सब के लिए और सब एक के लिए', 'हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसकी ज़रूरतों के मुताबिक', और ये नियम उनके आचार-व्यवहारों और उनकी प्रथाओं में घुल मिल जाने चाहिए, साथ ही धीरे धीरे किन्तु दृढ़ता के साथ कम्यूनिस्ट अनुशासन और कम्यूनिस्ट श्रम की भी आदत डालनी चाहिए।"*

रूसी तरुण कम्यूनिस्ट लीग की तीसरी अखिल रूसी कांग्रेस में २ अक्तूबर, १९२० को लेनिन ने जो भाषण दिया था वह एक अत्यधिक महत्वपूर्ण भाषण है। इल्यीच ने युवकों को सम्बोधित किया था। इन युवकों से उन्हें बड़ी बड़ी आशाएं थीं और वह मानते थे कि ये युवक हमारे उद्देश्यों को आगे बढ़ायेंगे। उन्होंने यह भाषण बड़े ध्यानपूर्वक तैयार किया था। उन्होंने बताया था कि हमें युवक को क्या सिखाना चाहिए और अगर वह सचमुच कम्यूनिस्ट युवक के नाम को सार्थक ठहराना चाहता है तो उसे क्या सीखना चाहिए और जो कुछ हमने शुरू किया है उसे पूरा करने के लिए युवक को प्रशिक्षण कैसे देना चाहिए। युवक को

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३१, पृष्ठ १०३।

कम्यूनिज़्म सीखना चाहिए लेकिन ऐसा भी न हो कि जो कुछ कम्यूनिज़्म के बारे में लिखा गया है उसे वह बिना समझे-बूझे ही हिफ़्ज़ कर ले। युवकों को चाहिए कि वे इस सारे ज्ञान को एक सुविचारित समष्टि का रूप देना सीखें ताकि वह उनके दैनिक चतुर्दिक कार्यों के लिए एक पथ-प्रदर्शक का काम दे सके। उन्हें मार्क्सवाद का अध्ययन करना चाहिए, मानवसमाज के विकास के उन नियमों का स्पष्टीकरण करने वाले तथ्यों का अध्ययन करना चाहिए जो सामाजिक विकास का रास्ता दिखाते हैं और यथासम्भव अधिक से अधिक गम्भीरता के साथ पूंजीवादी समाज और अद्ययुगीन जीवन का अध्ययन करना चाहिए। उन्हें जानना चाहिए कि पुरानी व्यवस्था में से वह सब कुछ कैसे अलग कर लिया जाय जो कम्यूनिज़्म के लिए ज़रूरी है।

लेनिन ने इस बात पर विशेष रूप से ज़ोर दिया था कि मानव ज्ञान ने जो कुछ संग्रहीत किया है उसे प्राप्त करना युवकों के लिए बड़ा ज़रूरी है। नयी पीढ़ी को पुरानी पीढ़ी से ज़्यादा जानकारी होनी चाहिए क्योंकि पुरानी पीढ़ी का मुख्य कार्य बूर्जवा वर्ग को सत्ताविहीन करना था। आज के युवक को कम्यूनिज़्म का निर्माण करना चाहिए और उसके लिए बड़े ज्ञान की ज़रूरत है। इल्यीच ने कहा था कि नयी पीढ़ी को एक ऐसी नयी साम्यवादी नैतिकता का निर्माण करना चाहिए जो निजी हितों को सामाजिक हितों से नीचे का दर्जा दे और लोगों को शिक्षा दे कि वे जागरूक अनुशासित निर्माता तथा संघर्षरत प्राणी बनें। उन्होंने कहा कि युवकों को यह जानना चाहिए कि संघर्ष में मिल जुल कर कैसे काम किया जाय और कैसे अपने सामुदायिक कार्यों को संघटित तथा व्यवस्थित किया जाय। उन्होंने कहा था—

"अगर अध्यापन, प्रशिक्षण और शिक्षण सिर्फ़ स्कूल तक ही सीमित और जीवन के झंझा से अलग रहे तो हम उसमें विश्वास न करेंगे... हमारे स्कूलों को चाहिए कि वे युवकों को ज्ञान के मूल तत्व समझायें,

उनमें स्वतंत्र रूप से कम्यूनिस्ट विचारों को पैदा करने की योग्यता का विकास करें और उन्हें शिक्षित बनायें। स्कूल पढ़ाई के समय लोगों को इस बात की भी शिक्षा दें कि वे शोषकों से उद्धार पाने के लिए चलने वाले संघर्ष में भाग लें।"[4] और—

"युवक लीग के सदस्य होने के माने हैं सार्वजनिक हितों के लिए मेहनत और तदर्थ प्रयास करना। कम्यूनिस्ट शिक्षा का अर्थ यही है...

"तरुण कम्यूनिस्ट लीग को तूफ़ानी कार्यकर्ताओं के दल के रूप में हर काम में सहायता करना तथा अगुआई और उद्यम का परिचय देना चाहिए... और तरुण कम्यूनिस्ट लीग को चाहिए कि वह अपने शिक्षण, प्रशिक्षण और अध्यापन को श्रमिकों और किसानों की मेहनत के साथ संबद्ध करे, न कि अपने को स्कूलों और कम्यूनिस्ट पुस्तकें और पैम्फ़्लेट पढ़ने तक ही सीमित कर दे। श्रमिकों और किसानों के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर काम करने से ही मनुष्य सच्चा कम्यूनिस्ट हो सकता है। और हर व्यक्ति को यह दिखा देना चाहिए कि जो लोग युवक लीग के सदस्य हैं वे पढ़े-लिखे लोग हैं और उन्हें काम करने का तरीक़ा मालूम है... हमें चाहिए कि हम सभी प्रकार के श्रम का संघटन करें, भले ही यह काम कितना भी दुष्कर और अरुचिकर क्यों न हो, और संघटन भी इस प्रकार करें कि हर श्रमिक और किसान यही कहे: मैं स्वाधीन श्रम की एक बड़ी सेना का अंग हूं और बिना भूपतियों और पूंजीपतियों के ही अपने जीवन का निर्माण तथा कम्यूनिस्ट पद्धति की स्थापना कर सकता हूं। तरुण कम्यूनिस्ट लीग को चाहिए कि वह हर व्यक्ति को, थोड़ी ही उम्र से, जागरूक और अनुशासित श्रम की शिक्षा दे। इस प्रकार हमें विश्वास है कि हमारे सामने जो समस्याएं हैं वे हल हो जायेंगी...

[4] व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ ४८७

"और इसलिए जो पीढ़ी अब पन्द्रह साल की हो चुकी है... उसे चाहिए कि वह शिक्षा संबंधी अपने सभी कामों को इस ढंग से उठाये कि हर दिन, हर गांव और हर नगर में तरुण लोग सार्वजनिक श्रम की किसी न किसी समस्या के व्यावहारिक समाधान में लगें भले ही वह समस्या छोटी से छोटी या आसान से आसान क्यों न हो। यह काम जिस हद तक हर गांव में हो सकता है, कम्यूनिस्ट स्पर्धा जिस हद तक विकसित हो सकती है, युवक जिस हद तक इस बात का प्रमाण दे सकते हैं कि वे अपने परिश्रम को संघटित कर सकते हैं, उसी हद तक कम्यूनिस्ट निर्माण की सफलता का आश्वासन मिल सकता है।"*

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस ने दिसम्बर १९२० में विद्युतकरण की उस योजना की जांच-पड़ताल की थी जो रूस के विद्युतकरण के लिए राज्य कमीशन द्वारा निर्दिष्ट की गई थी। इस कमीशन के सदस्यों में राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था की सर्वोच्च परिषद्, संवहन के जन कमिसेरियत और कृषि के जन कमिसेरियत के सर्वोत्तम कार्यकर्ता और विशेषज्ञ थे। इस योजना के समर्थन में लेनिन का उत्साहपूर्ण भाषण सर्वप्रसिद्ध है। उन्होंने कहा था कि विद्युतकरण की राज्य योजना हमारी पार्टी का दूसरा कार्यक्रम था। हमारे राजनीतिक कार्यक्रम में हमारे लक्ष्यों की गणना है और इसमें वर्गों और जनता के संबंधों को स्पष्ट किया गया है। इस कार्यक्रम की अनुपूर्ति हमारे आर्थिक निर्माण संबंधी कार्यक्रम द्वारा की जाय। लेनिन ने कहा था: "बिना अपनी विद्युतकरण योजना की पूर्ति के हम असली निर्माण तक नहीं पहुंच सकते। हम बिना किसी व्यापक आर्थिक योजना के संबंध में बातचीत किये हुए कृषि, उद्योग और यातायात के पुनरुत्थान और उनके एकरूप अन्तःसंबंधों की पुनर्व्यवस्था के बारे

---

* व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ ४८२-८३।

में कुछ नहीं कह सकते। हमें इस योजना को अंगीकार करना चाहिए। स्वाभाविक है कि यह योजना सिर्फ़ मसौदे के रूप में अंगीकार की जायेगी। पार्टी का यह कार्यक्रम हमारे उस वास्तविक कार्यक्रम की भांति अपरिवर्तनशील नहीं होगा जिसमें रद्दोबदल सिर्फ़ पार्टी कांग्रेसों में ही हो सकता है। नहीं, यह कार्यक्रम हर रोज़, हर कारख़ाने में और हर ज़िले में व्यापक बनाया जायेगा, पूरा किया जायेगा, समुन्नत बनाया जायेगा और आवश्यकतानुसार बदला जायेगा। हमें इसकी ज़रूरत एक ऐसी कच्ची रूपरेखा के रूप में पड़ेगी जो रूस के देखते देखते एक बड़ी आर्थिक योजना का रूप ले लेगी, जो कम से कम दस वर्षों में कार्यान्वित होगी और जिससे साफ़ साफ़ यह पता चल जायेगा कि रूस किस प्रकार एक ऐसे वास्तविक आर्थिक आधार पर खड़ा होता है जो कम्यूनिज़म के लिए ज़रूरी है।" *

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस में व्लादीमिर इल्यीच ने कहा था कि "कम्यूनिज़म के माने हैं सोवियत शासन और देश का विद्युतकरण"। उनका यह वाक्य एक बड़ा प्रसिद्ध वाक्य है। इससे कुछ कम प्रसिद्ध उनका वह कथन है जिसमें उन्होंने कहा था कि विद्युतकरण की योजना बिना जनता की सहायता के कार्यान्वित नहीं हो सकती और श्रमिकों तथा अधिकांश किसानों के लिए उन कामों की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य है जो देश के सामने हैं। लेनिन का कहना था कि जनता के सांस्कृतिक स्तर को ऊंचा उठाना आवश्यक है और हर नवनिर्मित बिजलीघर का फ़र्ज़ है कि वह "जनता की विद्युत शिक्षा" के लिए उपयोगी सिद्ध हो। विद्युतकरण योजना का संक्षिप्त रूप विशेष पाठ्यपुस्तकों में होना चाहिए और ये पाठ्यपुस्तकें हर स्कूल में पढ़ाई जानी चाहिए।

* व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३१ पृष्ठ ४८२-८३।

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस में, लेनिन द्वारा तैयार किये गये विद्युतकरण-रिपोर्ट-संबंधी मसौदे में कहा गया है—

"कांग्रेस सरकार को यह निर्देश और देती है तथा ट्रेड-यूनियनों की अखिल रूसी केन्द्रीय परिषद् और ट्रेड-यूनियनों की अखिल रूसी कांग्रेस से अनुरोध करती है कि वे हर संभव तरीक़े से योजना का प्रचार करें और नगर और देहातों की अधिक से अधिक जनता को उससे परिचित करायें। जनतंत्र की सभी शिक्षा संस्थाएं योजना के विषय में विद्यार्थियों को पूरी पूरी बातें बतायें। हर बिजलीघर, न्यूनाधिक हर सुसंगठित फ़ैक्ट्री और राजकीय फ़ार्म बिजली, आधुनिक उद्योग और विद्युतकरण योजना को लोकप्रिय बनाये और इसके संबंध में क्रमबद्ध पाठ्यक्रम तैयार करे। विद्युतकरण योजना का प्रचार करने, और उसे समझने के लिए अपेक्षित ज्ञान का प्रसार करने, के निमित्त उन सभी लोगों को संघटित करना चाहिए जिन्हें इस क्षेत्र में पर्याप्त वैज्ञानिक और व्यावहारिक ज्ञान है।"*

इल्यीच 'रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी संघ का विद्युतकरण' शीर्षक पुस्तक से काफ़ी संतुष्ट थे। यह पुस्तक अगले वर्ष इ० इ० स्तेपानोव द्वारा, स्कूलों की पाठ्यपुस्तक के रूप में, लिखी गई थी। लेनिन चाहते थे कि ज़िले के हर पुस्तकालय में और हर बिजलीघर में इस पुस्तक की कुछ प्रतियां अवश्य पहुंच जायं। उनका कहना था कि हर अध्यापक इस पाठ्यपुस्तक को पढ़े और अध्ययन करे; न सिर्फ़ पढ़े, अच्छी तरह समझे और पूरी तरह अध्ययन ही करे अपितु अपने विद्यार्थियों को आसानी के साथ और साफ़ साफ़ समझा भी सके।

एक वर्ष बाद, 'आर्थिक कार्यों के प्रश्नों का घोषणापत्र' २८ दिसम्बर

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३१, पृष्ठ ४९९।

१९२१ को सोवियतों की नवीं अखिल रूसी कांग्रेस में अंगीकार किया गया था। इसमें लेनिन ने लिखा था—

"नवीं कांग्रेस का मत है कि नये युग में शिक्षा के जन कमिसेरियत का कर्तव्य है कि वह यथासंभव कम से कम समय में किसानों और श्रमिकों में से, सभी प्रकार के विशेषज्ञों को प्रशिक्षण दे। कांग्रेस का सुझाव है कि स्कूलों में होने वाले कार्यों और उसके बाहर होने वाले शिक्षा संबंधी कार्यों और जनतंत्रीय एवं ज़िला और स्थानीय रूप से किये जाने वाले आवश्यक आर्थिक कामों के बीच, और भी अधिक निकट का संबंध स्थापित किया जाय।"[1]

जिस समय सोवियतों की आठवी कांग्रेस हो रही थी उस समय पार्टी ने शिक्षा संबंधी विषयों पर एक सम्मेलन का आयोजन किया जिसमें १३४ ऐसे प्रतिनिधियों ने, जिन्हें निर्णायक वोट देने का अधिकार था और २९ ऐसे प्रतिनिधियों ने भाग लिया था जिन्हें यह अधिकार प्राप्त न था। देश के समक्ष समाजवादी निर्माण के जो काम थे उनका ध्यान रखते हुए समस्त कार्यों का पुनस्संघटन करना ज़रूरी था। स्कूलों को वास्तविक रूप से पोलीटेक्निकल बनाना और उत्पादन के साथ उनका निकट का संबंध स्थापित करना अनिवार्य था। पोलीटेक्निकल शिक्षा के सिद्धान्तों के अनुसार बाल श्रम एवं किशोर श्रम की व्यवस्था करना तथा बढ़ती हुई पीढ़ी को मानसिक और शारीरिक दोनों ही प्रकार के कार्यों की शिक्षा देना आवश्यक था। फिर नये नये कार्यक्रमों को भी तैयार करना अपेक्षित था। इस पार्टी सम्मेलन से व्लादीमिर इल्यीच को बड़ा असंतोष रहा। असंतोष का कारण था पोलीटेक्निकल ट्रेनिंग के प्रश्नों का ठीक तरह से न उठाया जाना और पोलीटेक्निकल शिक्षा ज़रूरी है या नहीं इस संबंध

[1] व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३३, पृष्ठ १५५।

में रखे जाने वाले तर्क – विशेष रूप से उस समय जब इस प्रश्न पर पार्टी ने निश्चित फ़ैसला कर लिया था। पोलीटेक्निकल शिक्षा एक नयी चीज़ थी। 'शिक्षा के जन कमिसेरियत के काम' में लेनिन ने लिखा था: "इस काम के संबंध में पूरा ज़ोर दिया जाना चाहिए '**व्यावहारिक** अनुभव के हिसाब और जांच-पड़ताल' पर, और 'इस अनुभव के क्रमबद्ध **उपयोग**' पर।"*

"पार्टी के कार्यकर्ताओं के सम्मेलन को उन विशेषज्ञों और अध्यापकों की राय भी सुननी चाहिए थी जिन्होंने लगभग दस वर्षों तक व्यावहारिक काम किया था। ये लोग हमें यह बता सकते हैं कि अमुक क्षेत्र में, उदाहरणार्थ, व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में, क्या क्या किया जा चुका है अथवा क्या क्या किया जा रहा है। वे हमें बता सकते हैं कि सोवियत राज्य यह काम कैसे कर रहा है और इस क्षेत्र में उसे कौन कौनसी सफलताएं मिल चुकी हैं (सफलताएं तो शायद मिली हैं यद्यपि उनकी संख्या कम है)। वे हमें इन सफलताओं का ब्यौरा भी दे सकते हैं और मुख्य दोषों तथा उन्हें दूर करने के तरीक़ों के संबंध में ठोस जानकारी भी।"**

यह बात ७ फ़र्वरी १९२१ को अर्थात् 'शिक्षा के जन कमिसेरियत के कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं को केन्द्रीय कमेटी के आदेश' प्रकाशित होने के दो दिन बाद की है। आदेशों ने वही बातें कही थीं – शिक्षा के जन कमिसेरियत के काम को समुन्नत बनाने की आवश्यकता, स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा की ज़रूरत, व्यावसायिक-टेक्निकल ट्रेनिंग को पोलीटेक्निकल ज्ञान के साथ संबद्ध करने की अपरिहार्यता। इसके अलावा उन्होंने इस बात पर भी ज़ोर दिया था कि कालेजियम और जन कमिसार

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३२, पृष्ठ १०२।

**वही, पृष्ठ १०३।

को चाहिए कि वे बुनियादी ढंग की शिक्षा संस्थाओं के लिए पाठ्यक्रम, और, तत्पश्चात्, भाषण, कोर्स, वाचन, वार्ता और व्यावहारिक अध्ययन की व्यवस्था और अनुमोदन करें। उन्होंने कहा था कि फ़ैक्ट्रियों और कृषि संस्थाओं आदि में व्यावसायिक-टेक्निकल और पोलीटेक्निकल ट्रेनिंग देने के लिए टेक्नोलाजी और कृषिक्षेत्रों में समस्त विशेषज्ञों का संगठन करने की ज़रूरत है।

युवकों को समाजवादी संघर्ष के लिए तैयार करने के निमित्त सामान्य और पोलिटेक्निकल दोनों ही प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता है। लेनिन ने उस समाजवाद की कल्पना तक न की थी जो, बिना किसी प्रकार के संघर्ष के, ऊपर से 'थोपा' जा सकता है। उन्होंने कहा था कि ज़िन्दा समाजवाद सर्वसाधारण की रचना है और संघटन समाजवादी निर्माण की रीढ़। समाजवाद एक बिल्कुल नयी प्रणाली है जो दीर्घकालीन संघर्ष के दौरान में पनपी है। इस प्रणाली के निर्माण के लिए विशद ज्ञान की ज़रूरत है।

४ दिसम्बर १९२२ को व्ला० इ० लेनिन ने कम्यूनिस्ट युवक अन्ताराष्ट्रीय संघ को लिखा था कि युवकों को व्यापारिक ढंग से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए।

किसलिए प्रशिक्षित किया जाना चाहिए? इस प्रश्न का उत्तर रूसी तरुण कम्यूनिस्ट लीग की पांचवीं कांग्रेस के प्रति लेनिन की शुभकामना में मिलता है। यह कांग्रेस तरुण कम्यूनिस्ट अन्ताराष्ट्रीय संघ की कांग्रेस से दो महीनें पहले हुई थी। लेनिन ने लिखा था: "मुझे विश्वास है कि जब विश्व क्रान्ति के आगामी चरण का प्रादुर्भाव होगा तब उसका सामना करने के लिए युवक बड़ी सफलता के साथ अपना विकास कर सकेगा।" *

* व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३३, पृष्ठ ३३७।

तरुण कम्युनिस्ट लीग की क्रियाशीलता का सब से महत्वपूण अग

('यूनी कोमुनीस्त' पत्रिका, अंक ८, १९३५)

तरुण कम्यूनिस्ट लीग के समक्ष जितने भी कार्य हैं उनमें एक सब से महत्वपूर्ण कार्य है महिलोद्धार। यह एक ऐसा उद्देश्य है जिसे हमारी कम्यूनिस्ट पार्टी बराबर आगे बढ़ाती रही है।

इस क्षेत्र में, अर्थात् स्त्रियों को जागरूक बनाने में, हमने कितनी अधिक प्रगति की है उसे दुहराने की यहां कोई आवश्यकता नहीं। इसके बारे में बहुत कुछ लिखा और कहा जा चुका है।

इस लेख में मैं तरुण कम्यूनिस्ट लीग के कुछ ठोस कार्यों, और विशेष रूप से उसकी महिला सदस्याओं के कार्यों के बारे में कुछ कहना चाहूंगी।

यह नहीं भूलना चाहिए कि तरुण कम्यूनिस्ट लीग के कार्यकर्ताओं का फ़र्ज़ है कि वे शहरों और देहातों में युवा महिलाओं का नेतृत्व करें। लीग में ऐसी ऐसी युवा महिलाएं हैं जिनके गुणों को देख कर आश्चर्य होता है परन्तु यदि हम समस्त युवा महिलाओं की दशाओं पर एक दृष्टि डालें तो हम देखेंगे कि वे अभी तक अतीत के अवशेषों से ही प्रभावित हैं। और यहां, प्रतिदिन, व्याख्यात्मक और संघटनात्मक कार्यों का सम्पन्न किया जाना ज़रूरी है। देखने में तो यह कार्य साधारण लगता है परन्तु करने के लिए बड़े संयम और लगन की आवश्यकता है, किन्तु यह अपरिहार्य है, और तरुण कम्यूनिस्ट लीग का कर्तव्य है कि वह इस काम को निरन्तर करती रहे।

अतीत के अवशेषों में से एक है महिलाओं का सांस्कृतिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ होना और यह कमी युवा और वृद्धा सभी महिलाओं के कामों और उनकी सामाजिक क्रियाशीलता में बाधक बनती है। वे ठीक ठीक

पढ़-लिख नहीं सकती क्योंकि वे घर-गृहस्थी के झंझटों और बच्चों की देख-रेख में ही बुरी तरह फंसी रहती हैं। पुराने ज़माने में लड़कियों को स्कूल नहीं भेजा जाता था क्योंकि घर के कामों में मदद करने और बच्चों को संभालने के लिए उनकी घर पर ही ज़रूरत रहा करती थी। हमारे सार्वभौम अनिवार्य शिक्षा क़ानून ने एक बहुत बड़ा एवं महत्वपूर्ण कार्य किया है। अब माता-पिताओं के लिए अपने बच्चों को स्कूल भेजना अनिवार्य है। लेकिन फिर भी, हमें यह देखना पड़ता है कि इस क़ानून का सम्यक् ढंग से पालन हो, माता-पिता अनेक 'उचित' कारणों से लड़कियों को घरों में न रखें, जो काम उन्हें घरों में दिया जाता है वह उनके अध्ययन आदि में बाधक न बने। यह भी समझ रखना चाहिए कि पाठशाला-इतर और सामाजिक क्रिया-कलाप लड़कियों के लिए स्कूली कामों की तरह ही ज़रूरी हैं।

परन्तु यहां प्रश्न लड़कियों का ही नहीं है—वे अपनी बड़ी बहनों की अपेक्षा कहीं अच्छी दशाओं में रहती हैं। हमारा भी कर्तव्य है कि हम इन लड़कियों के पढ़ने-लिखने के अधिकार को सुरक्षित रखें और यह देखें कि वे—ख़ास तौर से कुछ राष्ट्रीय क्षेत्रों और जनतंत्रों में—बराबर स्कूल जाती रहें। इस क्षेत्र में क्रमबद्ध सार्वजनिक नियंत्रण का होना भी बहुत आवश्यक है।

जहां तक युवा महिलाओं का, विशेष रूप से देहातों में, संबंध है, शिक्षा का प्रश्न बहुत महत्वपूर्ण है। तरुण कम्यूनिस्ट लीग और सामान्यतया युवकों को इस संबंध में ध्यान देना चाहिए। सांस्कृतिक रूप से पिछड़े रहने के कारण युवा महिलाओं की उन्नति में बाधा पड़ती है। अतः मुख्य कार्य है उनकी निरक्षरता को दूर करना। लेकिन केवल साक्षरता से हमें संतोष नहीं। सोवियत देश में आर्थिक और सामाजिक उन्नति के वर्तमान चरण में श्रमिक जनता के लिए यह आवश्यक है कि वह उस स्तर का ज्ञान जरूर प्राप्त कर ले जिसकी सहायता से वह उत्पादनशील श्रम, लाभकर

सामाजिक क्रियाशीलता और समाजवादी निर्माण के लिए अनिवार्य योग्यता प्राप्त करे। समाजवादी निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में काम करने वाले हर व्यक्ति को चाहिए कि वह आधुनिक विज्ञान और टेक्नोलाजी का एक निश्चित और अपेक्षाकृत उच्च ज्ञान प्राप्त करे। श्रम, विज्ञान और टेक्नोलाजी में जितनी ही अधिक उन्नति होती जाय चतुर्दिक ज्ञान का स्तर भी उतना ही अधिक उच्च हो।

समाजवादी निर्माण के लिए अपेक्षित है करोड़ों श्रमिकों का सक्रिय रूप में भाग लेना और, सामूहिक रूप में, उनका सामाजिक कार्यों में जुटना। और यदि इस काम को ठीक ठीक सम्पन्न करना है तो यह जरूरी है कि लोग एक निश्चित सांस्कृतिक स्तर की योग्यता प्राप्त करें।

हमारी लड़कियां इल्यीच के इन शब्दों को अच्छी तरह जानती हैं: "रसोई में काम करने वाली हर महिला को देश का शासन करने के योग्य बनना चाहिए।" लेकिन ऐसा करने के लिए जरूरत है अध्ययन की, अधिकाधिक जानकारी की।

उदाहरणार्थ, सोवियतों की क्रियाशीलता ही को ले लीजिये। आम तौर पर युवा नर-नारी सोवियतों के कार्यों में बहुत कम भाग लेते हैं। वे उनकी शाखाओं के कार्यों में अधिक दिलचस्पी नहीं दिखाते और प्रतिनिधियों की सहायता नहीं करते। हमें इस मनोवृत्ति को बदलना होगा। लेनिन ने सोवियतों की शाखाओं के काम के महत्व पर बहुत अधिक ज़ोर दिया था। उनका कहना था कि युवकों को चाहिए कि वे सोवियतों की हर तरह से मदद करें। वे इस कार्य को शासन-विद्यालय की तरह समझते थे।

हमें सोवियतों द्वारा ही असभ्यता के विरुद्ध मोर्चा लेना चाहिए क्योंकि हमारी युवा महिलाओं पर उसका विशेष रूप से दूषित प्रभाव पड़ता है। इसे दूर करने के लिए जरूरी है ज्ञान और इस क्षेत्र के कार्यों की जानकारी। बिना इसके असभ्यता के विरुद्ध किया जाने वाला संघर्ष निश्चित

ही संकीर्ण बन कर रह जायेगा और काहिलों तथा व्यापारियों की पुरानी सभ्यता का रूप ले लेगा।

आज के सब से ज्वलंत प्रश्नों में से एक है परिवार का प्रश्न, शिक्षा तथा सामाजिक और पारिवारिक शिक्षा के परस्पर समन्वय का प्रश्न। किन्तु तरुणों की पीढ़ी की कम्यूनिस्ट-शिक्षा माता-पिता की संस्कृति पर, उनके शैक्षणिक स्तर पर भी निर्भर है।

जहां कहीं भी निगाह जाती है बस एक ही चीज़ दिखाई देती है— समाजवादी निर्माण के लिए ज़रूरी है कि सभी श्रमिकों को एक निश्चित स्तर का ज्ञान अवश्य हो। अर्द्ध-साक्षरता शब्द का अर्थ भी व्यापक बन जाता है। जिस व्यक्ति को भूगोल की या मानव-विकास के प्रधान चरणों की ज़रा भी जानकारी नहीं है, जो प्राकृतिक तत्वों और अपने चारों ओर होने वाली घटनाओं को नहीं समझता, जो काम की तथा रहन-सहन की दशाओं में परिवर्तन लाने के लिए विज्ञान का उपयोग करना नहीं जानता अथवा यह नहीं जानता कि अपेक्षित ज्ञान कहां से प्राप्त हो सकता है, वह अर्द्ध-साक्षर है।

तरुण कम्यूनिस्ट लीग को ऐसे सारे कार्य सम्पन्न करने चाहिए जिनके कारण युवक और प्रौढ़ स्कूलों का विस्तार हो सकता हो। उसे यह देखना चाहिए कि हर युवक स्कूल जाय। उसे उन युवकों की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जो अभी तक या तो निरक्षर हैं या अर्द्ध-साक्षर। हमारे युवकों, ख़ास कर लड़कियों और युवक सामूहिक किसानों को, सप्तवर्षीय शिक्षा मिलनी चाहिए। यह कार्य बड़ा है और गम्भीर भी। युवकों को चाहिए कि वे आवश्यक स्कूलों की संख्या बढ़ाने के लिए संघर्षरत रहें। उन तरुणों की शिक्षा के संबंध में विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए जिन्होंने किसी न किसी कारणवश बहुत देर से स्कूल जाना शुरू किया है। मतलब यह कि पिछड़े हुए बच्चों की शिक्षा का खास ख़्याल रखा जाय। लड़कियों में ऐसे बच्चों की बहुतायत है। यह कार्य बहुत महत्वपूर्ण है परन्तु इसकी

व्यवस्था काफ़ी अच्छी नहीं है और सभी पिछड़े हुए बच्चे इससे लाभ नहीं उठा पाते।

स्वाध्याय का विशेष महत्व है। इसके लिए पुस्तकालयों की ज़रूरत है और पुस्तकालय अधिक हैं नहीं। फिर भी उन्हें सारी जनसंख्या की सेवा करनी पड़ती है। सम्प्रति यह देखने के लिए कि सर्वोत्तम रूप से संघटित पुस्तकालय किन किन गांवों या ग्राम्य ज़िलों में हैं, गांवों और ग्राम्य ज़िलों में पुस्तकालयों के लिए एक प्रतिस्पर्द्धा चल रही है। इस प्रतिस्पर्द्धा में तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यों, ख़ास कर लड़कियों, को भाग लेना चाहिए।

शिक्षा के लिए अपेक्षित दशाएं (शहरों और देहातों में युवकों और प्रौढ़ों के स्कूलों का विस्तार, पुस्तकालयों की संख्या में वृद्धि, स्वाध्याय के लिए सहायता की व्यवस्था आदि) पैदा करने के अलावा हमें इस बात के भी प्रयत्न करने चाहिए कि ट्रेड-यूनियनें श्रमिक महिलाओं के शिक्षा पाने के अधिकारों की सुरक्षा करें। उदाहरणार्थ, नौकरानियों की ट्रेड-यूनियन ले लीजिये। इसने मालिकों के साथ होने वाले क़रार में अध्ययन के लिए कुछ घंटे निश्चित करने के संबंध में क्या किया है? क्या कोई इसपर निगरानी या नियंत्रण रख रहा है? कोई इसकी देखरेख कर रहा है? क्या उन मालिकों पर कोई जुर्माना किया जाता है जो अपनी नौकरानियों को पढ़ने की सुविधा नहीं देते? छोटे पैमाने के उद्योगों में काम करने वाली लड़कियों के लिए अध्ययन करने के अधिकारों की सुरक्षा के लिए क्या किया जा रहा है? आदि आदि। इस क्षेत्र में अभी बहुत कुछ करना शेष है।

सोवियत संघ में विकास के वर्तमान चरण में ट्रेड-यूनियन के कार्यों को जनता के सांस्कृतिक स्तर के उत्थान, उनके रहन-सहन की दशाओं में सुधार और उनके जीवन का पुनर्निर्माण करने के लिए सम्पन्न किया जाना चाहिए। इस क्षेत्र में युवा महिलाएं काफ़ी रुचि ले रही हैं। उन्हें

चाहिए कि वे इस काम को पूरी लगन के साथ करें और ट्रेड-यूनियन के कार्यों में अधिक से अधिक भाग लें।

हम जिस नये जीवन का निर्माण कर रहे हैं उसके लिए सांस्कृतिक क्रान्ति को व्यापक बनाने की ज़रूरत है। जीवन का यह भी तक़ाज़ा है कि हम पति और पत्नी, माता-पिता और बच्चों के बीच के पारिवारिक संबंधों तथा नयी पीढ़ी के पालन-पोषण जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों को हल करें। ये ऐसे प्रश्न हैं जो युवकों के मस्तिष्कों को आन्दोलित करते रहते हैं। वे सिर्फ़ साम्यवादी सांसारिक दृष्टिकोण के आधार पर ही हल किये जा सकते हैं और तभी जब मनुष्य साम्यवादी नैतिकता के मूलभूत सिद्धान्तों के अनुसार काम करता है। सम्प्रति जो क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए हैं उन्हें देखते हुए हम कह सकते हैं कि हम बहुत से प्रश्नों को एक नये ढंग पर, हल करते हैं। इस ढंग का प्रयोग हम पुराने ज़माने में नहीं कर सकते थे। यहां लोगों को नये नये रास्ते निकालने चाहिए। यहां बड़ी बड़ी गम्भीर कठिनाइयां हैं जिनमें से मुख्य यह है कि प्रायः पुराने मत नये नये छद्मवेशों में पहने रहते हैं। हमें चाहिए कि हम परिवार और पालन-पोषण के संबंध में कूपमंडूकों जैसे विचारों और कूपमंडूकों की नैतिकता से सावधान रहें।

हमें चाहिए कि अपने अतीत की याद करें। पचहत्तर वर्ष पहले हमारे यहां भूदासत्व की प्रथा थी। ज़मींदार अपने भूदासों के स्वामी थे, उन्हें बेच सकते थे और "आर्थिक कारणों से" उनका विवाह कर सकते थे। पारिवारिक जीवन का आधार था ग़ुलामी के क़ानून – बच्चे मां-बाप की सम्पत्ति थे, पत्नी पति की जायदाद थी। पारस्परिक प्रेम अथवा सहानुभूति जैसी कोई चीज़ न थी। गोर्की ने कृषक परिवार के जीवन की विभीषिकाओं का शायद सर्वोत्तम चित्रण किया है। अपनी एक कहानी में उन्होंने लिखा है कि ७५ वर्ष पूर्व ख़ेरसन गुबेर्निया में स्थित कन्दीबा ग्राम के निवासी एक किसान को अपनी पत्नी पर अत्याचार करते हुए चुपचाप देखते भर रहे थे। यह उस समय की नैतिकता थी।

१८६०-७० में भूदामत्व की प्रथा समाप्त कर दी गई और उसका स्थान पूंजीवादी व्यवस्था ने ले लिया। लेकिन महिलाओं के प्रति लोगों के रुख़ को बदलने में बहुत समय लगा।

पूंजीवादी व्यवस्था के अधीन अनिवार्य क़िस्म का विवाह कम प्रचलित है। वह तो रोज़गार की वस्तु बना रहता है। 'सुविधा वाले विवाह' पनपते रहते हैं—एक धनी व्यक्ति अथवा धनी स्त्री के साथ, किसी पदधारी पुरुष अथवा किसी मंत्री की लड़की के साथ विवाह करने में फ़ायदे रहते हैं। कभी कभी इन सौदों के पीछे धन की इच्छा कम रहती है, फिर भी ये होते हैं सौदे ही: गृहिणी की अथवा जीविकोपार्जक की प्राप्ति इत्यादि इत्यादि।

यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि इस प्रकार के व्यापारी ढंग के सौदे वाले तथा सुविधा वाले विवाह का परिणाम यह होता है कि पति और पत्नी के बीच झूठे और कुटिल संबंध स्थापित हो जाते हैं जिसका नतीजा यह होता है कि एक दूसरे के बीच अविश्वास और छल-कपट की भावनाएं पैदा हो जाती हैं। सुविधा के विवाह के पहले प्राय: प्रेम व्यापार देखने को मिलता है। इन व्यवस्थाओं पर आधारित पारिवारिक जीवन सुखद नहीं होता। कभी कभी पति और पत्नी "एक दूसरे के अभ्यस्त हो जाते हैं" परन्तु अधिकांश मामलों में उनके अवैध व्यवहार बराबर चलते रहते हैं। पुरुष वेश्याओं के पास जाते हैं जो ग़रीबी के कारण अपने शरीर बेचती हैं। सुविधा वाले विवाहों में छल-कपट, निष्ठाहीनता, असभ्यता और व्यभिचार का निश्चित रूप से बोलबाला रहता है। इस क्षेत्र में सब से ज़्यादा हानि होती है स्वभावतया स्त्रियों को।

'व्यापारिक ढंग के' विवाहों की नकारात्मक विशेषताएं ख़ास तौर पर मामूली बूर्जवाओं के समाज में देखने को मिलती हैं।

मार्क्स और एंगेल्स ने लिखा था कि नये वैवाहिक संबंध केवल सर्वहारा वर्ग द्वारा ही सुखद बनाये जा सकते हैं। ऐसी दशा में विवाह सुविधा के लिए नहीं होगा अपितु उसका आधार होगा—परस्पर आकर्षण,

प्रेम, विश्वास और मत की एकता। सोवियत क़ानून ने स्त्री को वैवाहिक संबंधों के पुराने एवं असह्य स्वरूपों से मुक्त कर दिया है।

लेकिन अतीत के कई अवशेष अब भी मिलते हैं। हर जगह छोटे छोटे बूर्जवाओं की मनःप्रवृत्ति नयी दशाओं में बदली हुई, छद्मवेश धारण करती हुई और अपने को अनुकूलित करती हुई दिखाई पड़ती है।

यह विचार आज भी पनप रहा है कि स्त्री एक 'खिलौना' है। कोर्टशिप, व्यभिचार, स्त्रियों के प्रति ग़ैर-ज़िम्मेदाराना रुख़ ये सारी बातें अब भी तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यों तक में पाई जाती हैं। "कुछ मनोरंजन कर लेना अच्छा है परन्तु विवाह के लिए जल्दी ठीक नहीं।" और यदि लड़की गर्भवती हो जाय तो यही लोग कहते हैं: "तो इससे क्या? वह गर्भ गिरवा सकती है।" यह स्त्रियों के प्रति पुरानी धारणा है, जिसके अनुसार स्त्री को मनुष्य नहीं, खिलौना समझा जाता था।

प्रायः इस बूर्जवा जैसे व्यवहार का श्रमिकों पर कुप्रभाव पड़ता है। लोग पुरानी निर्धनता और परिवार के उन पुराने संबंधों की रुक्षता से बचना चाहते हैं जिनपर दासत्व की छाप अब तक देखी जा सकती है। वे अधिक जागरूक नहीं रहते और उस संकीर्णता की ओर भी ध्यान नहीं देते जिससे निरंतर मोर्चा लेते रहना ज़रूरी है।

जिस समय देहातों के सामाजिक जीवन से विच्छिन्न छोटी छोटी वैयक्तिक अर्थ-व्यवस्थाएं प्रचलित थीं, उस समय अतीत के अवशेष बने रहे और उन्हें नष्ट होने में काफ़ी समय लगा। कृषि के समूहीकरण और श्रम के पुनस्संघटन के फलस्वरूप नारी को स्वतंत्रता मिली और सामूहिक कृषक के रूप में काम करने वाली नारी ने शक्ति का रूप ग्रहण किया। फलतः नीति-नियमों में, नर-नारी के संबंधों में और पारिवारिक संबंधों में बड़े बड़े परिवर्तन देखने को मिले।

सम्प्रति हमारे देश में समाजवादी निर्माण पूरी गति से चल रहा है; हर घंटे श्रमिक जनता की जागरूकता में वृद्धि हो रही है; पार्टी, तरुण

कम्यूनिस्ट लीग, ट्रेड-यूनियनें और सोवियतें अपना ध्यान जनता के सांस्कृतिक उत्थान की ओर दे रही हैं। समस्त जीवन का नवनिर्माण करने के लिए भौतिक दशाओं का निर्माण किया जा रहा है (नये नये मकान, ढेरों सार्वजनिक खान-पान-घर, शिशु-गृहों, किंडरगार्टनों, क्लबों, पार्कों इत्यादि की बढ़ती हुई संख्या)। हम तो यह भी कह सकते हैं कि इस नये जीवन के लिए एक नयी पोशाक बनाई जा रही है। ऐसी दशाओं में पारस्परिक विश्वास, विचारों के संवहन, अनुरूपता और उस स्वाभाविक आकर्षण के आधार पर, जो बढ़ कर असीम प्रेम का रूप ले लेता है, पारिवारिक संबंधों के नये स्वरूप निश्चय ही दिन प्रतिदिन सुदृढ़ बनेंगे।

अन्त में मैं बच्चों के पालन-पोषण के बारे में कुछ कहूंगी।

नारी या तो मां है या होने वाली मां। उसमें मातृत्व की जन्मजात प्रवृत्तियां बड़ी सुदृढ़ होती हैं। ये प्रवृत्तियां एक बड़ी शक्ति हैं और मां को आनन्द से भर देने में पूर्णतः समर्थ।

हम माताओं की इज़्ज़त करते हैं। मां एक जन्मजात शिक्षिका है। वह बच्चों पर और ख़ास तौर से नन्हें-मुन्नों पर बड़ा गहरा प्रभाव डालती है। हम अच्छी तरह जानते हैं कि बच्चे को आरम्भिक वर्षों में जो लालन-पालन मिलता है वह बड़े होने पर उसके चरित्र को कितना अधिक प्रभावित करता है। अतएव महत्वपूर्ण बात यह है कि बच्चे का पालन-पोषण किस ढंग से हो।

किसी लड़की को ले लीजिये। उसका पालन-पोषण कई प्रकार से हो सकता है–गुलाम के रूप में; मामूली बूर्जवा व्यक्तिवादी के रूप में जिसे अपने इर्द-गिर्द के जीवन में कोई भी रुचि नहीं किन्तु जिसे रुचि है अपनी बातों में, अपने मामलों में; सामूहिक व्यक्ति के रूप में, समाजवाद के सक्रिय निर्माता के रूप में, ऐसे व्यक्ति के रूप में जिसे सामूहिक श्रम में, बड़े बड़े उद्देश्यों के लिए चलने वाले संघर्ष में आनन्द आता है, सच्चे कम्यूनिस्ट के रूप में।

ये सारी बातें स्वयं माता पर और उसके विचारों पर निर्भर हैं ...

हमारे किंडरगार्टनों और स्कूलों को उन आदर्श संस्थाओं के रूप में कार्य करना चाहिए जो इस बात का परिचय दे सकें कि नये मनुष्य और समाजवाद के निर्माता के रूप में बच्चों का पालन-पोषण कैसे हो। किंडरगार्टन और स्कूलों तथा उन परिवारों में, जहां माताएं समाजवाद की भक्त हैं, बच्चों के पालन-पोषण के परिणामस्वरूप एक अद्‌भुत पीढ़ी का जन्म होगा। लीग की महिला सदस्यों और सामातन्यया तरुण कम्यूनिस्ट लीग को इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

स्कूल और पोलीटेक्निकल शिक्षा

स्कूलों में लेनिन और लेनिनवाद का अध्ययन

('प्राव्दा', २१ मार्च, १९२५)

क्या स्कूलों में लेनिन का अध्ययन किया जाना चाहिए? बेशक। लेनिन का हमारे 'बीते हुए कल', 'आज' तथा 'आने वाले कल' से, सुखद भविष्य के लिए हमारे संघर्षों से और सर्वसाधारण के संघर्षों से इतना घनिष्ठ संबंध है कि वे हमारे ही जीवन के एक अंग बन गये हैं। ऐसी दशा में अगर हमारे स्कूली बच्चों को यह न मालूम हो सका कि वे कैसे रहते थे, क्या करते थे तो निश्चय ही यह एक बड़ी अद्‌भुत और अग्राह्य-सी बात होगी।

परन्तु क्या उनके संबंध में वैसा ही अध्ययन होना चाहिए जैसा कि प्रायः किया जाता है? नहीं।

कुछ लोग पूरी निष्ठा के साथ ऐसा कहते हैं कि उन बच्चों को भी लेनिनवाद की शिक्षा मिलनी चाहिए जिन्होंने अभी स्कूल जाना आरम्भ ही नहीं किया। लेकिन चूंकि यह सामान्य बुद्धि में जमने वाली बात नहीं है, अतएव इस बात के प्रयास किये जा रहे हैं कि लेनिन को छोटे छोटे बच्चों के लिए अलग से अनुकूलित किया जाय। उनका चित्रण एक ऐसे सदय पितामह के रूप में किया जाता है जो अपने बच्चों की पीठ ठोंकता हुआ उन्हें अच्छे बनने के लिए उत्साहित करता है। कभी कभी उन्हें ऐसी बालिकाओं से घिरा हुआ भी चित्रित किया जाता है जो उन्हें फूलों के गुच्छे भेंट करती हैं। इस प्रकार बच्चे समझने लगते हैं कि लेनिन अच्छे

स्वभाव वाला उदारवादी साधारण बूर्जवा था। उसके चित्र बच्चों द्वारा तैयार किये गये चौखटों में जड़े जाते हैं, उनपर फूल मालाएं पहनाई जाती हैं और वे साधारण बूर्जवा नैतिकता के एक प्रतीक बन जाते हैं: "तुम्हारा पतलून फटा है, इस चित्र में लेनिन को देखो कितने साफ़-सुथरे हैं, तुम उन जैसा बनना चाहते हो न, चाहते हो न?" इत्यादि, इत्यादि।

ऐसी ऊल-जलूल बातें कहने से तो यही अच्छा है कि लेनिन के बारे में कुछ न कहा जाय। मैं जानती हूं कि ऐसी बातें प्रायः सद्भावना के साथ कही जाती हैं, लेकिन इससे बच्चों को, बड़े होकर, यह समझने में कठिनाई होगी कि लेनिन सचमुच कैसे थे।

यही बात प्रारम्भिक स्कूल के बच्चों पर भी लागू होती है। हां, इतना और बढ़ा दिया जाता है कि लेनिन को अच्छे अंक मिलते थे और बच्चों के लिए उनका आदेश था—पढ़ो, पढ़ो और पढ़ो। कहा जाता है कि बच्चे सिर्फ़ लेनिन के बचपन में ही दिलचस्पी लेते हैं और सामान्यतः यह बचपन बहुत कुछ 'शिक्षणशास्त्रीय' रंगों से चित्रित किया जाता है ...

जो बच्चे कुछ सयाने होते हैं उनसे कहा जाता है कि वे "लेनिनवाद का अध्ययन करें" और "लेनिन के आदेशों को पूरा करें।" लेनिनवाद क्या है और उसका उन्हें क्यों अध्ययन करना चाहिए इसे बच्चे नहीं समझते। उनके लिए लेनिनवाद एक ख़ाली किन्तु गूंजता हुआ शब्द है। उन्हें यह भी पता नहीं कि लेनिन के आदेश क्या हैं और उनका मतलब क्या है। वे तो यही समझते हैं कि यह आदेश सदाचरण संबंधी कोई नियम होंगे।

बड़ी कक्षाओं में लेनिनवाद की शिक्षा 'उचित ढंग' से दी जाती है। एक योजना के अनुसार बच्चे लेनिन के संघर्षपूर्ण भौतिकवाद और साम्राज्यवाद-विरोधी संघर्ष के लिए किये जाने वाले तात्कालिक कार्यों के संबंध में उद्धरण पढ़ते हैं और मूल विषयों का निर्वाचन करते हैं, आदि, आदि।

फिर 'लेनिन मण्डल' भी हैं जिनमें 'दस्तकारियों' का विशेष स्थान रहता है। इन मण्डलों के सदस्य चित्रकारी, कसीदाकारी और नक़्क़ाशी करते हैं। मण्डलों के संचालकों का कहना है कि "लोग लेनिन से संबंधित हर चीज़ की ओर आकृष्ट हों और उसपर उनकी नज़र दूर से ही पड़ जाय"। लेकिन मण्डल पुस्तकालय हो, उद्धरणों की प्रदर्शनी हो या संग्रहालय हो इस संबंध में बराबर तर्क चला करते हैं।

जिस लेनिन ने किसानों और मज़दूरों की भलाई के लिए चलने वाले संघर्ष में अपना तन-मन-धन लगा दिया था, जिस लेनिन ने हर मज़दूर और किसान नर-नारी, हर निपढ़ और दलित व्यक्ति के दुखों और उसकी ग़रीबी को दूर करने के लिए सब कुछ किया था—स्कूलों में बच्चों को उसी महामानव का वास्तविक ज्ञान यदा-कदा ही कराया जाता है। बच्चे उस लेनिन के बारे में प्रायः कुछ भी नहीं जानते जो बराबर श्रमिक जनता के उद्धार के बारे में ही सोचता रहा, जिसने जनता को संघटित करने, उसमें ज़िन्दगी फूंकने और संघर्ष के समय उसका नेतृत्व करने के लिए सभी सम्भव उपाय किये। ये बच्चे विचारक, संघटनकर्ता अथवा नेता लेनिन के बारे में प्रायः कुछ भी नहीं जानते।

बच्चों के लिए लेनिन का जो जीवनवृत्त लिखा गया है वह निष्प्राण है।

बच्चों को उस जीवन्त लेनिन का ज्ञान कराया जाना चाहिए जिसने अथक परिश्रम किया है, जिसने संघर्ष के समय कभी घुटने नहीं टेके, जो दुनिया के सर्वहारा वर्ग का और किसान-मज़दूरों का नेता है।

जो लोग जनता को समझते हैं, जो उनके सुख-दुख में भाग लेते हैं, जो उन्हें संघटित करने और उनमें जागरूकता पैदा करने के लिए परिश्रम करते हैं—मैं समझती हूं वही लोग बच्चों को लेनिन के बारे में ज़रूरी और महत्व की बातें बता सकते हैं।

ऐसे लोग निश्चय ही हमारे बीच मौजूद हैं।

हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि स्कूल बच्चों का लेनिन विषयक ज्ञान बढ़ाने में सहायक बनें न कि बाधक।

व्यावसायिक तथा पोलीटेक्निकल शिक्षा में अन्तर

('हमारे बच्चे' पत्रिका, अंक ५, १९३०)

व्यावसायिक तथा पोलीटेक्निकल शिक्षा में क्या अन्तर है इसे सर्वोत्तम ढंग से एक उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। हम सूती वस्त्र उद्योग को ले लें। इसमें अनेक पेशे हैं: बुनाई, कताई, रंगाई इत्यादि। अच्छा बुनकर होने के लिए यह ज़रूरी है कि वह नवीनतम डिज़ाइन के करघे का इस्तेमाल जानता हो, उसके एक एक पेंच से वाकिफ़ हो, कच्चे माल की विशेषताओं से परिचित हो और अनुभवी हो। सूती वस्त्र की मिलों में मशीनों की व्यवस्था होने से पूर्व श्रमिकों को एक लम्बी अवधि के लिए ट्रेनिंग लेनी पड़ती थी और अपने काम में कुशल बनने के निमित्त वर्षों काम करना होता था।

और वे अपने कामों में कुशलता प्राप्त कैसे करते थे?

होता यह था कि शिशिक्षु को महीनों तक के लिए किसी कुशल श्रमिक के साथ 'बांध' दिया जाता था। यह शिशिक्षु काम देखता और उसकी सहायता करता, सूत तैयार करता और दौड़ दौड़ कर उसका काम कर दिया करता। अन्ततः कुशल श्रमिक उसे करघे पर बिठाल देता और उसपर काम करते करते शिशिक्षु उसे सीख लेता। शिशिक्षुओं से बड़ी सहायता मिल जाती थी और यही कारण था कि कुशल बुनकर वैयक्तिक ट्रेनिंग की इस पद्धति के हामी थे।

मशीनों का प्रचलन हो जाने से काम की रूपरेखा ही बदल गई। लेकिन कुशल श्रमिकों का अब भी महत्व है यद्यपि इस ज़माने की कुशलता

पहले से बहुत भिन्न है। अब बुनकर के लिए करघे के कल-पुर्ज़ों की जानकारी, कई कई करघों को एक साथ चलाने की क्षमता, लीवरों को जल्दी जल्दी स्विच करने, बटन दबाने और ऐसे अन्य काम करने की योग्यता होना अपेक्षित है जिनमें अभी तक मशीनों की व्यवस्था नहीं की गई है।

वैयक्तिक शिशिक्षुता भी सम्प्रति एक भिन्न प्रकार की है। दौड़ दौड़ कर श्रमिक के लिए काम करने या हाथों से करघा आदि चलाने का समय लद गया। अब बुनकर का काम अधिक ज़िम्मेदारी का हो चुका है और उसे किसी शिशिक्षु को नहीं सौंपा जा सकता। वैयक्तिक शिशिक्षुता अन्तिम सांसें ले रही है। उसका स्थान व्यावसायिक स्कूलों ने ले लिया है।

यदि व्यावसायिक स्कूलों में काफ़ी साज-सामान होगा तो वहां शिशिक्षु को कुशलतापूर्वक यंत्र चलाने की शिक्षा मिल सकेगी। ऐसे स्कूलों का औचित्य इसी में है कि वहां काफ़ी साज़-सामान की व्यवस्था की जाय। और इसके लिए बहुत अधिक धन की ज़रूरत है। इस तरह के व्यावसायिक स्कूल बहुत थोड़े हैं और उनमें से जो अच्छे स्कूल हैं उनसे निकलने वाले श्रमिक उच्च कोटि की अर्हता प्राप्त श्रमिक होते हैं।

यह याद रहना चाहिए कि समय के साथ साथ टेक्नोलाजी में भी विकास हो रहा है। मनुष्य किसी कला को सीखने में समय लगाता है, शक्ति लगाता है और फिर उसे मालूम होता है कि अमुक अमुक नया आविष्कार हो जाने के कारण उसकी सारी मेहनत बेकार हो गई। उसके काम का स्थान धीरे धीरे मशीन लेती जा रही है। उसकी अर्हताएं नहीं के बराबर रह गई हैं। फिर भी, किसी पिछड़े हुए देश में, जहां शारीरिक श्रम का अब भी महत्व है, जहां औद्योगिक आधुनिकीकरण की गति शिथिल है, व्यावसायिक स्कूलों और वैयक्तिक शिशिक्षुता का अब भी बोलबाला है।

जिस देश में औद्योगीकरण की गति तेज़ है उसके लिए एक अन्य चीज़ की भी जरूरत है—यानी इस बात की कि शिशिक्षुओं को उत्पादन संबंधी समस्त कार्यों, टेक्निकल विकास और हर मशीन को चला सकने का ज्ञान हो। इसके लिए मनुष्य को चाहिए कि उसे काम करने का अनुभव हो, कच्चे माल का ज्ञान हो, आदि आदि। जिस व्यक्ति को ये सारी बातें सिखाई गई हैं वह किन्हीं भी परिवर्तनों के होते हुए भी काम कर लेगा और एक अर्ह श्रमिक होगा—'अर्ह' शब्द के नये अर्थ में, पुराने में नहीं।

फ़ैक्ट्री-ट्रेनिंग का एक सप्तवर्षीय स्कूल क्या शिक्षा देगा?

यह स्कूल अपने प्रशिक्षार्थियों को हाथ या मशीन से बुनाई या कताई करना नहीं सिखायेगा अपितु वे सारी बातें सिखायेगा जो किसी मिल में काम करने के लिए उसे जाननी चाहिए। पहले, स्कूल उसे इस विषय में बतायेगा कि सूती वस्त्र उद्योग का सारी दुनिया की अर्थ-व्यवस्था में और हमारे देश की अर्थ-व्यवस्था में क्या महत्व है। वह उसे बतायेगा कि हमारा सूती वस्त्र उद्योग किस प्रकार विकसित होगा। वह सीखेगा कि सूती वस्त्र के हमारे केन्द्र कहां कहां हैं, आदि। फिर वह यह सीखेगा कि मिलों में कौन कौनसे कच्चे मालों का प्रयोग किया जाता है: फ़्लेक्स, कपास, ऊन, रेशम, कृत्रिम रेशम, केन्दूर आदि, ये कच्चे माल कहां कहां पाये जाते हैं और निकट भविष्य में इन क्षेत्रों का विकास कैसे होगा। उसे इन कच्चे मालों की विशेषताएं बताई जायेंगी और उनकी खेती तथा संग्रहण के विकसित तरीक़ों का ज्ञान कराया जायेगा। तत्पश्चात् उसे मिल की संरचना, उसके समस्त विभागों, उत्पादन की भिन्न भिन्न शाखाओं और उनके लिए अपेक्षित योग्यताओं का परिचय कराया जायगा। मशीनें कैसे बनाई जाती हैं, इन मशीनों के डिज़ाइन कैसे तैयार किये जायं, सूती वस्त्रोत्पादन में विकास और सुधार कैसे किये जा सकते हैं आदि बातें भी वह सीखेगा। ख़ास ख़ास कारख़ानों में जाकर वह भिन्न

भिन्न प्रकार के करघों से परिचय प्राप्त करेगा, उनपर काम करना सीखेगा और इस प्रकार उसे पता चल जायेगा कि आधुनिक मशीनें पुरानी मशीनों से कहीं अच्छी हैं, कहीं समुन्नत। वह उनकी देखरेख करना और किसी भी मशीन पर काम करना सीखेगा। अन्ततः वह किसी भी मशीन से—हाथ से चलने वाली से लेकर बिजली से चलने वाली तक—काम लेने के अनेक तरीक़ों का भी ज्ञान प्राप्त करेगा।

स्कूल अपने विद्यार्थियों में उत्पादन के प्रति रुचि और अधिक से अधिक उत्पादन बढ़ाने की इच्छा पैदा करेगा। दूसरी ओर, फ़ैक्ट्री ट्रेनिंग स्कूल अपने विद्यार्थियों को फ़ैक्ट्रियों और प्लान्टों के श्रम-संघटनों के बारे में बतायेगा और तदर्थ वैयक्तिक और सामूहिक श्रम-संघटन की शिक्षा देगा। वह उसे श्रम और स्वच्छता-सफ़ाई की आवश्यक दशाएं पैदा करने की शिक्षा देगा, उसे बतायेगा कि किसी उद्यम में, विशेष रूप से किसी सूती वस्त्र मिल में श्रम सुरक्षा और सेफ़्टी इंजीनियरिंग के मूलभूत सिद्धान्त क्या हैं। अन्त में, फ़ैक्ट्री ट्रेनिंग स्कूल उसे देश-विदेश के श्रम-आन्दोलन और ट्रेड-यूनियन आन्दोलन और दुनिया भर के श्रमिकों, विशेष रूप से सूती वस्त्रोद्योग के श्रमिकों द्वारा किये गये संघर्ष का इतिहास बतायेगा।

इस प्रकार विद्यार्थी को जो ज्ञान प्राप्त होगा वह संकुचित व्यावसायिक ज्ञान न रह कर, आने वाले कल के लिए भी उपयोगी सिद्ध होगा। पोलीटेक्निकल शिक्षा संबंधी अपने वृहद् ज्ञान और काम करने की आदतों को लेकर जब वह किसी फ़ैक्ट्री में जायेगा तब वह कोई ऐसा नया रंगरूट नहीं होगा जो सहायक की जगह बाधक बनता हो। वह एक परिपक्व और कुशल श्रमिक होगा जिसे सिर्फ़ अल्पकालीन विशेषज्ञ-पाठ्यक्रम की ही ज़रूरत होगी।

पोलीटेक्निकल स्कूलों के लिए होने वाले संघर्षों में लेनिन का योग

(‘कोमुनिस्तीचेस्कोये वोस्पितानिये’ पत्रिका, अंक ६, १९३२)

व्लादीमिर इल्यीच ने नयी पीढ़ी के भरण-पोषण पर विशेष ध्यान दिया था। उनका ख़्याल था कि स्कूल वे साधन हैं जो वर्गहीन समाज का निर्माण कर सकते हैं और नयी पीढ़ी में साम्यवाद की भावना भर सकते हैं। वे उन लब्धप्रतिष्ठ शिक्षाशास्त्री के पुत्र थे जो प्रारम्भिक स्कूलों को एक सामूहिक संस्था का रूप देने के लिए सदैव प्रयत्नशील रहे और जिन्होंने अपना सारा समय उसके विकास में ही लगा दिया। स्वयं व्लादीमिर इल्यीच ने मार्क्स और एंगेल्स के उस समस्त साहित्य का बड़े ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जिसमें उन्होंने स्कूल के बारे में और शिक्षा को काम के साथ सम्बद्ध करने के बारे में प्रकाश डाला था। १८९७ में जब मार्क्सवाद रूस में लोगों का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था और उन नरोदनिकों के विरुद्ध एक ज़बरदस्त संघर्ष चल रहा था, जिन्होंने समाजवादी विकास का पूर्णतः ग़लत अर्थ लगाया था, उस समय लेनिन ने ‘नरोदनिकों की ख़रगोशी योजनाओं के रत्न-कण’ शीर्षक एक लेख में अपने विचार व्यक्त किये थे। नरोदनिक युझाकोव ने किसानों के बच्चों को शिक्षित करने की एक योजना बनाई थी। उसका विचार था कि ख़र्च की स्वयं व्यवस्था करके गांवों में पाठशालाएं खोली जायं, जिनके पास अपने फ़ार्म हों, धनी किसान अपने बच्चों की पढ़ाई का ख़र्च अदा करें और ग़रीब किसानों के बच्चे अपनी शिक्षा और रहन-सहन का ख़र्च उठाने के लिए काम करें। पाठ्यक्रम और शिक्षा की भावना ज़ारकालीन पाठशालाओं जैसी ही होनी थी। इस योजना से लेनिन को बहुत अधिक क्रोध आ गया। युझाकोव का ख़्याल था कि—बिना किसी संघर्ष के और वर्ग-भेद तथा निरंकुश शासन को बनाये रखते हुए—गांवों

में इस प्रकार की पाठशालाएं खोलना पूर्णतः संभव है। सेंसर के कारण लेनिन को गुप्त तरीक़ों, लाक्षणिक व्यंजनाओं और संकेतों का सहारा लेना पड़ा था, लेकिन उन्होंने वे सारी बातें कह डालीं जो वे कहना चाहते थे, और 'योजना' के खोखलेपन और उसकी अनर्गलता को प्रमाणित कर दिया था। उन्होंने यह दिखा दिया था कि युझाकोव रूसी यथार्थता और रूसी पद्धति पर आधारित वर्ग-विशेषता से पूर्णतः अनभिज्ञ है और यह भी सिद्ध कर दिया था कि इस योजना में भू-दासत्व की भावना है, क्योंकि इससे तरुण लोग ज़मीन से बंध जायेंगे और फ़ार्मों के ऐसे मज़दूर बन कर रह जायेंगे, जिन्हें स्कूल प्रशासन की स्पष्ट अनुमति के बिना २५ वर्ष की अवस्था में भी विवाह करने का अधिकार न होगा। इस योजना के स्थान पर लेनिन ने एक ऐसी अनिवार्य सार्वभौमिक श्रमिक स्कूल की योजना प्रस्तावित की जो विद्यार्थियों में गंभीर प्रकार के ज्ञान का प्रसार करे और जिसमें सभी विद्यार्थी मिल कर काम करें।

इसके बाद एक लम्बे अरसे तक लेनिन ने इस विषय पर कुछ नहीं लिखा लेकिन उन्होंने हमेशा ही बाल-श्रम पर विशेष ध्यान दिया और इस बात पर ज़ोर दिया कि बाल-श्रम की सुरक्षा और बच्चों को राजनैतिक क्रिया-कलापों में डालना बड़ा ज़रूरी है।

फिर विश्व-युद्ध शुरू हुआ। लेनिन ने मानव-जीवन के इतिहास में होने वाले क्रान्तिकारी परिवर्तनों का पूर्वानुमान कर के और वर्तमान पीढ़ी का ख़्याल कर के फिर अपना ध्यान शिक्षा के प्रश्न पर लगाया। ग्रनात विश्वकोश के 'समाजवाद' विभाग के लिए लिखे गये 'कार्ल मार्क्स' शीर्षक अपने लेख में लेनिन ने शिक्षा को कार्यों के साथ संबद्ध करने के प्रश्न पर मार्क्स के उद्धरण दिये थे। व्लादीमिर इल्यीच ने मुझे यह सलाह दी थी कि मैं एक पुस्तक लिखूं जिसमें इस बात का उल्लेख हो कि औद्योगिक दृष्टि से विकसित देशों में यह समस्या किस रूप में पाई जाती है। परिणामतः मैंने 'जन-शिक्षा और लोकतंत्र' शीर्षक पुस्तक लिखी।

लेनिन ने इसे बड़े ध्यान से पढ़ा और इसे प्रकाशित करने के संबंध में आवश्यक कार्यवाही भी की। युद्ध के वर्षों में जब हम विदेशों में रह रहे थे उस समय उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि युवकों को वर्ग-संघर्ष में और गृह-युद्ध में भाग लेना ज़रूरी है। उन्होंने यह भी कहा था कि १५ वर्ष से ऊपर के सभी तरुणों को सर्वहारा मिलीशिया के कार्यों में मदद करनी चाहिए।

१९१७ में पार्टी के कार्यक्रम का मसविदा तैयार करते समय लेनिन ने स्कूल संबंधी अनुच्छेद इन शब्दों में प्रस्तुत किया था: यह ज़रूरी है कि हमारे यहां "१६ वर्ष से कम के लड़के-लड़कियों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य, सामान्य तथा पोलीटेक्निकल (औद्योगिक उत्पादन की सभी प्रमुख शाखाओं में सैद्धान्तिक और व्यावहारिक) शिक्षा दी जाय तथा उस शिक्षा का बच्चों के सामाजिक उत्पादन कार्यों से संबंध हो।" उन्होंने इस सामाजिक उत्पादन कार्य की अनिवार्यता पर विशेष ज़ोर दिया था।

सोवियत शासन की स्थापना के आरम्भ के तुरन्त ही बाद इल्यीच ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि जन कमिसेरियत पोलीटेक्निकल स्कूलों की स्थापना करे। यद्यपि हमारी आर्थिक दशा काफ़ी बिगड़ी हुई थी फिर भी हमने अपना काम शुरू किया। यह काम हमें बिल्कुल शुरू से ही आरम्भ करना पड़ा था। शुरू शुरू में यह अधिकांशतया एक प्रयोगात्मक कार्य था। 'पोलीटेक्निकल' शिक्षा की दशा हीन दिखाई पड़ रही थी और वह मुख्यतया स्व-सेवा, बढ़ईगिरी, सिलाई तथा जिल्दसाज़ी के कारखानों में काम करने तक ही सीमित थी। लेनिन की इच्छा थी कि स्कूल विद्युतकरण की शिक्षा दें। यह शिक्षा कैसे दी जानी चाहिए इसकी भी उन्होंने एक योजना तैयार कर ली थी। यह बात दिसम्बर १९२० की है।

व्लादीमिर इल्यीच ने अनुभव किया था कि स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा की गति बहुत धीमी है। शिक्षा के जन कमिसेरियत में कुछ लोग

ऐसे थे जो तरुणों के लिए व्यावसायिक स्कूलों की व्यवस्था चाहते थे और जिनका कहना था कि पोलीटेक्निकल शिक्षा बेकार है और हमें मोनोटेक्निकल शिक्षा की ज़रूरत है। उन्होंने यह विचार भी. व्यक्त किये थे कि पोलीटेक्निकल शिक्षा हर जगह नहीं दी जा सकती। देहातों में इसकी कोई ज़रूरत नहीं। इसकी व्यवस्था सिर्फ़ बड़े बड़े नगरों में होनी चाहिए। उक्रइन में पोलीटेक्निकल स्कूलों का विचार पूर्णतः विकृत रूप ले चुका था। लेनिन ने एक पार्टी मीटिंग बुलाने पर ज़ोर दिया जिसमें मुझसे पोलीटेक्निकल शिक्षा पर रिपोर्ट देने की आशा की जाती थी। मैंने इल्यीच को अपनी रिपोर्ट की थीसिस दिखाई। उन्होंने इधर-उधर कुछ बातें लिखीं और ये शब्द भी टांक दिये "प्राइवेट। मसविदा। इसे सार्वजनिक रूप न दिया जाय। मैं इसपर विचार करूंगा।" अब मैंने अपनी ओर से इन थीसिसों को सार्वजनिक रूप दे दिया है। तब से बहुत वर्ष बीत चुके हैं लेकिन पोलीटेक्निकल स्कूल की समस्या अब भी गंभीर बनी हुई है। अब मैंने यह विचार किया है कि जो चीज़ उस समय सार्वजनिक रूप से सामने न लाई जा सकी थी उसे अब लाया जाय। आख़िर हम इल्यीच की आलेख्य टिप्पणियों का अध्ययन कर रहे हैं। तब मेरी थीसिसों का कोई इस्तेमाल नहीं किया गया था। मैं बीमार पड़ गई थी और इसी लिए पार्टी की मीटिंग में मैंने रिपोर्ट भी नहीं दी थी। इल्यीच की टिप्पणियों से क्या पता चलता है? यही कि वे इस बात पर ज़ोर देना चाहते थे कि पोलीटेक्निकल शिक्षा सिद्धान्त की बात है। व्यक्तिगत रूप से इल्यीच इसे बहुत महत्वपूर्ण समझते थे। उनका विश्वास था कि पोलीटेक्निकल स्कूल एक वर्गहीन समाज की स्थापना में सहायक होंगे। वे चाहते थे कि मैं अपनी थीसिसों में इसी बात पर ज़ोर दूं। उनका यह भी विचार था कि पोलीटेक्निकल शिक्षा को अविलम्ब चालू कर देना चाहिए। मेरी थीसिसों में व्यावसायिक शिक्षा के समर्थकों को कुछ रियायतें देने का उल्लेख था। मैं समझती हूं, मैंने लिखा था (मेरी थीसिस मेरे

पास नहीं है) कि माध्यमिक स्कूलों को पुनःसंघटित व्यावसायिक स्कूलों में विलीन कर दिया जाय, लेकिन इल्यीच ने इसमें इतना और जोड़ दिया था कि इस विलीनीकरण का प्रभाव "सारे माध्यमिक स्कूलों पर नहीं अपितु १३, १४ वर्ष और उससे ऊपर के विद्यार्थियों पर ही पड़ना चाहिए, **और अध्यापकों के निर्णय और आदेशों के अनुसार!**" पार्टी मीटिंग ने यह उम्र १५ वर्ष निश्चित की थी। 'शिक्षा के जन कमिसेरियत के कार्य' शीर्षक अपने लेख में लेनिन ने लिखा था, "हम (सामान्य पोलीटेक्निकल शिक्षा से व्यावसायिक पोलीटेक्निकल शिक्षा के लिए) आयु प्रतिबन्ध को १७ से घटा कर **अस्थायी रूप से** १५ वर्ष कर देने के लिए बाध्य हैं। **'पार्टी को चाहिए'** कि वह इस व्यवस्था को 'अपवाद के रूप में' समझे... एक व्यावहारिक आवश्यकता, एक ऐसे अस्थायी उपाय के रूप में समझे जो **'देश की ग़रीबी और तबाही के कारण'*** आवश्यक हो गया हो।"

व्यावसायिक स्कूलों में माध्यमिक स्कूलों के ऊंचे दरजों को विलीन कर देने के बारे में जो बात लेनिन ने कही थी वह प्रायः सात दरजों वाले स्कूलों पर लागू होती है। व्यावसायिक स्कूलों के संबंध में लेनिन का मत था कि उन्हें पोलीटेक्निकल स्कूलों का रूप देना चाहिए न कि दस्तकारी वाले स्कूलों का। इन स्कूलों को सामान्य एवं पोलीटेक्निकल शिक्षा देनी चाहिए। यही बात फ़ैक्ट्री ट्रेनिंग स्कूलों और टेक्निकल कालेजों पर घटित होती है, इस बात को नहीं भूलना चाहिए। लेनिन ने यह भी कहा था कि इस बात को भी पूर्णतः निश्चित कर लेने की ज़रूरत है कि हमारी दशाओं में स्कूलों को पोलीटेक्निकल रूप कैसे दिया जाय। लेनिन इन्स्टीट्यूट के अभिलेखालय में पोलीटेक्निकल शिक्षा के संबंध में

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड ३२, पृष्ठ १०२।

लेनिन की एक टिप्पणी है (सं० ३६४६)। उन्होंने लिखा था, "इतना और बढ़ा दिया जाय (१) युवकों और प्रौढ़ों की पोलीटेक्निकल शिक्षा के संबंध में, (२) स्कूल में बच्चों की पहलक़दमी के संबंध में।

"**प्रौढ़ों के लिए**—व्यावसायिक शिक्षा का विकास जो इस प्रकार हो कि वह अन्ततः पोलीटेक्निकल शिक्षा का रूप ले ले।"

अभिलेखालय से इस बात का पता नहीं चल पाता कि यह बात लेनिन ने कब और क्यों लिखी थी। लेकिन हमारे लिए यह बात बड़ी ज़रूरी है।

फ़र्वरी १६२१ में प्रकाशित 'शिक्षा के जन कमिसेरियत के कार्य' शीर्षक लेनिन के लेख और उन्हीं द्वारा तैयार किये गये 'शिक्षा के जन कमिसेरियत के कम्यूनिस्ट कार्यकर्ताओं के नाम केन्द्रीय कमेटी के आदेशपत्रों' से कितनी ही बातों का पता चलेगा! आदेशपत्रों में कहा गया था कि स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा देना और व्यावसायिक-टेक्निकल शिक्षा को पोलीटेक्निकल शिक्षा के साथ संबद्ध करना बहुत ज़रूरी है, कि शिक्षा के जन कमिसेरियत के कालेजियम को पहले तो मुख्य जैसे स्कूलों के पाठ्यक्रमों की और फिर कोर्सों, लेक्चरों, पढ़ाई, बातचीत और व्यावहारिक कार्यों की योजनाओं को निर्धारित और स्वीकार करना चाहिए। आदेशपत्रों में यह भी कहा गया था कि टेक्नोलाजी और शास्त्रीय कृषि कला के सभी उपयुक्त विशेषज्ञों को व्यावसायिक-टेक्निकल और पोलीटेक्निकल स्कूलों में काम करने के लिए चुनना चाहिए और इस प्रयोजन के लिए हर उस औद्योगिक और कृषि-संस्था का उपयोग होना चाहिए जो भली भांति संघटित है।

दिसम्बर १६२१ में सोवियतों की नवीं कांग्रेस में लेनिन ने इस बात पर ज़ोर दिया था कि स्थानीय और जनतंत्रीय दोनों ही क्षेत्रों में स्कूल के काम को आवश्यक आर्थिक कामों के साथ संबद्ध कर दिया जाय।*

लेनिन की घोषणाओं में पोलीटेक्निकल स्कूल बनाने के निश्चित निर्देश मिलते हैं। पांच वर्षों तक उन्होंने स्वयं इस व्यवस्था का निर्देशन किया था। पिछले कुछ वर्षों से यह कार्य उन्हीं के निर्देशानुसार चल रहे हैं।

हमने इस काम को सुगम बनाने के निमित्त कुछ सामान्य पूर्वापेक्षाएं बना ली हैं, जिनमें से सब से महत्वपूर्ण ये हैं : हमारी औद्योगिक सफलताएं, हमारे देश का औद्योगीकरण और हमारी कृषि-व्यवस्था का एक नया स्वरूप। आर्थिक नियोजन भी एक बड़ी महत्वपूर्ण चीज़ है क्योंकि इससे हमारा पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण व्यापक बनता है और यह भी पता चलता है कि उत्पादन की भिन्न भिन्न शाखाएं किस प्रकार परस्पर संबद्ध हैं। औद्योगिक तथा कृषि कैडर की ट्रेनिंग तेज़ी से दी जा रही है। समाजवादी प्रतिस्पर्द्धा आन्दोलन के फलस्वरूप श्रम के प्रति जनता का रुख़ चेतनाशील बनता जा रहा है और साथ ही अनुशासन की भावना में भी वृद्धि हो रही है। सारे बच्चों के लिए प्रारम्भिक स्कूली शिक्षा अनिवार्य कर दी गई है और शीघ्र ही हमारे यहां स्कूल में सात वर्षों की शिक्षा भी अनिवार्य हो जायेगी। हमने तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सदस्यों और तरुण पायोनियरों की एक विशाल सेना तैयार की है। वे स्कूलों की मदद करते हैं। फ़ैक्ट्रियां और प्लान्ट हमारे स्कूलों के संरक्षक हैं। पार्टी, स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा पर विशेष बल देती है।

सम्प्रति बड़े पैमाने पर एक ऐसा संघर्ष चल रहा है जिसका उद्देश्य है अच्छी क़िस्म का शिक्षण देना। ऊपर जिन बातों का उल्लेख हुआ है उनका भी उद्देश्य पोलीटेक्निकल शिक्षा की समस्याओं में सुविधाएं पैदा करना है। किन्तु अभी तक हमारे स्कूलों ने लेनिन के आदेशों का पालन नहीं किया है, अभी उन्हें इस दिशा में बहुत कुछ करना है। हम अभी तक जो कुछ कर चुके हैं उससे हमें अपनी बहुतेरी ग़लतियां दूर करने में सहायता मिलेगी। हम जानते हैं कि हमने अपने स्कूलों में पोलीटेक्निकल शिक्षा का आरम्भ स्वसेवा के आधार पर किया था। परन्तु इससे हमें

बहुत कम लाभ हुआ। हम यह भी जानते हैं कि स्तर के लिए भी संघर्ष चल रहा है। स्कूल इस दिशा में अलग नहीं रह सकते, उन्हें बच्चों को वह ज्ञान और वह योग्यता प्रदान करनी ही होगी जो जीवन के अभिनवीकरण के लिए आवश्यक है। हम जानते हैं कि हमारा पोलीटेक्निकल स्कूल साधारण व्यावसायिक स्कूल मात्र नहीं बन जाना चाहिए। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि आधुनिक टेक्नोलाजी में दक्षता प्राप्त करने के लिए निश्चित प्रारम्भिक न्यूनतम ज्ञान की ज़रूरत है। हम शिक्षा के उस चतुर्दिक व्यवसायीपन के विरुद्ध हैं जो प्रायः पोलीटेक्निकल शिक्षा के स्थान पर थोपा गया था। हम बालकों के उत्पादनशील श्रम के पक्ष में हैं लेकिन उनके अध्ययन को काट-छांट कर न्यूनतम बना दिया जाय इसके पक्ष में नहीं। पिछले एक वर्ष से केन्द्रीय समिति के ५ सितम्बर १९३१ के एक निर्णय के अनुसार इस अतिरेक के विरुद्ध बराबर संघर्ष हो रहा है।

पोलीटेक्निकल स्कूलों का निर्माण करने की दिशा में हमने बहुत कुछ सीख लिया है, लेकिन इसके पहले कि उन्हें सचमुच पोलीटेक्निकल बनाया जाय हमें बहुत कुछ सीखना होगा। हम इन स्कूलों का बड़ी तीव्र गति से निर्माण कर रहे हैं और निश्चय ही इन्हें वह स्वरूप दे सकेंगे जिसका स्वप्न लेनिन ने देखा था।

पेशे का चुनाव

('कोम्सोमोल्स्काया प्राव्दा', २६ जून, १९३६)

पेशे का स्वतंत्र चुनाव बहुत महत्वपूर्ण है। जब मनुष्य उस काम को प्यार करता है जिसे वह करता है तो उसे उसमें आनन्द और सन्तोष मिलता है, उसमें वह दिलचस्पी लेता है और, बिना अपने पर बोझ डाले हुए, उत्पादन में निरन्तर वृद्धि करता है।

भूदासत्व के ज़माने में पेशे का चुनाव इस बात पर निर्भर था कि चुनने वाला किस वर्ग का है। किसान के पल्ले शारीरिक मेहनत ही पड़ती थी और मेहनत ली जाती थी "डंडे के ज़ोर से"। मेहनत एक अभिशाप थी। एक पुरानी कथा के अनुसार एक बार ईश्वर ने आदम से कहा था: "तू अपने माथे का पसीना बहा बहा कर रोटी कमायेगा।" मध्य युग में यह बात स्पष्ट देखने को मिलती है कि कितने अधिक लोगों को असह्य दशाओं में ग़ुलामी करनी पड़ती थी।

फ़्रांसीसी बूर्जवाई क्रान्ति ने जनता को आज़ाद किया। अगर जनता को यह वैधानिक आज़ादी न मिली होती तो पूंजीवाद असंभव हो गया होता। उन दिनों के क्रान्तिवादियों ने सोचा था कि यह श्रमिकों के पूर्णोद्धार का प्रभात है। उदाहरणार्थ, रूसो ने बड़े ज़ोर के साथ पेशे के चुनाव की स्वतंत्रता की बात कही थी लेकिन नेक्रासोव का कहना था कि "मनुष्य ने सामन्तवादी ज़ंजीरों की जगह उतनी ही कसी हुई दूसरी ज़ंजीरें पहन रखी हैं"। सामन्तवादी पद्धति के स्थान पर पूंजीवाद ने पैर जमाये और "किराये की ग़ुलामी" की प्रथा आरम्भ हुई तथा पेशे का चुनाव करने की आज़ादी एक विशेष वर्ग के लोगों को, एक परिमित मात्रा में, दी गई।

समाज के वर्णों में विभक्त हो जाने के स्थान पर ऐसी वर्ग-विषमता का उदय हुआ जिससे पेशे के स्वतंत्र चुनाव में बाधा पड़ी। क़ानून के अनुसार मनुष्य इस बात के लिए स्वतंत्र था कि वह अपनी इच्छानुसार पेशा चुन ले, लेकिन वास्तविकता यह थी कि इस मार्ग में अनेक बाधाएं थीं और सब से बड़ी बाधा थी जन-शिक्षा की पूंजीवादी प्रणाली की। टेक्निकल विकास और उद्योगों में सामूहिक कार्यों के लिए एक निश्चित हद तक साक्षर होना आवश्यक था। यही कारण है कि कुछ पूंजीवादी देशों में काफ़ी समय पहले से ही अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था रही है। यह शिक्षा धार्मिक अन्धविश्वासों और बूर्जवा नैतिकता के कारण

दूषित बनी रही और अतीत और वर्तमान का एक विकृत रूप प्रस्तुत करती रही।

इस व्यवस्था के अधीन प्राथमिक शिक्षा से माध्यमिक शिक्षा की ओर बढ़ना आसान काम नहीं क्योंकि प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों के पाठ्यक्रम के बीच एक खाई है। माध्यमिक स्कूलों में लोगों को राज्य-व्यवस्था की ओर इस बात की शिक्षा मिलती है कि वे शासन चलाने वालों की सेवा करें। इन स्कूलों के विद्यार्थी सामान्यतया साधारण बूर्जवाओं—ग़रीबी में दिन काटने वाले कुलीन, छोटे और मध्यम श्रेणी के व्यापारी, अधिकारी, धनी किसान आदि—के बच्चे हैं।

माध्यमिक स्कूल भी भिन्न भिन्न प्रकार के होते हैं। ये स्कूल अपने छात्रों में अधिकाधिक ज्ञान का प्रसार करते हैं और उन्हें 'बुद्धिजीवी के कामों' के लिए तैयार करते हैं। और चूंकि माध्यमिक स्कूलों ने इन तथाकथित 'बुद्धिजीवी के कामों' के लिए रास्ता तैयार किया था अतएव छोटे-मोटे बूर्जवाओं ने वहां अपने बच्चों को पढ़ाने के निमित्त यथासम्भव सभी कुछ किया। इन माध्यमिक स्कूलों में पढ़कर विद्यार्थी एक तो कठोर मेहनत से बच जाता था और दूसरे "मैं भी कुछ हूं" ऐसा समझने लगता था। यहां शिक्षा प्राप्त कर चुकने के बाद विद्यार्थी उच्च शिक्षा के स्कूलों में प्रवेश पा सकता था जहां से उच्च स्तर के विशेषज्ञों को स्नातकी का प्रमाणपत्र मिल जाता था, और इसी लिए इन विशेषज्ञों को अच्छी तनख्वाहें मिलती थीं। भावी 'उद्योग संचालकों' और 'राज्य के नेताओं' के लिए कुछ ख़ास और विशेषाधिकार प्राप्त स्कूल थे (जैसे लीसियम, प्रकृति के मध्य लगने वाले माध्यमिक स्कूल, आदि)।

जन-शिक्षा की समस्त प्रणाली का उद्देश्य पूंजीवाद को सुदृढ़ करना था। पेशे को स्वतंत्र रूप से चुनना एक समस्या बन रही थी। साम्राज्यवादी युद्ध के दौरान में शिक्षण विज्ञान संबंधी जर्मनी की पत्र-पत्रिकाओं में, सब से अधिक प्रतिभाशाली और योग्य व्यक्तियों को उत्साहित करने और

तरक़्क़ी देने की ज़रूरत के विषय में एक ज़ोरदार बहस चली थी। मगर सच्ची बात यह थी कि सवाल हर व्यक्ति को अपनी अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन करने का मौक़ा देने का न था अपितु सब से अधिक प्रतिभाशाली व्यक्तियों का इसलिए निर्वाचन करने का था कि वे पूंजी की सेवा कर सकें और पूंजीवादी व्यवस्था के संरक्षक और शोषकों के सेवक बने रहें।

सोवियत सरकार को ज़ारों से उत्तराधिकार में शिक्षा की यही पूंजीवादी पद्धति मिली थी, जिसमें सामन्तवाद, अज्ञान और गुलामी का पुट था।

सोवियत सरकार ने श्रमिकों में ज्ञान का प्रसार करने के निमित्त आरम्भ से ही यथासम्भव सभी कुछ किया—वर्ग-भेदों को दूर करने और जन-शिक्षा की सम्पूर्ण प्रणाली का पुनस्संघटन करने के लिए कोशिशें कीं। ऐसा करने के निमित्त सरकार ने ज्ञान-भांडार में से सिर्फ़ वे ही कण चुने जो जनता के सांस्कृतिक उत्थान के लिए ज़रूरी थे।

उसने एक एकीकृत शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया और पाठ्यक्रम में से सारी पुरानी वाहियात बातें निकाल दीं। उसने श्रमिकों की फ़ैकल्टियां बनाईं और माध्यमिक स्कूलों तथा उच्च शिक्षा के इन्स्टीट्यूटों में प्रवेश करने वाले श्रमिकों और किसानों को सभी क़िस्म की सुविधाएं दीं। जन-शिक्षा की पूरी प्रणाली का पुनस्संघटन कार्य उस समय हाथ में लिया गया जब गृह-युद्ध चल रहा था और सामाजिक संरचना का नये सिरे से पुनर्निर्माण हो रहा था। उस समय छोटी से छोटी सफलताओं को प्राप्त करना, अथवा सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा का संघटन करना कितना अधिक दुःसाध्य था इसे समझ सकना मुश्किल नहीं। हमारे संघर्ष में सांस्कृतिक कार्य सब से महत्वपूर्ण कार्यों में से एक समझा जाता था। सोवियत शासन की स्थापना के बाद के पिछले बीस वर्षों की जन-शिक्षा का इतिहास इस संघर्ष का एक ब्यौरेवार चित्र प्रस्तुत करता है।

हमारे देश की तो इतनी कायापलट हो चुकी है कि अब वह पहचाना तक नहीं जाता। भारी उद्योगों में विकास तथा कृषि के सामूहीकरण एवं यंत्रीकरण ने नगरों और गांवों को एक दूसरे के निकट ला कर खड़ा किया है, जनता का बौद्धिक विकास किया है और उनकी जागरूकता में वृद्धि की है। जीवन समृद्ध हो गया है, टेक्निकल और वैज्ञानिक विकास शारीरिक श्रम और मानसिक कार्यों के बीच की खाई को पाट रहा है और वे पुरानी बाधाएं निर्मूल की जा चुकी हैं जो जनता के ज्ञानार्जन के मार्ग को अवरुद्ध कर रही थीं।

हमने सोवियत संघ में वे सारी बातें पैदा कर ली हैं जो पेशे का स्वतंत्र रूप से चुनाव करने के लिए आवश्यक हैं। परन्तु इसके यह माने नहीं कि हम सांस्कृतिक क्षेत्र में किये जाने वाले अपने कामों में ढिलाई आने दें।

हमें यह न भूलना चाहिए कि निरक्षरता और अर्द्ध-साक्षरता के अवशेष पेशे के स्वतंत्र चुनाव में बहुत अधिक बाधा पहुंचाते हैं।

हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि हमारी बढ़ती हुई पीढ़ी के लिए कम उम्र से, स्कूल में और उसके बाहर सामान्य शिक्षा देने और पोलीटेक्निकल दृष्टिकोण को व्यापक बनाने की ज़रूरत है। हमें यह ध्यान भी रखना चाहिए कि सामान्य शिक्षा और पोलीटेक्निकल शिक्षा के संबंध में अपनाया जाने वाला संकीर्ण दृष्टिकोण पेशे के चुनाव की स्वतंत्रता को परिमित करता है और उसे आकस्मिक बनाता है।

हमें चाहिए कि हम प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च स्कूलों के बीच पाये जाने वाले अवरोधों के अवशेषों को समाप्त करें, उनके पाठ्यक्रम की अच्छी तरह जांच करें और उन सभी ग़ैरज़रूरी छोटी छोटी चीज़ों को दूर कर दें जो विज्ञान के मूलभूत तत्वों पर अभिभावी हो रही थीं। हमें इस बात का प्रयत्न करना चाहिए कि सिद्धान्त और व्यवहार एक दूसरे के और भी निकट आयें।

हमें शारीरिक श्रम के प्रति लोगों के पुराने रुख़ के और इस विचार के खिलाफ़ संघर्ष करना चाहिए कि श्रम लाखों व्यक्तियों के लिए एक अभिशाप है। हमें कुछ लोगों के उच्च शिक्षा के इन्स्टीट्यूटों में घुस कर "मैं भी कुछ हूं" बनने, इंजीनियर बनने, जैसी लालसापूर्ण कोशिशों के विरुद्ध भी संघर्ष करना है। कभी कभी इन लालसाओं में फ़ैक्ट्री श्रमिक के प्रति पुराने रुख़ का, शारीरिक श्रम करने वालों को हीन दृष्टि से देखने के रुख़ का, प्रतिबिम्ब मिलता है। इन पूर्वसंस्कारों को शीघ्र से शीघ्र दूर करने में स्तख़ानोव आन्दोलन* हमारी सहायता करेगा।

हमें अपने बच्चों के स्वास्थ्य का निर्माण करने के लिए सभी कुछ करना चाहिए और इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वे ठीक से खायें-पियें, अच्छी तरह सोयें और खुली हवा में काफ़ी समय व्यतीत करें। हमें उनके शरीर-संवर्द्धन पर ध्यान देना चाहिए, उनकी दृष्ट और श्रव्य स्मृति का विकास करना चाहिए और काम करने के लिए अपेक्षित आदतें डालने में उनकी मदद करनी चाहिए।

दस्तकारी और कारीगरी के ज़माने में पेशे का चुनाव प्रायः माता-पिता के पेशों पर निर्भर रहता था। तब काम करने के अभ्यास से श्रम के स्तर का पता चलता था और इसे प्राप्त करने के लिए छोटी ही उम्र से काम करना ज़रूरी होता था। छोटी उम्र में पेशे का चुनाव एक प्रथा थी। वस्तुतः दस्तकारी में संकीर्ण टेक्निकल ढंग की आदतों का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण होता था। उन दशाओं में कुशल कारीगर होने में बरसों लगते थे और इसी लिए शिशिक्षुता जीवन के आरम्भ काल में शुरू हो कर दीर्घ काल तक चलती रहती थी। दस्तकारी और कारीगरी की एक विशेषता कम

*स्तख़ानोव आन्दोलन—श्रम का उत्पादन बढ़ाने के लिए सन् १६३६ में चलाया गया सामूहिक आन्दोलन। इस आन्दोलन का नाम उसके प्रवर्तक अ० स्तख़ानोव के नाम पर पड़ा।—सं०

उम्र में पेशे का चुनाव करना, अथवा इस चुनाव का अभाव थी। बच्चों का पेशा उनके माता-पिता द्वारा चुना जाता था।

आधुनिक टेक्नोलाजी ने शिशिक्षुता के स्वरूप में महान परिवर्तन उपस्थित कर दिया है। व्यवसाय सीखने वाले के लिए अब प्रारम्भिक टेक्निकल ट्रेनिंग से अधिक शिक्षा प्राप्त करना आवश्यक हो गया है। उसे न केवल यह जानना चाहिए कि लेथ मशीन कैसे चलाई जाती है अपितु उससे यथासम्भव अधिक से अधिक क्षमता के साथ काम भी लेना चाहिए और उत्पादन प्रक्रियाओं से भी भली भांति अवगत होना चाहिए। यह सिर्फ़ आकस्मिक घटना ही नहीं कि अधिकांश युवक स्तख़ानोवाइट फ़ैक्ट्री स्कूलों से निकलते हैं।

हमारे माध्यमिक स्कूलों को चाहिए कि वे विद्यार्थियों में काम करने की ऐसी आदतें डालें जो आधुनिक टेक्नोलाजी के लिए उपयोगी सिद्ध हों और इस प्रकार उन्हें कई कई पेशों के लिए एक साथ तैयार करें। पेशों का चुनाव करने में जल्दबाज़ी से काम नहीं लेना चाहिए क्योंकि इसके माने होंगे चुनाव की स्वतंत्रता को बाधित करना। लेनिन ने चेतावनी दी थी कि व्यवसाय को छुटपन में ही नहीं चुनना चाहिए।

कई पेशे ऐसे हैं जिनके लिए ख़ास गुणों की ज़रूरत होती है – तेज़ कान, तेज़ आंखें, सुविकसित स्पर्श-अनुभूति, सुप्रशिक्षित स्नायु-केन्द्र, इत्यादि। सामाजिक संरचना पेशों की मुख्य निश्चायक है और अकेली समाजवादी पद्धति ही एक ऐसी पद्धति है जो जनता को चुनाव की स्वतंत्रता देती है।

अन्त में मैं दो शब्द 'प्रतिभाशाली' बच्चों के संबंध में भी कहूंगी। अन्य बच्चों की तरह उन्हें भी सामान्य शिक्षा का अधिकार मिलना चाहिए। हमें चाहिए कि हम ऐसी व्यवस्था करें कि वे साधारण सोवियत स्कूलों में अपना सर्वाधिक विकास कर सकें। हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जीवन के आरम्भिक वर्षों में विशेषज्ञता प्राप्त कर लेने का परिणाम यह होगा कि बच्चे भविष्य में अपनी योग्यताओं का व्यापक

उपयोग न कर सकेंगे। एक उदाहरण लीजिये। किसी बच्चे की दृश्य-स्मृति बड़ी प्रखर है और वह अच्छे रेखा-चित्र बनाता है। उसे एक विशेष स्कूल में भेजा जाता है जहां उसे ड्राइंग सिखाई जाती है परन्तु कोई भी उसकी इस प्रतिभा में विकास नहीं करता। कोई उसे कम्यूनिस्ट ढंग नहीं बताता, कोई उसका पालन-पोषण सच्चे कम्यूनिस्ट के रूप में, क्रियाशील सामाजिक कार्यकर्ता के रूप में नहीं करता और वह एक प्रतिभाशाली कलाकार के रूप में बड़ा होता है। वह जड़ जीवन का सुन्दर चित्रकार है मगर यह नहीं जानता कि आधुनिक सामाजिक विकासों का, बिना किसी भोंड़ेपन के, कैसे चित्रण किया जाय और उसके चित्र बिना शब्दों का सहारा लिये हुए कैसे मुखर हों, कैसे सजीव लगें।

माध्यमिक और विशेषज्ञ स्कूल दोनों ही उसका पालन-पोषण एक कम्यूनिस्ट की भांति करें क्योंकि एक यही तरीक़ा है जिससे वह अपनी प्रतिभा का वास्तविक उपयोग कर सकता है।

स्कूली बच्चों को लेनिन के बारे में क्या और कैसे बताया जाय

('उचीतेल्स्काया गजेता', २२ जनवरी, १९३८)

कुछ लोगों का ख़्याल है कि बच्चों को केवल लेनिन के बचपन के बारे में बताया जाय क्योंकि इसी में उनकी दिलचस्पी हो सकती है। यह बात ग़लत है। हमारे बच्चे लेनिन के बारे में सभी कुछ जानना चाहते हैं। लेनिन संग्रहालय के गाइड उन्हें बहुत कुछ बता सकते हैं।

बेशक, बच्चों को लेनिन के बचपन के बारे में बताना चाहिए। मगर सवाल यह है कि कैसे बताया जाय। अगर यही कहा जाय, जैसा कभी रिवाज था भी, कि लेनिन एक अच्छा, विनम्र, शान्त लड़का था, खूब पढ़ता था, हमेशा दर्जे में अव्वल रहता था तो उचित नहीं होगा।

कुछ लोगों ने तो इल्यीच को एक अद्भुत प्रतिभाशाली बच्चे के रूप में चित्रित किया है।

इल्यीच के बचपन का वर्णन दूसरे ही ढंग से करना चाहिए। बच्चों को लेनिन के पिता के बारे में बताना चाहिए कि वे एक ग़रीब परिवार में पैदा हुए थे और प्राथमिक स्कूलों के डाइरेक्टर थे। यह याद रखना चाहिए कि वह ज़माना संकट का ज़माना था। उस समय किसानों की दशा बड़ी ख़राब थी, गांवों में अज्ञान का बोलबाला था, हर चीज़ में भूदासत्व का प्रतिबिम्ब था। व्लादीमिर इल्यीच के पिता, इल्या निकोलायेविच, भूदासत्व की प्रथा से घृणा करते थे। वे सुखद जीवन के स्वप्न देख रहे थे। उन्होंने किसानों के बच्चों के लिए स्कूलों की व्यवस्था करने के निमित्त यथासम्भव सभी प्रयास किये और एतदर्थ अपना सारा जीवन लगा दिया। इल्यीच ने किसानों की दुर्दशा की कहानियां अपनी आया से सुनी थीं जिसे वे बहुत प्यार करते और जिसका चश्मा वे बड़ी सावधानी से धो-पोंछ कर रखा करते थे। जब उनके पिता दूसरे अध्यापकों से बातचीत करते थे तो इल्यीच उनकी बातों को बड़े ध्यान से सुनते। इल्या निकोलायेविच नेक्रासोव और 'ईस्क्रा' कवियों के भक्त थे क्योंकि ये तत्कालीन शासन पद्धति और बुद्धिजीवियों की आलोचना करते थे। बालकों को यह भी बताना चाहिए कि उन दिनों बच्चों की पुस्तकों में क्या क्या लिखा जाता था — 'चचा टाम की कोठरी', अमेरिका, नीग्रो ग़ुलामी को समाप्त करने के लिए दक्षिण के विरुद्ध उत्तर द्वारा छेड़ा गया युद्ध और फिर इस बात का वर्णन कि ज़ारों द्वारा किया गया ग़ैर-रूसियों का दमन अमेरिकी गृह-युद्ध की पृष्ठभूमि पर कितना स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इल्या निकोलायेविच को चुवाश, मोर्दवीनियाई बच्चों और उनकी शिक्षा की चिन्ता थी। स्कूल में इल्यीच दूसरे जातियों के विद्यार्थियों के साथ बड़ी सहानुभूति का व्यवहार करते। बच्चों को पोलैंड के विप्लव और इस बात की जानकारी कराना भी आवश्यक है कि ज़ार सरकार ने पोलिश विप्लवियों को किस

प्रकार दबाया था। बच्चों को सन् १८८१ की घटनाएं बताई जायं, जब अलेक्सान्द्र द्वितीय की हत्या की गई थी, और यह भी बताया जाय कि इल्यीच ने अपने बड़े भाई और बहन की बातें कैसे ग़ौर से सुनी थीं, कैसे उन्होंने एक क्रान्तिवादी बनने का निश्चय किया था, जब उनके प्यारे बड़े भाई को गिरफ़्तार किया गया तथा फांसी पर चढ़ाया गया तो उन्हें कितनी पीड़ा हुई थी और कैसे उन्होंने समझा था कि उन्हें एक दूसरा रास्ता, यानी श्रमिक वर्ग के जन संघर्ष का रास्ता, पकड़ना चाहिए।

बच्चों को जानना चाहिए कि क्रान्तिवादी बनने के लिए इल्यीच ने कैसे काम किया था, अपने हर ख़ाली क्षण में श्रमिक वर्ग संघर्ष और क्रान्ति संबंधी कौन कौनसी पुस्तकें पढ़ी थीं और अपने प्रिय खेल स्केटिंग को और लैटिन को किस प्रकार ताक़ पर रख दिया था। उन्हें बताया जाय कि इल्यीच का, जो अपने युग के एक महान विचारक, क्रान्तिवादी और तीक्ष्ण अन्तर्दृष्टि वाले व्यक्ति थे, पालन-पोषण कैसे हुआ था और वे कैसे बड़े हुए थे।

हमें बच्चों को इल्यीच की मां के बारे में भी बताना चाहिए कि वे अपने पति के लिए कितनी चिन्तित रहती थीं, कैसे उनके काम और विश्राम के लिए आवश्यक साधन जुटाती थीं, किस प्रकार अपने बच्चों की देखरेख करती थीं, किस योग्यता के साथ उन्होंने अपने परिवार को एक टीम का सा रूप दे रखा था और किस प्रकार संगीत ने बच्चों का पालन-पोषण करने में उनकी सहायता की थी। जेनदार्मों (राजनीतिक पुलिस) के साथ उनकी बातचीत, अपने प्रिय पुत्र की फांसी के कुछ ही दिन पहले उससे उनकी मुलाक़ात, उनका साहस और उनके बच्चों का उनके प्रति गहरा आदर-भाव आदि बातें भी अगर बच्चों को बताई जायं तो ज़्यादा अच्छा होगा।

इल्यीच में उनकी संघटनात्मक क्षमता का विकास उनके बचपन से ही दिखाई पड़ने लगा था – वे खेल-कूद का प्रबन्ध करते थे, छोटे छोटे बच्चों के साथ खेलते थे और पाठशाला में अपने सहपाठियों की मदद करते

थे। हमें उन दिनों की पुरानी पाठशालाओं का वर्णन करना चाहिए और 'रूढ़िवादिता' के प्रति इल्यीच की घृणा और जीवन से विच्छिन्न रहने वाले विज्ञान के प्रति उनके आलोचनात्मक पक्ष के बारे में बताना चाहिए।

इल्यीच के बचपन की इस पृष्ठभूमि में बच्चे उनके बाद के वर्षों के क्रिया-कलापों, मार्क्स और एंगेल्स का अध्ययन करने के उनके ढंग तथा कज़ान के मार्क्सवादी मंडलों, विद्यार्थी आन्दोलन और समारा मंडलों में किये गये कार्यों में उनके योग के बारे में बहुत कुछ समझ सकेंगे।

हमें चाहिए कि जब हम पीटर्सबर्ग में सामाजिक-जनवादी संघटन के संस्थापक के रूप में इल्यीच का और मार्क्सवादी मंडलों में किये गये उनके कार्यों का चित्रण करें तो हमें विस्तार के साथ श्रम आन्दोलन के महत्व पर और साथ ही अन्य कई बातों पर भी विचार करना चाहिए—जैसे, सिर्फ़ श्रमिक वर्ग को ही क्रान्तिवादी आन्दोलन का नेतृत्व क्यों करना था, मार्क्स और एंगेल्स को उसमें इतनी श्रद्धा क्यों थी और इल्यीच को उसकी विजय का इतना विश्वास क्यों था। यहां हमें समाजवाद की भी चर्चा करनी चाहिए।

फिर हमें यह भी बताना चाहिए कि इल्यीच ने जेल में अध्ययन कैसे किया और संघटनात्मक कार्य कैसे सम्पन्न किये। उनके निर्वासन संबंधी अपनी कहानियों में हमें इस बात की चर्चा कम करनी चाहिए कि वे शिकार कैसे करते थे या स्केटिंग कैसे करते थे, हां यह चर्चा अधिक होनी चाहिए कि वे किसानों के साथ क्या क्या बातचीत करते थे और दूसरे साथियों को पत्रों में क्या क्या लिखा करते थे।

उनके वैदेशिक जीवन का चित्रण करने की दृष्टि से यह ज़रूरी है कि बच्चों को राष्ट्रव्यापी अवैध रूसी अख़बार का महत्व समझाया जाय। यह अख़बार श्रमिकों को पूरी सच्चाई का दर्शन कराता था, अन्ताराष्ट्रीय श्रम आन्दोलन के बारे में लिखता था, अन्ताराष्ट्रीय संघ की चर्चा करता था और श्रम आन्दोलन की विजय में विश्वास रखने वाले बोल्शेवीकों और

उसमें कोई विश्वास न रखने वाले तथा इस आन्दोलन के प्रति ग़द्दारी करने वाले मेन्शेवीकों के बारे में बहुत कुछ जानकारी देता था। यहां इन मतभेदों के ब्यौरों में जाने की कोई ज़रूरत नहीं।

हमें १९०५ के वर्ष की, प्रतिक्रिया के वर्षों की, रूसी प्रवासियों की, विजय में आस्था की, १९१४ की लड़ाई की, अक्तूबर क्रान्ति की और गृह-युद्ध की भी चर्चा करनी चाहिए। फिर हमें ज़मींदारों और पूंजीपतियों के विरुद्ध हुए संघर्ष के बारे में, देश के आर्थिक और सांस्कृतिक विकास के बारे में, श्रमिकों और किसानों के बीच के संबंधों के बारे में, बुद्धिजीवी वर्ग के श्रेष्ठतर अंश को सोवियतों के पक्ष में लाने के बारे में और अन्त में इल्यीच की मृत्यु और सोवियत शासन की बीसवीं वर्षगांठ के बारे में भी चर्चा करनी चाहिए।

हमें चाहिए कि हम सब से अधिक ज़रूरी, सब से अधिक महत्वपूर्ण और सब से अधिक मूलभूत बातों के बारे में ही बातचीत करें। नारे कम हों तथा सरल और सुबोध कहानियों का बाहुल्य हो।

बेशक, हमें बच्चों की उम्र और शिक्षा-दीक्षा का ध्यान रखना चाहिए। हमें प्राथमिक स्कूल के बच्चों के साथ एक ढंग से और उच्च कक्षाओं के विद्यार्थियों के साथ दूसरे ढंग से बातचीत करनी चाहिए। लेकिन दोनों ही के सामने हमें लेनिन की एक सच्ची तस्वीर रखनी चाहिए—वे सभी प्रकार के दमन और शोषण के विरुद्ध मोर्चा लेने वाले, समस्त श्रमिक जनता के लिए समृद्ध, स्वस्थ, सांस्कृतिक और आनन्दमय जीवन की कामना करने वाले अर्थात् समाजवाद के लिए लड़ने वाले, व्यक्ति थे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि बच्चे इसे समझेंगे।

हमें लेनिन को एक ऐसे सुधारक के रूप में नहीं चित्रित करना चाहिए जो बच्चों से कहा करता हो: "अध्ययन, अध्ययन और अध्ययन बहुत जरूरी है" (यहां यह उल्लेखनीय है कि लेनिन ने यह बात प्रौढ़ों के लिए कही थी)। बच्चों को यह धारणा कभी नहीं होनी चाहिए कि

इल्यीच का प्रेम उनके लिए आमोद-प्रमोद की व्यवस्था – नये वर्ष के प्रीति-भोज, सौग़ात, आदि – तक ही सीमित था। वे नये वर्ष के प्रीति-भोज के विरुद्ध न थे। उन्होंने तो खुद ही १६१८ में बच्चों के एक नये वर्ष के प्रीति-भोज के लिए उपहार भेजे थे क्योंकि उन दिनों बच्चों को खाने को बहुत कम मिलता था, क्योंकि उन्होंने मिठाई की शक्ल तक न देखी थी और, जैसा कि वन-स्कूल के, जहां प्रीति-भोज हुआ था, एक छोटे-से लड़के ने मुझे बताया था, वे "पानी में तले हुए आलू" खाते थे। गोर्कि * की नये वर्ष की पार्टी इल्यीच के कहने से नहीं हुई थी। उन्हें तो वहां लाया भर गया था यद्यपि उस समय वे बीमार थे।

लेनिन को बच्चों से बातचीत करना बड़ा प्रिय था। उन्हें उनके खाने-पीने और तन्दुरुस्ती की चिन्ता थी। वे इस बात का ध्यान रखते थे कि ज़रूरतमंद माता-पिताओं को बच्चों के कपड़े और जूते मिलते रहें। वे बाल-गृहों और बाल-श्रम-सुरक्षा और बच्चों की सार्वजनिक रूप से देखरेख की व्यवस्था करने की ओर विशेष ध्यान देते थे। खुद एक अध्यापक और प्राथमिक स्कूलों के डाइरेक्टर के पुत्र होने के कारण वे यही चाहते रहे कि सभी बच्चों को शिक्षा मिले और बच्चों के एक वास्तविक सोवियत स्कूल की स्थापना की जाय। मार्क्स और एंगेल्स ने स्कूलों और बच्चों के पालन-पोषण के संबंध में जो भी लिखा था उसका इल्यीच ने अध्ययन और नये, समाजवादी स्कूल के निर्माण का समर्थन किया। वे खुद एक परम्परागत पाठशाला के, एक पुराने माध्यमिक स्कूल के विद्यार्थी थे और वहां की तोता-रटन्त वाली पढ़ाई-लिखाई, अनुशासन और जीवन से उसकी विच्छिन्नता से घृणा करते थे। इस पुराने स्कूल में जो शिक्षा दी जाती थी उसका

* मास्को से लगभग २० मील दूर स्थित एक स्थान जहां व्ला० इ० लेनिन ने अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में काम और विश्राम किया था।

९/१० भाग अनावश्यक होता था और बाक़ी १/१० भाग विकृत। उनका कहना था कि सोवियत स्कूल में सिर्फ़ वही बातें सिखाई जायं जो सब से अधिक ज़रूरी हों, सब से अधिक उपयोगी हों और मौलिक हों; साथ ही यह स्कूल सिद्धान्त को व्यवहार के साथ संबद्ध करे और विद्यार्थियों को मानसिक और शारीरिक दोनों ही कार्यों के लिए तैयार करे। उन्होंने इस बात पर ज़ोर दिया था कि सोवियत स्कूलों को चाहिए कि वे जीवन की गति के साथ, समाजवादी निर्माण के साथ साथ क़दम बढ़ायें। इल्यीच चाहते थे कि बच्चों को एक ऐसे सुव्यवस्थित समुदाय का अंग बना दिया जाय जो सामाजिक कार्यों में भी भाग लेता हो। उन्होंने इन सब के बारे में १९२० में, तरुण कम्यूनिस्ट लीग की तीसरी कांग्रेस में कहा था। उच्च कक्षाओं के समस्त विद्यार्थियों को, तरुण पायोनियर के सभी नेताओं को और तरुण कम्यूनिस्ट लीग के कार्यकर्ताओं को इस भाषण का अध्ययन करना चाहिए, यही सोच कर नहीं कि "इसका अध्ययन किया ही जाना है" अपितु यह सोच कर कि यह हमारे कार्यों का पथ-प्रदर्शक है।

हमें चाहिए कि हम सभी उम्रों के स्कूली बच्चों से कहें कि इल्यीच चाहते थे कि बच्चे बड़े हो कर जागरूक कम्यूनिस्ट बनें, अपने पिताओं द्वारा आरम्भ किये गये कार्यों को जारी रखें और हाथों में हथियार लेकर उन कार्यों की रक्षा करें।

स्वाध्याय

स्वाध्याय का संघटन

('स्वाध्याय का संघटन' शीर्षक पुस्तिका से उद्धृत, १९२२)

अक्तूबर समाजवादी क्रान्ति ने मेहनतकशों — श्रमिकों और किसानों — के समक्ष ऐसे बहुत-से अवसर प्रस्तुत किये जब कि वे अपने जीवन का पुनर्निर्माण कर सकते थे। श्रमिक ने अपने को अपने उद्यम का मालिक समझा, किसान को ज़मीन मिली और उसके सपने साकार हुए। इन सब बातों ने मेहनतकशों में क्रियाशीलता का संचार किया, उनमें उत्साह भरा।

लेकिन शीघ्र ही उन्हें मालूम हो गया कि वे एक प्रकार से अशक्त-से हैं, क्योंकि उनमें प्रारम्भिक ज्ञान का अभाव था। युगों युगों से ग्राम-क्षेत्रों में जो विच्छिन्नता आ गई थी वह युद्ध के कारण दूर हो गई और किसान ने मानव-मात्र के रहन-सहन का ढंग अपनी आंखों से देखा। उसने विज्ञान के चमत्कार देखे और यह सीखा कि ज्ञानार्जन के द्वारा ही मिट्टी में जीवन डाला जा सकता है, और उसकी अद्‌भुत शक्ति और संपदा का दोहन किया जा सकता है। श्रमिक इसे पहले से ही जानता था।

मेहनतकशों को अपने ही भाग्य का विधाता बना कर क्रान्ति ने उनमें यह आकांक्षा जागृत की कि वे विज्ञान का उपयोग अपने फ़ायदे के लिए करें।

इस आकांक्षा के परिणामस्वरूप श्रमिक और किसान दोनों ही इस बात को अच्छी तरह समझ गये कि ज्ञान के क्षेत्र में हम शून्य हैं और किसी तरह हमें ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

सोवियत सरकार ने अध्ययन करने की उनकी इस आकांक्षा के प्रति सहानुभूति प्रकट की।

ज़ारशाही शासन के अन्तर्गत पाठशाला-इतर शिक्षा का संघटन बड़ी कंजूसी के साथ किया गया था। सोवियत सरकार प्रौढ़ों के मध्य काम-काज की व्यवस्था करने के लिए विशेष ध्यान दे रही है, और एतदर्थ जितनी धनराशि की ज़रूरत होती है उसे ख़र्च करने में किसी प्रकार की कंजूसी नहीं करती।

निरक्षरता के विरुद्ध संघर्ष शुरू हो गया है। गांवों में हमने लगभग ८०,००० वाचनालयों और लगभग ३०,००० पुस्तकालयों की स्थापना की है। इनके अतिरिक्त अनेकानेक सोवियत-पार्टी-स्कूल, क्लब आदि खोले गये हैं, पत्र-पत्रिकाओं का पूर्णोपयोग और कला-कृतियों का प्रचार किया गया है। शिक्षा प्रसार आन्दोलन चलाया गया है और भिन्न भिन्न प्रकार के अध्ययन पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गयी है।

सोवियत शासन को स्थापित हुए पांच वर्ष हो चुके हैं। तब से अब तक जनता में ज्ञान का प्रसार करने की दिशा में राजनीतिक शिक्षा-संस्थाओं ने बहुत योग दिया है।

लाल सेना संस्कृति विषयक कार्यों का दूसरा बड़ा केन्द्र है।

सभी युवकों को लाल सेना में दो वर्ष तक नौकरी करनी पड़ती है। ये साल बेकार नहीं जाते। लाल सेना के लोगों के लिए, भिन्न भिन्न शिक्षा-स्तरों वाले अनेक स्कूल हैं, पुस्तकालय हैं और क्लब हैं (सम्प्रति* लाल सेना क्लबों की संख्या १,२०० से अधिक है जिनमें ६,२०० राजनीतिक, शिक्षा संबंधी, कृषि विषयक तथा अन्य मंडल हैं जिनके सदस्यों की कुल संख्या १,३०,००० से अधिक है)।

*अर्थात् १९२२ में।—न० क्रू०

ट्रेड-यूनियनों, महिला विभाग* तथा युवक लीग ने भी बड़े बड़े काम किये हैं।

स्कूलों में प्रवेश तथा छात्रवृत्ति संबंधी विशेष सुविधाएं दी गई हैं ताकि यथासंभव अधिक से अधिक किसान और मज़दूर उच्च शिक्षा-संस्थाओं में आसानी से प्रवेश पा सकें। माध्यमिक स्कूलों में श्रमिकों तथा किसानों के बच्चों की भर्ती के क़ायदे आसान कर दिये गये हैं। विश्वविद्यालयों तथा उच्च शिक्षा की अन्य संस्थाओं के लिए श्रमिकों तथा किसानों को प्रशिक्षित बनाने के उद्देश्य से विशेष स्कूलों—श्रमिक फ़ैकल्टियों—की स्थापना की गई है।

किन्तु ये सब कार्य श्रमिक जनता की शिक्षा संबंधी मांगों के लिए काफ़ी नहीं है। रूस में, आगामी बहुत काल तक स्वाध्याय का कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण बना रहेगा।

स्वाध्याय तभी लाभप्रद सिद्ध हो सकता है जब लोगों को यह मालूम हो कि **क्या** पढ़ा जाय और **कैसे** पढ़ा जाय और अध्ययन की सर्वोत्तम ढंग से कैसे व्यवस्था की जाय।

हम बराबर इस बात का अनुभव करते रहते हैं कि जब श्रमिक अपनी मशीनों पर से और किसान जुताई से निकल कर अध्ययन आरम्भ करता है तो वह कितना निःसहाय होता है।

ये किसान और ये श्रमिक नहीं जानते कि क्या करें, क्या पढ़ें, कैसे पढ़ें। उनमें उन प्रारम्भिक आदतों का अभाव मिलता है जो किताबों का अध्ययन करने के लिए आवश्यक समझी जाती हैं। प्रायः मनुष्य को पढ़ना तक नहीं आता और वह ले बैठता है मार्क्स की 'पूंजी', नतीजा

*कम्यूनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति में, सितम्बर १९१९ में, महिला श्रमिकों एवं किसानों के मध्य कार्य विभागों की स्थापना की गई थी। बाद में यह विभाग पार्टी के समस्त स्थानीय संघटनों में खोले गये।

यह होता है कि आखिर में उसे पता चलता है कि वह पुस्तक उसके पल्ले नहीं पड़ी।

जिन लोगों में शक्ति और संयम की कमी होती है वे शीघ्र ही निराश हो बैठते हैं। उन्हें पढ़ाई-लिखाई बहुत अखरती है और वे उसे ताक़ पर रख देते हैं। और पढ़ाई अखरती इसलिए है कि उनमें मार्क्स जैसे विषय में पटुता ग्रहण करने का न तो अनुभव होता है और न ज्ञान ही। लेकिन फिर भी वे यह विषय ले बैठते हैं। यह तो ऐसा ही है जैसे कोई व्यक्ति खाली हाथों भालू का शिकार करने चल दे।

अधिक साहसी और संयमी लोग जिस काम के पीछे पड़ जाते हैं उसे पूरा कर लेते हैं। लेकिन इस क्रिया में प्रायः उन्हें ज़रूरत से ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है और इस काम में वे अपनी बहुत-सी शक्ति बरबाद कर देते हैं।

हमारे देश में श्रम-संघटन और उत्पादन संबंधी प्रचार के बारे में बहुत कुछ कहा और लिखा जा रहा है। किन्तु इन सब के माने हैं— उत्पादन का संघटन।

फ़्रेडरिक टेलर तथा दूसरे इंजीनियरों और विशेषज्ञों ने शारीरिक श्रम के संघटन संबंधी प्रश्न का सविस्तर विश्लेषण किया है। फ़ैक्ट्रियों और प्लान्टों में श्रम-संघटन कैसे किया जाय, कारखानों में लेथ मशीनें कैसे लगाई जायं, औज़ारों का वितरण कैसे हो, श्रम विभाजन के क्या तरीक़े हों, निर्देश कैसे जारी किये जायं और किये गये कार्यों का तख़मीना कैसे लगाया जाय इन सब विषयों की ढेरों पुस्तकें मौजूद हैं। इन समस्त विषयों पर मुख्यतः एक ही उद्देश्य से विचार किया गया है— समय और शक्ति को नष्ट होने से कैसे बचाया जाय।

श्रम का निपुणता के साथ संघटन करने की दृष्टि से सर्वोत्तम और सब से योग्य श्रमिक वह है जो अपने काम को कुशलतापूर्वक, तेज़ी से और कम से कम समय तथा शक्ति व्यय कर के संपन्न करे।

लेकिन जब कि शारीरिक कार्यों की दशा में हम समुचित श्रम-संघटन के महत्व पर ज़ोर देते हैं, तो मानसिक कार्यों की दशा में इस स्वस्पष्ट विधि की अवहेलना करते हैं। यह ऐसा सत्य है जो विद्यार्थियों तथा उन लोगों के लिए अत्यावश्यक है जो स्वाध्याय के माध्यम से अपने ज्ञान की वृद्धि करने के लिए मजबूर हों।

अध्ययन के लिए सामग्री का चुनाव

मानव-ज्ञान की परिधि बहुत विशाल है। पिछली कई शताब्दियों में लोगों ने प्रकृति और समाज के संबंध में जो ज्ञान प्राप्त किया है उसे देख कर सहसा विश्वास नहीं होता। दुनिया में ऐसा एक भी व्यक्ति नहीं जो इस सारे ज्ञान को अकेले अपने में समेट ले। इस समस्त ज्ञान की प्राप्ति के लिए उसे दस ज़िन्दगियां बितानी होंगी और वे भी काफ़ी न होंगी। परन्तु मनुष्य के लिए हर चीज़ जानना आवश्यक भी तो नहीं। मानव-ज्ञान की समष्टि में से उसके लिए इतना ही काफ़ी है कि वह सब से ज़रूरी चीज़ें चुन ले अर्थात् ऐसा ज्ञानार्जन करे जो उसे मज़बूत बनाता हो, जो उसे प्रकृति और विकासों पर अधिकार देता हो, जो उसे प्रकृति की शक्तियों और संपदा का इस्तेमाल करना सिखाता हो और इस बात की शिक्षा देता हो कि मानव-समाज के जीवन को कैसे बदला जाय। इसलिए केवल ऐसे ही विषय चुनने चाहिए जो मनुष्य के लिए सब से अधिक महत्व के हों।

हम सामाजिक क्रान्ति के युग में रह रहे हैं, ऐसे युग में रह रहें हैं जब पूंजीवाद की पुरानी प्रणाली नष्ट हो रही है, मृत हो रही है और उसके स्थान पर एक नयी, कम्यूनिस्ट प्रणाली जन्म ले रही है। पूंजीवाद का आधार शोषण और दमन है। इसने एक ऐसे साम्राज्यवादी युद्ध की आग धधकाई है जिसने सारी दुनिया को हिला कर रख दिया है। इस युद्ध और उसकी विभीषिकाओं ने पूंजीवाद का झूठा आदर्शात्मक आवरण

उतार फेंका और सारी जनता को दिखा दिया कि पूंजीवाद की प्रणाली का आधार अन्याय है, अनौचित्य है। श्रमिक जनता के मस्तिष्क बराबर काम कर रहे हैं और सामाजिक जीवन के नये नये स्वरूपों की खोज में लगे हैं। रूस ने एक नये जीवन का निर्माण शुरू कर दिया है मगर इस मार्ग में अनेक बाधाएं हैं, अनेक कठिनाइयां हैं। स्वभावतया लोग सामयिक समस्याओं में रुचि ले रहे हैं और उन्हें समझना चाहते हैं, उनका अर्थ ग्रहण करना चाहते हैं।

इसमें कोई दो मत नहीं हो सकते कि सामयिक घटनाओं की जानकारी अनिवार्य है। जो लोग यह जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं उन्हें अखबार पढ़ना चाहिए। 'प्राव्दा' जैसे कुछ अखबार ऐसी नयी नयी बातें देते हैं जो पाठक के लिए आवश्यक होती हैं। इन्हें पढ़ कर वह बहुत कुछ समझता है। अखबार मस्तिष्क को एक विशेष दिशा में काम करने के लिए मज़बूर करता है, किसी विशेष बात की ओर उसका ध्यान आकृष्ट करता है और समस्या को हल करने का रास्ता बताता है। संक्षेप में अखबार एक प्रतिभाशाली और विद्वान भाषणकर्ता तथा व्याख्याता का कार्य करता है अर्थात् लोगों के दिमाग़ों को ठीक ठीक रास्ता दिखाता है और महत्वपूर्ण समस्याएं उनके सामने पेश कर देता है। लेकिन अखबार पढ़ने के साथ साथ यह भी जरूरी है कि किसी विशेष समस्या को हल करने के लिए तत्संबंधी आवश्यक साहित्य भी पढ़ा जाय। यदि मनुष्य पूंजीवादी प्रणाली की जटिल व्यवस्था को नहीं समझता तो वह इस प्रणाली के विभिन्न पहलुओं को भी समझने की आशा नहीं कर सकता। इसलिए यदि कोई व्यक्ति वर्तमान स्थिति को समझना चाहता है तो उसे चाहिए कि वह पूंजीवादी प्रणाली का, उसकी संरचना का और पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था तथा उसकी आदर्शवादिता का परस्पर संबंध समझे। इसके अतिरिक्त उसे पूंजीवादी समाज में जन्म लेने वाली और पनपने वाली

पूंजीवाद विरोधी शक्तियों का भी अच्छा ज्ञान होना चाहिए। सामयिक घटनाओं को समझने का यही आधार है।

एक अन्य और बहुत कुछ महत्वपूर्ण प्रश्न यह है—मानव समाज किस दिशा में बढ़ रहा है? यह एक मूलभूत और बड़ा ज़रूरी सवाल है। कम्यूनिस्टों का कहना है कि विकास सिद्धान्तों को देखते हुए पूंजीवादी समाज साम्यवाद की ओर बढ़ रहा है। मानव समाज किधर जा रहा है इसे समझने के लिए सामाजिक विकास के सिद्धान्तों का अध्ययन आवश्यक है। आदिकालीन संस्कृति में उन सिद्धान्तों का बहुत स्पष्ट और सरल प्रतिपादन हुआ है और इसी लिए उसका अध्ययन करना ज़रूरी है। लेकिन आदिकालीन संस्कृति का अध्ययन ही तो काफ़ी नहीं। मनुष्य को यह भी जानना होगा कि समाज का विकास कैसे हुआ, बाद के इतिहास में इन सिद्धान्तों ने समाज पर क्या प्रभाव डाला और पूंजीवादी समाज में वे किस प्रकार काम कर रहे हैं। इस सारे अध्ययन के बाद ही यह पता चलेगा कि समाज किस दिशा में बढ़ रहा है।

समाज से संबद्ध प्रश्नों के साथ साथ प्राकृतिक विकास संबंधी प्रश्न भी उठते हैं। मनुष्य मानवसमाज और प्राणिसंसार दोनों ही का एक सदस्य है और इसी लिए उसपर मनुष्य और सामाजिक जीवन ही अपना प्रभाव नहीं डालते अपितु प्रकृति और उसके कार्य भी उसे प्रभावित करते हैं।

फलतः हमें प्रकृति और उसके समस्त विविध रूपों तथा सजीव और निर्जीव प्रकृति के सिद्धान्तों का अध्ययन करना होगा। प्रकृति विज्ञान ने प्रकृति संबंधी अध्ययन के लिए एक निश्चित रास्ता दिखाया है— प्रकृति को भली भांति देखो-भालो, अपने निष्कर्ष निकालो और उन निष्कर्षों की परीक्षा करो। इस प्रकार मनुष्य ने इस विधि का उपयोग किया, धीरे धीरे प्रकृति के स्वरूपों और उसकी शक्तियों का अध्ययन किया, एतद्-संबंधी अनुभव प्राप्त किये, अपने अनुभवों को एक व्यवस्थित रूप दिया

और इन सब के परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में इतना आवश्यक ज्ञान प्राप्त किया कि वह प्रकृति की उन समस्त संपदाओं और शक्तियों का इस्तेमाल करने में समर्थ हो गया जो मानव-संसार के लिए उपयोगी हैं। मनुष्य ने प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र में जो ज्ञान प्राप्त किया है उसकी जानकारी बहुत ज़रूरी है, क्योंकि इससे स्पष्ट पता लगेगा कि मनुष्य प्रकृति पर धीरे धीरे कितनी विजय प्राप्त कर चुका है।

प्राकृतिक विज्ञान का एक दूसरा पहलू भी है जो ख़ास तौर से दिलचस्प है। हम विकास की दृष्टि से सामाजिक जीवन का अध्ययन करते हैं। यह भी एक तरीक़ा है प्राकृतिक विज्ञान का अध्ययन करने का। अगर मनुष्य को यह जानना है कि प्रकृति में उसका क्या स्थान है, उसे क्या करना है, अगर वह अपने को पृथ्वी का ही प्राणी समझना चाहता है, तो उसे पृथ्वी तथा मानव के जीवन का उद्भव और पृथ्वी पर बसने वाले प्राणियों और पौधों के विभिन्न वर्गों का अध्ययन करना होगा। निश्चय ही विज्ञान की अन्तिम सफलताओं से परिचय प्राप्त करना ज़रूरी है। लेकिन इतना ही काफ़ी नहीं। इसके अलावा मनुष्य को यह जानना भी ज़रूरी है कि ये सफलताएं कैसे मिलीं और किन किन उपकरणों तथा तथ्यों ने उनमें अपना योग दिया। ज़रूरत इस बात की है कि मनुष्य को सुनी-सुनाई बातों का नहीं अपितु अपने अनुभवों का सहारा लेना चाहिए। बहुत पुराने ज़माने में कभी लोगों ने पृथ्वी तथा उसपर रहने वाले प्राणियों तथा मनुष्य के उद्भव के संबंध में न जाने कितनी कपोलकल्पित गाथाएं गढ़ ली थीं। ये गाथाएं आज भी वैसी ही चली आ रही हैं, यद्यपि पर्यवेक्षणों, अनुसंधानों और तथ्यों ने उन्हें झूठा सिद्ध कर दिया है।

कुछ लोगों को यह कहने की धुन-सी पड़ गई है कि पुस्तक श्रम का एक उपकरण है, अपने सांसारिक दृष्टिकोण को व्यापक बनाने का साधन नहीं। इन लोगों का कहना है कि, "पुस्तक उत्पादन संबंधी कार्य

के लिए है, ज्ञानार्जन के लिए नहीं, और न 'सम्यक् सांसारिक दृष्टिकोण के विकास' के लिए ही, जैसा कि पहले कहा गया था। हमारा यही उद्देश्य होना चाहिए।" उनका कहना है कि "हमें चाहिए कि पुस्तक को हथौड़े और हंसिये की सेविका बनायें।"

ये शब्द अनर्गल हैं। "पुस्तक उत्पादन संबंधी कार्य के लिए है, ज्ञानार्जन के लिए नहीं" के क्या माने हैं? आख़िर ये शब्द किस अर्थ के द्योतक हैं? पुस्तक की उपयोगिता संक्षेप में यही है कि ज्ञान प्राप्त हो। इससे काम का उत्पादन अधिक होगा। और फिर यह कहा जाता है कि "पुस्तक उत्पादन संबंधी कार्य के लिए है ... न कि 'सम्यक् सांसारिक दृष्टिकोण के विकास के लिए' जैसा कि पहले कहा गया था।" फिर ग़लत। सांसारिक दृष्टिकोण क्या है? मूलभूत प्रश्नों के इस या उस हल से ही तो वातावरण और प्रकृति के प्रति हमारा रुख़ निश्चित होता है। क्या हम मूलभूत प्रश्नों को बिना हल किये हुए ही छोड़ सकते हैं? नहीं सकते। क्योंकि अगर छोड़ें तो हम जीवन के संबंध में कुछ न समझ सकेंगे, कोरे रह जायेंगे। यह 'सम्यक्' सांसारिक दृष्टिकोण क्या? यही तो वह सुविचारित बात है, जो सभी मूलभूत प्रश्नों के उत्तर देती है– ऐसे उत्तर जो एक दूसरे का खंडन नहीं करते बल्कि उनमें सामंजस्य स्थापित करते हैं। यदि आदमी सभी प्रभुत्व प्रश्नों पर स्वयं विचार करे और अपने से विरोध न करे, तो यह बात अच्छी होगी या बुरी? बेशक अच्छी, यदि उसने उन प्रश्नों को ठीक ठीक हल किया है।

ऐसा व्यक्ति जानता है कि उसे क्या करना चाहिए और क्यों। ऐसे व्यक्ति को हम "वर्ग-चेतन मनुष्य" कह सकते हैं। यह विश्वास करने का आधार है कि वर्ग-चेतन मनुष्य के कार्य अधिक उत्पादनशील होंगे बनिस्बत उस व्यक्ति के जो कुछ नहीं जानता। फलतः यह नहीं समझना चाहिए कि सम्यक् सांसारिक दृष्टिकोण अपनाना अवैध और अनाधुनिक है। कुछ भी हो कम्यूनिस्ट प्रयत्न करता है कि वह एक अच्छा

मार्क्सवादी बने। वह भौतिकवादी सांसारिक दृष्टिकोण का समर्थक है। उसे विश्वास है कि इससे उसे अधिक द्रुत गति से और अधिक क्षमता के साथ काम करने में मदद मिलेगी।

आवश्यक सामग्री का अध्ययन कैसे किया जाय

यदि कोई व्यक्ति स्वाध्याय आरम्भ करना चाहता है तो उसके लिए यह जानना बड़ा आवश्यक है कि क्या शुरू किया जाय और कैसे शुरू किया जाय। स्वभावतया ऐसे व्यक्ति को वे ही पुस्तकें उठानी चाहिए जिन्हें वह समझ सके, विषय और भाषा दोनों ही दृष्टि से। जो व्यक्ति साधारण गणित नहीं जानता वह उच्च गणित शास्त्र कैसे समझ सकता है; ठीक वैसे ही जैसे उस व्यक्ति को हेगेल समझ में नहीं आ सकता जो दर्शन शास्त्र में कोरा है। लेकिन फिर इतना ही काफ़ी नहीं है। यदि कोई व्यक्ति किसी ऐसे विषय की पुस्तक उठा लेता है जिसमें उसकी कोई रुचि नहीं, जिसका संबंध वह अपने ज्ञान-भांडार अथवा खुद जीवन से नहीं जोड़ सकता, तो ऐसी पुस्तक उसके लिए तनिक भी उपादेय न सिद्ध होगी। अगर पुस्तक का विषय परिचित है, अगर उसमें उसे अपने अभिलषित प्रश्नों का उत्तर मिल जाता है तो बात अलग है।

एक उदाहरण लीजिये। यह घटना कोई तीस वर्ष पहले स्वयं मेरे ही जीवन में घटी थी। यद्यपि मैंने पाठशाला की पढ़ाई समाप्त कर ली थी, फिर भी राजनीतिक अर्थशास्त्र नामक विषय का नाम तक न सुना था (उन दिनों यह कोई असाधारण बात नहीं समझी जाती थी)।

एक दिन मेरी एक सहेली ने मुझे इवान्युकोव की राजनीतिक अर्थशास्त्र पुस्तक ला दी और मुझसे अनुरोध किया कि मैं उसे पढ़ूं। विषय और भाषा दोनों ही दृष्टि से यह एक सर्वमान्य पुस्तक थी। मैंने उसे पढ़ना शुरू कर दिया और घोट गई। इसमें मेरा काफ़ी समय लगा। मैंने उसे समाप्त कर लिया लेकिन उससे मैंने पाया कुछ नहीं। कुछ

महीनों बाद जब मैं मंडल की बैठकों में भाग लेने जाने लगी तो मुझे अनुभव हुआ कि राजनीतिक अर्थशास्त्र का जानना ज़रूरी क्यों है। मैंने मार्क्स पढ़ना शुरू किया। उसमें मुझे मज़ा आया और 'पूंजी' का पहला भाग मैंने बड़ी जल्दी समाप्त कर दिया। इससे मैंने बहुत कुछ सीखा समझा था। मेरे लिए एक पतली और लोकप्रिय पुस्तक का समझना एक मोटी वैज्ञानिक पुस्तक से अधिक दुःसाध्य सिद्ध हुआ।

अपने विषय का विशेषज्ञ प्रतिभाशाली लेक्चरर या अध्यापक अच्छी तरह जानता है कि अपने विषय में दूसरों की रुचि कैसे पैदा की जाय, उनके विचारों को अपेक्षित दिशा में कैसे मोड़ा जाय, संबद्ध प्रश्न पर उनकी अभिरुचि किस प्रकार केन्द्रित की जाय। बेशक वह कभी कभी विषय की गहराई में नहीं उतरता लेकिन अगर श्रोताओं को सोच-विचार की ओर अग्रसर कर सका और उनकी उत्सुकता बढ़ा सका तो वह निश्चय ही अमूल्य समझा जायेगा। पुराने ज़माने में भाषा-विज्ञान के अध्यापक साहित्य का उपयोग इसलिए करते थे कि उनके शिष्य विषयों पर सोचना-समझना और प्रकाश डालना सीख सकें। भाषण-कर्ता यही काम सभाओं में कर सकता है। उत्सुकता और दिलचस्पी पैदा करने के लिए ज़रूरत है अपने साथियों से बातचीत करने की और अपनी समस्याओं पर मिल-जुल कर विचार विनिमय करने की। यही कारण है कि सामूहिक, वर्गीय या मंडलीय कार्य बड़ा मूल्यवान है। इससे मनुष्य को प्रेरणा मिलती है, सोचने-विचारने की शक्ति मिलती है।

दिलचस्पी के सवाल पर हम कुछ और विस्तार के साथ विचार करेंगे।

भिन्न भिन्न लोगों की दिलचस्पियां भी भिन्न भिन्न होती हैं। कुछ की दिलचस्पी सामाजिक कार्यों में होती है, कुछ की टेक्नोलाजी में और कुछ की कला में, आदि आदि। किसी को कुछ पढ़ने के लिए मजबूर करना और अपने मन की चीज़—ऐसी चीज़ जिसमें वह खो जाय—पढ़ना

ये दो अलग अलग चीजें हैं। दोनों में ज़मीन आसमान का फ़र्क़ है। इन दोनों प्रकार के अध्ययन से जो परिणाम उपलब्ध होते हैं वे एक दूसरे से बिल्कुल निराले होते हैं, एक पूरब एक पश्चिम। उदाहरणार्थ, हमारा अनुभव है कि जब बच्चे का दिमाग़ किसी एक चीज में व्यस्त रहता है तो दूसरी चीज़ समझ सकना उसके लिए टेढ़ी खीर बन जाता है। "विश्वास करो या न करो, विश्वास करो या न करो, पुश्किन को दूसरी बार मिला ज़ीरो ही।"

पुश्किन लीसीयम में पढ़ने में इतना फिसड्डी क्यों था? क्या इसलिए कि वह निकम्मा था, काहिल था। नहीं, बिल्कुल नहीं। फिसड्डी इसलिए था कि उसे जो कुछ सीखना चाहिए था वह उसे नहीं सिखाया गया था, फिसड्डी इसलिए था कि उसकी दिलचस्पी काव्य के क्षेत्र में थी। इन पंक्तियों ने कवि की मानसिक स्थिति का उल्लेख किया है जब वह अपनी रुचि के विषय से परे रहता है और फिर जब उसकी रुचि संबंधित विषय में पैदा हो जाती है:

... कभी घड़ी ऐसी आती है—
जगती की इस दौड़धूप की सुधबुध खो कर कवि की आत्मा
सो जाती है!
नींद कि क्या तोड़े से टूटे—
गीत कलपते हों तो कलपें, वीणा भले हाथ से छूटे!
कवि नगण्य से भी नगण्य समझा जाता है—
क्योंकि आत्म-ज्ञापन का कौतुक उसे नहीं बिल्कुल भाता है!
पर भावुक-मन, नाम 'अलौकिक' का सुनते ही चौंक-चिहुंककर,
निद्रा तज कर बड़ी कला से जग जाता है—
फिर तो श्रेष्ठजनों में भी वह श्रेष्ठ शिरोमणि कहलाता है! *

* पुश्किन रचित 'कवि' से। —सं०

पुश्किन ने अलंकारिक भाषा में 'अलौकिक' शब्द का प्रयोग किया है परन्तु वास्तव में उसका अर्थ है दिलचस्पी।

पुश्किन ने कवि के लिए जिस आध्यात्मिक मानसिक स्थिति का उल्लेख किया है उसका प्रयोग किसी भी ऐसे व्यक्ति के लिए हो सकता है जो किसी निश्चित विषय में स्पष्ट, गहरी और एकरस दिलचस्पी लेता हो। उदाहरणार्थ, किसी ऐसे चिकित्सक को ले लीजिये जो अपने पेशे के पीछे दीवाना हो। इस क्षेत्र के बाहर उसकी आत्मा प्रायः 'सुषुप्तावस्था' में मिलेगी—उसके इर्द-गिर्द क्या कुछ हो रहा है इसकी उसे कोई चिन्ता नहीं, कोई परवाह नहीं। लेकिन जैसे ही बात उसकी विशेषज्ञता पर आकर अटकेगी कि वह "चौंक-चिहुंककर, निद्रा तज कर बड़ी कला से जग जाता है।" यदि आप ध्यान से लोगों को देखें तो आपको लगेगा कि उनमें से अधिकांश ऐसे हैं जो किसी न किसी चीज़ में विशेष रुचि लेते हैं। कुछ लोगों की दिलचस्पी ठोस विषयों में होती है जैसे मानव समाज का पुनर्निर्माण, तो कुछ की आग बुझाने वाले कामों में और कुछ की अपने बच्चों में, आदि आदि। प्रायः इस दिलचस्पी का कारण है और वह यह कि उनपर किसी चीज़ का प्रभाव बड़ा गहरा पड़ा है, प्रायः बहुत काल से पड़ता रहा है। मैं एक विशेषज्ञ आग बुझाने वाले को जानती हूं। जब वह दस वर्ष का था तो उसने कहीं आग लगती हुई देखी। इसका उसपर बड़ा गहरा असर हुआ। जब घर लौटा तो बड़ा उत्तेजित था। ऐसा कोई भी न था जिससे उसने आग का ज़िक्र न किया हो। आग बुझाने वाले ने अपने काम में जिस साहस का परिचय दिया था उसका उसपर ख़ास असर पड़ा था। उसकी कल्पना भी जीवित हो उठी और उसने उस दृश्य का एक चित्र बना डाला जिसमें उसने अतिरंजित रंग भर दिये। फिर उसकी बड़ी-सी ज़िन्दगी उसके सामने आई—पाठशाला के लम्बे लम्बे, किन्तु नीरस वर्ष, एक साधारण कर्मचारी की ज़िन्दगी और वह पेशा जिसमें वह हार्दिक रुचि लेता था। उसने एक

छोटे-से नगर के फ़ायर-ब्रिगेड में स्वयंसेवक के रूप में काम किया था।

पुश्किन के ज़िन्दगी भर के कार्यों का आधार था उसकी पुरानी आया की काव्यात्मक अप्सरा-कथाएं जिन्होंने उसे बहुत अधिक प्रभावित किया था।

जब कभी हम अपनी विशेष रुचि के स्रोत का पता लगाते हैं तो हम उसे अपनी प्राचीनता में, कभी कभी तो अतीत के गर्भ में, पाते हैं, किसी ऐसे अनुभव के रूप में जिसका संबंध मनुष्य की भावनाओं से हो।

दिलचस्पी ही हमारा ध्यान किसी विषय पर केन्द्रित करती है। ध्यान देने की यह प्रक्रिया प्रेरित भी हो सकती है और अप्रेरित भी। पहली दशा में वह स्थायी नहीं रहता। हमें बार बार उसकी आवृत्ति करनी होती है। अप्रेरित ध्यान के लिए हमारी मनःशक्ति के प्रयासों की आवश्यकता नहीं। उसमें योंही पूर्णता और गहराई होती है। जो विद्यार्थी इतिहास में दिलचस्पी नहीं लेता उसे अध्यापक के स्पष्टीकरणों पर अपना ध्यान एकाग्र करना दुष्कर प्रतीत होता है। उसके विचार उड़े उड़े फिरते हैं, केन्द्रित नहीं हो पाते। वह अपने विषय पर एकाग्र नहीं हो पाता। फलतः वह बार बार अपना ध्यान अपने विषय की ओर आकृष्ट करता है और इसमें उसे काफ़ी प्रयास करने पड़ते हैं।

यदि दूसरी ओर विद्यार्थी की रुचि इतिहास में है तो वह बिना किसी प्रयास के अपने अध्यापक की बात समझ लेता है। जो व्यक्ति किसी एक ही विषय पर जितने ही अधिक काल तक अपना ध्यान केन्द्रित करेगा उसमें वह उतनी ही आसानी से पटुता भी प्राप्त कर लेगा। जिस व्यक्ति को पर्याप्त ज्ञान नहीं होता और जो विषय को आसानी से नहीं समझ सकता वह एक ही विषय पर अधिक समय तक एकाग्र नहीं रह सकता। इसी लिए उस विषय में उसकी दिलचस्पी अन्ततः समाप्त

हो जाती है। बुद्धि-कौशल इस बात में है कि मनुष्य, अपने अध्ययन और समस्याओं के प्रति मौलिक दृष्टिकोण अपनाते हुए, उसी विषय पर बार बार अपना ध्यान केन्द्रित करे।

जिन तथ्यों और विषयों पर मनुष्य को अपना ध्यान केन्द्रित करना पड़ता है वे उसे खूब याद रहते हैं। प्रसिद्ध वैज्ञानिक पस्तेर को माइक्रोबायोलाजी से संबद्ध न जाने कितने तथ्य और छोटे ब्यौरे याद थे। लेकिन उसे 'ऐंगेलस' प्रार्थना याद न रह सकी जिसे वह अपनी पत्नी के साथ रोज़ पढ़ता था। रुचि के विषय में प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक विलियम जेम्स लिखता है–

"बहुतों की स्मृति बड़ी तेज़ होती है लेकिन उन्हीं विषयों में जिनमें उनकी रुचि होती है। खेलकूद में भाग लेने वाला विद्यार्थी किताबों के मामले में तो कोरा रहेगा लेकिन भिन्न भिन्न खेलों में किसने कौनसा रिकार्ड तोड़ा आदि बातें उससे सुन कर आप आश्चर्यचकित हो जायेंगे। खेलकूद की सूचनाओं के बारे में उसे आप चलता-फिरता कोश ही समझिये। कारण स्पष्ट है। उसके दिमाग़ में ये बातें बार बार उठती हैं। वह उनकी तुलना करता है और माला के रूप में उन्हें सजाता है। यह उसके लिए ऊबड़-खाबड़ तथ्य नहीं अपितु धारणा-पद्धति है। इसी लिए ये बातें उसके दिमाग़ में जम जाती हैं। यही कारण है कि व्यापारी की ज़बान पर भाव और राजनीतिज्ञ की ज़बान पर दूसरे राजनीतिज्ञों के भाषण और वोट देने के परिणाम रहते हैं। इन्हें देख सुन कर दूसरों को आश्चर्य होता है। लेकिन इसका कारण स्पष्ट है। ये बातें उनके दिमाग़ में इतनी बार उठती हैं, वे इनपर इतना सोच-विचार करते हैं कि वे उनके दिमाग़ में जम जाती हैं।

"हो सकता है कि डारविन और स्पेन्सर जैसे लोगों ने, अपनी पुस्तकों में, तथ्यों को याद रखने के संबंध में जिस महा-स्मृति का परिचय दिया है वह उनके मस्तिष्क के सामान्य ग्रहण-शक्ति के

अननुरूप नहीं। यदि कोई व्यक्ति अपने जीवन के प्रारम्भिक काल से ही क्रम-विकास के सिद्धान्त को सत्यापित करने का काम हाथ में ले ले तो उससे संबंधित तथ्य शीघ्र ही उसके मस्तिष्क में ऐसे चिपक जायेंगे जैसे लताओं में अंगूर के गुच्छे।

"तथ्य सिद्धान्त-पक्ष के अनुसार ही आपस में सम्बद्ध रहेंगे, और मस्तिष्क जितना उनका फ़र्क़ समझ पायेगा, उतनी ही उसकी जानकारी बढ़ेगी। हो सकता है कि सिद्धान्त निरूपक की स्मृति कमज़ोर हो और इसलिए वह अव्यवहृत तथ्यों पर ध्यान न दे और सुनते ही उन्हें भूल जाय। किसी क्षेत्र में उसका अज्ञान उतना ही व्यापक और विराट हो सकता है जितना कि किसी विषय में उसका ज्ञान, उसका पांडित्य। लेकिन फिर दोनों ही साथ साथ रह सकते हैं और इस सारे मकड़ी के जाले के बीच लुक-छिप सकते हैं।" ('मनोविज्ञान के सिद्धान्त'—लेखक विलियम जेम्स।)

दिलचस्पी के कारण ध्यान आकृष्ट होता है और ध्यान देने से चीज़ दिमाग़ में बैठती है, याद रहती है।

ऊपर जो कुछ कहा गया है उससे पता चलेगा कि दिलचस्पी का एक विशेष स्थान है। यही कारण है कि जब सामग्री का चुनाव किया जाय तो इस बात का ध्यान रखा जाय कि वही सामग्री ली जाय जिसमें उसे रुचि हो, जो उसे सब से अच्छी लगती हो। इस दृष्टि से कुछ लोग सामाजिक क्रियाशीलता पसन्द करेंगे, कुछ टेक्नोलाजी, कुछ कला, आदि।

अध्ययन के आधार के रूप में ज्ञान के किसी विशिष्ट विषय को चुन लेने का मतलब यह नहीं है कि वह दूसरे विषयों पर ध्यान ही न दे। नहीं, ऐसा नहीं होना चाहिए। प्रश्न सिर्फ़ यही है कि दूसरे विषयों को वह उठाये कैसे।

उदाहरणार्थ, आपके दो विद्यार्थी हैं—एक की रुचि टेक्नोलाजी में है तो दूसरे की सामाजिक विज्ञान में। मान लो दोनों ही को बिजली

जैसे विषय का अध्ययन करना पड़ता है। तो दोनों ही इसका अध्ययन अपने अपने ढंग से करेंगे। टेक्नीशियन इसका अध्ययन इस दृष्टि से करेगा कि रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र में विद्युतकरण के लिए कौन कौनसी टेक्निकल सुविधाएं ज़रूरी हैं। उसका अध्ययन एक इसी दृष्टिकोण के इर्द-गिर्द रहेगा। लेकिन आवश्यक सुविधाओं की योजना तैयार करने में उसे सामाजिक दशाओं की ओर भी ध्यान देना होगा क्योंकि वे इन सुविधाओं के निर्माण में सहायक होंगी। अतएव वह यहां अपनी विशेष रुचि के कारण सामाजिक दशाओं का समुचित अध्ययन करेगा।

सामाजिक विज्ञान में रुचि रखने वाला इस समस्या को एक दूसरे ही दृष्टिकोण से देखेगा। बिजली सोवियत प्रणाली की भौतिक बुनियाद के रूप में अपरिहार्य है। लेकिन यह निश्चित करने के लिए कि रूसी सोवियत संघात्मक समाजवादी जनतन्त्र में विद्युत की व्यवस्था करना सम्भव है या नहीं उसे बिजली, बिजली की साधन-सामग्री आदि का परिचय प्राप्त करना होगा।

हमारे देश में विद्युतकरण पर एक बड़ी लोकप्रिय पुस्तक लिखी गई है, जो एक अच्छी पाठ्यपुस्तक का भी काम दे सकती है। पुस्तक के लेखक कोई विद्युत इंजीनियर नहीं वस्तुतः सामाजिक कार्यकर्ता हैं (इ० इ० स्तेपानोव)। इस उदाहरण से स्पष्ट पता चलता है कि रुचि केवल यही निर्धारित नहीं करती कि अर्जित ज्ञान कितना है अपितु यह भी कि उस ज्ञान तक पहुंचा कैसे जाय, उस ज्ञान तक, जिसके इर्द-गिर्द दूसरे सारे ज्ञान चक्कर लगाते हैं।

"हर नया विचार, हर नया ज्ञान उन विचारों और उस ज्ञान से संबद्ध, 'समाविष्ट' होना चाहिए," जैसा कि मनोवैज्ञानिक कहते हैं, "जो विद्यार्थी का अपना है। नये को चाहिए कि वह पुराने को साधे रहे।"

विलियम जेम्स का कथन है कि "नये को पुराने के साथ समाविष्ट कर सकनें, हमारी धारणाओं की सुपरिचित शृंखलाओं के प्रत्येक आकस्मिक

अतिक्रमक का मुक़ाबला कर सकने, और उसे रूप बदले हुए पुराने मित्र की तरह पहचान लेने से अधिक आनन्ददायक और कोई चीज़ नहीं। नये का इस प्रकार सफलतापूर्वक आत्मसात करना वस्तुतः बौद्धिक लालसा का ही एक स्वरूप है। आत्मसात के पूर्व, नये का पुराने के साथ संबंध विस्मयकारक है। हमें उन वस्तुओं के संबंध में न तो उत्सुकता ही होती है और न विस्मय ही जो हमसे इतनी दूर हों कि उन्हें समझने के लिए न तो कोई धारणाएं ही हों और न उनकी नाप-तौल के लिए कोई मानदंड ही।"

डार्विन का उदाहरण देते हुए जेम्स का कथन है कि जब फ़ीजियनों ने छोटी छोटी नावें देखीं तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ लेकिन बड़े जहाज़ देख कर उन्हें कोई आश्चर्य न हुआ।

किसी विषय में थोड़ी-सी जानकारी तद्विषयक उसकी ज्ञानपिपासा को उद्दीप्त करती है। जेम्स का कथन है कि "शिक्षण का एक बड़ा सिद्धान्त यह है कि हर नये ज्ञान को पहले से चली आती हुई उत्सुकता के साथ संबद्ध किया जाय अर्थात् उसका समावेश किसी ऐसे विषय में किया जाय जिसकी जानकारी पहले से ही हो। इसी लिए यह लाभप्रद समझा जाता है कि दूरस्थ और अपरिचित चीज़ों की तुलना निकटस्थ चीज़ों से की जाय, ज्ञात चीज़ों के उदाहरण से अज्ञात का स्पष्टीकरण हो और सारे शिक्षण को विद्यार्थी के निजी अनुभवों से संबद्ध किया जाय।

"यदि किसी अध्यापक को सूर्य से पृथ्वी तक की दूरी समझानी हो तो वह यह प्रश्न करे—'अगर सूरज पर से कोई व्यक्ति सीधे तुमपर तोप का गोला चलाये तो तुम क्या करोगे?' 'रास्ते से हट जाऊंगा,' जवाब होगा। 'इसकी कोई ज़रूरत नहीं,' अध्यापक समझायेगा, 'बस अपने कमरे में जाओ, सोते रहो और फिर उठो और तब तक इन्तज़ार करते रहो जब तक कि तुम अपनी नौकरी में स्थायी नहीं कर दिये जाते

यानी पहले कोई व्यवसाय सीखो और इतने बड़े हो जाओ जितना मैं हूं; तब कहीं तोप का वह गोला नज़दीक आयेगा और तुम्हें कूद कर एक तरफ़ हट जाना पड़ेगा। तो इतनी दूरी है सूरज से पृथ्वी तक की।'" ('मनोविज्ञान के सिद्धान्त', लेखक विलियम जेम्स।)

अध्ययन के लिए आवश्यक सामग्री चुनने में मनुष्य को चाहिए कि वह पहले से ही ज्ञात विषय के साथ नवार्जित ज्ञान का संबंध स्थापित करे और उसपर भरोसा रखे। प्रश्न यह नहीं कि विभिन्न विज्ञानों का ऊपरी ज्ञान प्राप्त किया जाय और आदमी चलता-फिरता कोश बन जाय। ज़रूरत इस बात की है कि मनुष्य के पास जो भी ज्ञान पहले से है उसी को धीरे धीरे संपूर्ण बनाया जाय और नवार्जित ज्ञान को पूर्वज्ञात विषयों से संबद्ध किया जाय। अतएव, प्रश्न आधारस्वरूप किसी विषय में दिलचस्पी लेने और उस ज्ञान में निरंतर वृद्धि करने का है।

ज्ञान प्राप्त करना ही महत्वपूर्ण नहीं, महत्वपूर्ण यह है कि उसे सम्यक् रूप से क्रमबद्ध किया जाय।

इस स्थिति में 'शिक्षा' शब्द का अर्थ है कि मनुष्य अपनी धारणाओं के केन्द्र के चारों ओर उन नयी नयी धारणाओं का जाल-सा बिने जो उस केन्द्र से संबद्ध हों, जुड़ी हों।

किसान और श्रमिक दोनों ही अपने अपने ढंग से ज्ञानार्जन करेंगे क्योंकि उनके जीवन के अनुभव और ज्ञान के क्षेत्र भिन्न भिन्न हैं।

जब भिन्न भिन्न पाठ्यक्रम और प्रौढ़ स्कूलों के विषयक्रम निर्धारित किये जाते हैं तो उपर्युक्त बातों पर प्रायः ध्यान नहीं दिया जाता और इस बात पर भी ध्यान नहीं दिया जाता कि विद्यार्थियों के स्तर भिन्न भिन्न होंगे। सवाल ज्ञान के परिमाण का नहीं, इस बात का है कि वह ज्ञान किस क्रम में और किस रूप में प्रस्तुत किया जाता है।

किसी विषय में निपुणता प्राप्त करने के लिए मुख्य आधार है पुस्तक। समसामयिक जीवन और समसामयिक संस्कृति में इसका बड़ा महत्वपूर्ण

स्थान है। "मानव संस्कृति पूर्वजों से उतरती है और उनके समस्त अनुभव, ज्ञान और आविष्कारों के संग्रह-रूप का प्रतिनिधित्व करती है। अगर ऐसा न होता और प्रत्येक पीढ़ी को सब कुछ आरम्भ से ही शुरू करना पड़ा होता तो मनुष्य अपनी आदिकालीन स्थिति में ही होता, उससे आगे न गया होता। पुस्तक की सहायता से अनुभव और ज्ञान का प्रसार होता है। पुस्तक ही ज्ञान को संग्रहीत और पीढ़ी दर पीढ़ी संक्रामित करती है। और हर पीढ़ी इस ज्ञान को समृद्ध बनाती है, इसका प्रसार करती है और मनुष्य उन्नति के मार्ग पर बढ़ता चला जाता है।" (आ० आ० पोक्रोव्स्की – 'पुस्तकालय के काम'।)

इसलिए यह सीखना अनिवार्य है कि पुस्तक का उपयोग कैसे किया जाय। यह भी आवश्यक है कि एकाग्रचित्त से, मन ही मन, अधिक और तेज़ पढ़ने की आदत डाली जाय।

लेकिन यही काफ़ी नहीं है। यह भी ज़रूरी है कि जो कुछ पढ़ा जाय उसे समझा भी जाय। यह एक कठिन कार्य है क्योंकि इसके लिए अपेक्षित है पांडित्य, व्यापक दृष्टिकोण तथा शब्दों और धारणाओं का एक अच्छा संग्रह।

मनुष्य जितना ही परिपक्व होगा उतना ही वह उन सारी बातों को समझेगा जिन्हें वह पढ़ता है। यह जानना भी बहुत ज़रूरी है कि वह क्या समझता है क्या नहीं, इसका भी फ़र्क़ समझ ले और जो स्थल उसे स्पष्ट नहीं हैं उनका विश्लेषण करे। इसके लिए एक सुगम रास्ता यह है कि ऐसे स्थलों को बार बार पढ़ा जाय; उनमें निहित विचारों, भावों और दुर्बोध्य शब्दों पर मनन किया जाय और विषय समझने के लिए राजनीतिक कोश, विश्वकोश, पाठ्यपुस्तकों और लोकप्रिय पुस्तकों आदि का प्रयोग किया जाय। जब शब्द का अर्थ स्पष्ट हो जाय तो उस सारे वाक्य को लिख लिया जाय और रट लिया जाय जिसमें वह शब्द आता है। फिर उस शब्द का प्रयोग करते हुए वैसे ही कुछ वाक्य सोचे जायं। मतलब

यह कि मनुष्य को चाहिए कि वह इस क्षेत्र में बच्चों की नक़ल करे। मुझे एक छः वर्षीय बालिका की याद है जिसने जीवन में 'तत्काल' शब्द पहले-पहल सुना था। अगले आधे घंटे में उसने भिन्न भिन्न प्रसंगों में यह शब्द दस-बारह बार दोहराया। बेशक, उसकी यह क्रिया अचेतन रूप से हो रही थी। किसी प्रौढ़ अथवा युवक को, ज़रूरत पड़ने पर, नये नये शब्दों का स्वतः इस्तेमाल करने के लिए यही प्रणाली अपनानी चाहिए। मुख्य बात यह है कि शब्द के सम्यक् अर्थ तथा उसके भावों और मतलब इत्यादि के सूक्ष्म अंतर को समझा जाय और इस बात के प्रति सावधानी बरती जाय कि कहीं इसका ग़लत इस्तेमाल न हो जाय।

अपरिचित शब्दों और व्यंजनाओं के अर्थ को समझने आदि का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि पाठक का ध्यान पुस्तक के मूल विचार से दूर जा गिरता है। इस कठिनाई को दूर करने के लिए यह ज़रूरी है कि शीघ्र से शीघ्र साहित्यिक भाषा में निपुणता प्राप्त की जाय और उसे, स्वतः, इस्तेमाल करने का ढंग सीखा जाय।

क्या क्या पढ़ा जा चुका है इसपर मनन करना भी आवश्यक है और इसके लिए एक निश्चित प्रणाली अपनाई जानी चाहिए।

सर्वप्रथम, पुस्तक समाप्त कर चुकने के बाद, लेखक का तात्पर्य, उसका प्रधान विचार और उन तर्कों को समझना चाहिए जिन्हें वह अपने विचारों की पुष्टि में प्रस्तुत करता है (आरम्भ में हर अध्याय के साथ साथ ही ऐसा करना ठीक रहेगा।)। लेखक के विचार किस दिशा में काम करते रहे हैं इसे समझना बड़ा ज़रूरी है। किताबों को सचेत पढ़ते रहने की पहली शर्त है उन्हें ठीक ठीक समझना।

लेखक क्या कहना चाहता है इसे समझना कभी कभी कठिन होता है। इसलिए प्रायः पुस्तक को दुबारा और तिबारा तक पढ़ना ज़रूरी हो जाता है। क्या पढ़ा गया है उसका विश्लेषण करते समय यह ज़रूरी नहीं

कि पाठक हर शब्द या छोटी छोटी बात याद रखे। इससे नुक़सान ज्यादा होगा फ़ायदा कम। चाहिए तो यह कि ज़रूरी और मुख्य बातें चुन ली जायं और यह देखा जाय कि उनकी पुष्टि में शेष सामग्री ने कितना योग दिया है। कभी कभी अपने मुख्य विचारों को स्पष्ट करने की दृष्टि से लेखक कुछ तथ्य देता है या अपने समर्थन में तर्क उपस्थित करता है। सबसे अच्छा तो यह होगा कि पुस्तक समाप्त कर लेने के बाद लिखित रूप में उसकी रूपरेखा तैयार की जाय। लेकिन इस सब के लिए काफ़ी अभ्यास की ज़रूरत है।

फिर पाठक को चाहिए कि वह पुस्तक के विषय को पचाये। यदि मुख्य विचार का समर्थन तथ्यों द्वारा किया गया है तो यह देखना ज़रूरी है कि (१) ये तथ्य ठीक ठीक प्रस्तुत किये गये हैं या नहीं, (२) वे तर्कसंगत हैं या नहीं। पाठक को चाहिए कि वह समान तथ्यों पर अथवा ऐसे तथ्यों पर मनन करे जो प्रस्तुत किये गये तथ्यों के बिल्कुल विपरीत हों। जब लेखक अपने विचारों के समर्थन में कोई तर्क रखता है तो पाठक को उसी जैसा कोई दूसरा तर्क रखना चाहिए, फिर दोनों की तुलना करके यह निश्चय करना चाहिए कि दोनों में से कौन अधिक अच्छा है। पाठक को इस बात पर भी विचार करना चाहिए कि इस सवाल का कोई दूसरा पहलू भी है या नहीं। यह सब कर चुकने के पश्चात् पाठक को यह निश्चय करना चाहिए कि वह लेखक से सहमत है या नहीं और अगर नहीं सहमत है तो किन किन बातों में।

पुस्तक पढ़ते समय पाठक को सभी अपेक्षित चीज़ें लिख लेनी और याद कर लेनी चाहिए—तारीखें, नाम और आंकड़े। कभी कभी तो इन आंकड़ों के आधार पर एक रूपरेखा बना ली जानी चाहिए ताकि जो कुछ उसने पढ़ा है उसका स्पष्ट चित्र उसके सामने आ जाये। पाठक को जो विचार और भावाभिव्यक्तियां पसन्द आयें उन्हें अलग लिख लेना बड़ा ज़रूरी है। लेकिन लम्बे लम्बे उद्धरण न उतारे जायं क्योंकि उन्हें समझना

पुस्तक समझने की तरह ही कठिन है। केवल सब से आवश्यक चीज़ें लिखनी चाहिए, प्रबन्धों के रूप में और एक दूसरे से अलग अलग। लिखावट साफ़ हो, पठनीय हो।

मोटी मोटी कापियां, जिनमें वह ऐसे लम्बे लम्बे उद्धरण उतारता है, जिन्हें देख कर खुद उसे ही उनके सिर पैर का पता न चला सके, कोई ख़ास उपयोगी नहीं होतीं। इसके विपरीत जिन कापियों में संक्षिप्त, सारवान् और स्पष्ट लिखित उद्धरण होते हैं, वे निश्चय ही बड़ी उपयोगी होती हैं, क्योंकि इन्हें देख कर उसे तुरन्त याद आ जाती है कि उसने क्या क्या पढ़ा है और फिर उसके दिमाग़ में तुरन्त ही सारे आंकड़े और अन्य सामग्री घूम जाती है। यह तरीक़ा है उद्धरण लिखने का। शुरू में मनुष्य को बिना अपना समय बचाये हुए इसका अभ्यास करना चाहिए। एतदर्थ आरम्भ में उसे छोटे छोटे लेख उठाने चाहिए और इस प्रकार मेहनत बचाने वाले ढंग से यह काम करने की आदत डालनी चाहिए।

बेशक, कुछ दशाओं में लम्बे लम्बे उद्धरण लिखना उपयोगी है। यदि पुस्तक विशेष रूप से रोचक और महत्वपूर्ण है तो पाठक को लम्बे लम्बे संक्षेप लिखने और बड़े बड़े उद्धरण उतारने में संकोच नहीं करना चाहिए और इसपर जो समय लगा है उसकी शिकायत नहीं करनी चाहिए। ऐसा तब करना चाहिए जब, उदाहरणार्थ, पाठक किसी रिपोर्ट या लेख में पुस्तक का हवाला देना चाहता हो।

ऐसे पाठक के लिए, जिसने लेखन कला या साहित्यिक भाषा की कला में पटुता नहीं प्राप्त की है, लम्बे लम्बे उद्धरण उतारना उपयोगी सिद्ध होगा। ऐसी दशा में नक़ल करना अधिक श्रेयस्कर है। अच्छा तो यह होगा कि पाठक ने जो कुछ पढ़ा है वह उससे संबद्ध रुचिकर चीज़ों की ही नक़ल करे। दूसरी चीज़ों की नक़ल करने से इस प्रकार की नक़ल अधिक उपयोगी है।

किन्तु नियमतः, संक्षिप्त, सारवान् और छोटे छोटे उद्धरण उतारना बेहतर है।

और इसलिए, पहला काम यह है कि पाठक जो कुछ पढ़ रहा है उसे ठीक से समझे और उसमें पटुता प्राप्त करे।

दूसरा यह कि जो कुछ पढ़ा गया है उसपर मनन किया जाय।

तीसरा यह कि आवश्यक उद्धरणों को उतार लिया जाय।

और अन्त में, यह निश्चय किया जाय कि किताब से कोई नया ज्ञान प्राप्त हुआ है या नहीं, वह ज्ञान आवश्यक और उपयोगी है या नहीं, इससे पाठक को पर्यवेक्षण की अथवा काम करने के नये नये तरीक़ों की जानकारी हुई है या नहीं, इससे उसमें किन्हीं विशेष मानसिक स्थितियों और आकांक्षाओं का विकास हुआ है या नहीं।

इस प्रकार हम पुस्तक पढ़ने के संबंध में एक योजना बना सकते हैं।

बेशक, इस योजना में रद्दोबदल हो सकते हैं और भिन्न प्रकार से प्रश्न बनाये जा सकते हैं। उदाहरणार्थ, गणित अथवा प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन में संभवतः इस योजना का आंशिक रूप से उपयोग किया जा सकता है। ज़रूरत एक निश्चित योजना बनाने की है क्योंकि तभी हमारा काम अधिक फलदायक सिद्ध हो सकेगा। किसी भी काम में निश्चित प्रणाली का विशेष महत्व होता है। इसके परिणामस्वरूप पाठक प्रायः वे चीज़ें देखता है जिन्हें दूसरे नहीं देख पाते। उदाहरणार्थ, हम जानते हैं कि जब नैपोलियन अपनी सेनाओं की देखभाल करता था तब उसकी निगाह सैनिकों की वर्दियों के छोटे से छोटे उन भद्देपनों पर भी पहुंच जाती थी जो अफ़सरों को सर खपाने के बाद भी नहीं दिखाई पड़ते थे। उत्तर बहुत आसान है, सेनाओं की देखभाल की प्रणाली नैपोलियन की अपनी थी, निश्चित थी। उसकी निगाह त्रुटियों पर ही पड़ती थी।

आइये हम एक ही विषय पर भिन्न भिन्न विशेषज्ञों की प्रतिक्रिया का अध्ययन करें। उदाहरणार्थ, कलाकार जब किसी पौधे को देखता है तो

उसके सामने उसका रंग, उसकी चमक-दमक और उसका रूप-सौष्ठव होता है। वह बिल्कुल भूल जाता है कि फूल में कितना पराग है, कितनी पंखुड़ियां हैं और वे किस प्रकार बंटी हुई हैं। यह बात उसकी पर्यवेक्षण प्रणाली का अंग नहीं है। इसके विपरीत वनस्पतिशास्त्री पहले उसकी पत्तियां देखेगा, फूलों की पंखुड़ियां आदि देखेगा और इस बात पर बिल्कुल ध्यान न देगा कि फूल में कितनी चमक है और वह इस या उस पृष्ठभूमि में कैसा लगता है। यही बात पढ़ने के संबंध में है। सबसे जरूरी चीज़ है कि विषय को कैसे उठाया जाय। इससे पाठक को इस अन्तर का भी पता चलता है कि अगर उसने पुस्तक किसी दूसरे ही दृष्टिकोण से उठाई होती तो कौनसी चीज़ उससे चूक जाती। धीरे धीरे उसे विशेष ढंग मे किताब पढ़ने की आदत पड़ जाती है।

पुस्तकों से हमें ज्ञान की प्राप्ति होती है और दूसरों के अनुभवों का परिचय मिलता है लेकिन हम इसी ज्ञान का और अधिक रसास्वादन कर सकते हैं जब हम स्वयं अपने अनुभवों से उसे परखें। यह पढ़ना कि "तूफ़ान के समय समुद्र कितना शानदार, कितना विराट लगता है," एक बात है और अपनी आंखों से यही दृश्य देखना दूसरी। इसी प्रकार हम यह भी पढ़ते हैं कि मशीनों से उत्पादन में लगने वाले समय की बचत होती है, लेकिन इसकी सच्चाई वे ही समझ सकते हैं जिन्होंने सामानों को पहले अपने हाथों से तैयार किया हो और फिर मशीनों से। आंख या कान जैसे किसी अंग की शल्य-चिकित्सा के बारे में पढ़ना बिल्कुल वैसा ही नहीं है जैसा कि अपने हाथों से शल्य-कर्म करना।

यही कारण है कि अनुभवी मनुष्य, जिसने लोगों को और उनके रीति-रिवाजों को देखा है, उस व्यक्ति की अपेक्षा प्रायः अधिक जानता है जिसने उनके बारे में पढ़ा भर है, काफ़ी नज़दीक से उन्हें देखा नहीं। इसलिए हम 'अनुभवी' डाक्टरों, 'अनुभवी' अध्यापकों आदि की इज़्ज़त करते हैं और इसमें कोई तत्व होता है।

मध्य युग में बड़े बड़े दिलचस्प और शिक्षात्मक रीति-रिवाज थे। शिशिक्षु पाठ्यक्रम समाप्त करते ही कारीगर नहीं बन जाता। पहले उसे एक निश्चित समय तक के लिए यात्रा करनी पड़ती है, दूसरे नगरों में भ्रमण करना पड़ता है, भिन्न भिन्न कारीगरों के अधीन काम करना होता है और यह देखना होता है कि उसके सहयोगी कैसे रहते थे और दूसरी जगहों में कैसे काम करते थे।

यही कारण है कि जो व्यक्ति स्वशिक्षा में लगा हुआ है उसके लिए पुस्तकों से प्राप्त ज्ञान को अपने निजी पर्यवेक्षणों और अनुभवों की कसौटी पर परखना बहुत ज़रूरी है।

इस संबंध में विशेष रूप से आवश्यक बातें हैं कृषि संग्रहालयों, नुमाइशों, आदर्श खेतों तथा फ़ैक्ट्रियों में जा कर बहुत कुछ खुद अपनी आंखों से देखना। हमें सैर-सपाटों से भी काफ़ी फ़ायदा उठाना चाहिए। हां, देखना सिर्फ़ यही है कि वे एक व्यापारिक ढंग से आयोजित किये जायं और महज़ मनोरंजक यात्राएं बन कर ही न रह जायं। जो कुछ हम देखें लिख लें, योजनाएं बनायें (अगर हमें योजनाएं बनानी आती हों), अपने ऊपर पड़ने वाले प्रभावों को अंकित करें। हमें यात्राएं करने, नये नये स्थानों और लोगों को देखने-भालने और उनके रहन-सहन तथा काम आदि करने के ढंग को देखने-समझने के हर अवसर का सदुपयोग करना चाहिए। साधारण से साधारण जीवन तक भी पर्यवेक्षण और अध्ययन के लिए काफ़ी सामग्री प्रस्तुत कर सकता है। बस ज़रूरत इस बात की है कि हम जो कुछ देखना चाहते हैं उसकी एक योजना पहले से तैयार करें और फिर उसके अनुसार चल कर अपेक्षित निष्कर्ष खुद निकालें।

यदि यह कार्य सामूहिक रूप से किया जाय तो अधिक सजीव भी होगा और अधिक लाभप्रद भी। इससे लाभ यह होगा कि इस प्रकार के कामों में भाग लेने वाले व्यक्ति अपने अपने पर्यवेक्षणों पर विचार-विनिमय कर सकेंगे और चूंकि हर व्यक्ति चीज़ों को खुद अपने ढंग से देखता है,

दूसरे से भिन्न दृष्टिकोण से, अतएव इस विचार-विनिमय से जो परिणाम निकलेगा उससे विषय का पूरा पूरा अध्ययन किया जा सकेगा, ख़ासकर इस कारण कि जब एक ही चीज़ को बहुत से लोग देखते हैं तो वे उन बातों को भी देख लेते हैं जिन्हें एक पर्यवेक्षक चूक सकता है।

समय और शक्ति की बचत करो

अमरीकी लोग व्यवहारिक व्यक्ति हैं। वे हमेशा कहा करते हैं "समय ही धन है।" उनके पास हाई स्कूलों और कालेजों में अध्ययन के संघटन के संबंध में बहुत बड़ा साहित्य है—दुर्भाग्यवश हम रूसी इस प्रकार के साहित्य से प्रायः अपरिचित हैं—जिसमें वे युवक अमरीकियों को यह दिखाते हैं कि शक्ति को कैसे बचाना चाहिए और सफलता के लक्ष्य तक पहुंचने का आसान रास्ता क्या है। अमरीकियों को यह सब ख़ूब सिखाया जाता है और हमें भी वही बात सीखनी चाहिए।

सम्प्रति, शक्ति और समय बरबाद करने का हमें कोई अधिकार नहीं।

हम दो प्रकार की सामाजिक पद्धतियों के बीच रह रहे हैं: पुरानी पूंजीवादी पद्धति अन्तिम सांसें ले रही है और नयी कम्यूनिस्ट पद्धति पनप रही है। इन दिनों हम अपने बाप-दादाओं की तरह नहीं रह सकते। हर दिन कोई नयी चीज़ लाता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम उसे ख़ुद अपनी आंखों से देखें, उसे परखें और फिर उसके संबंध में अपने निश्चय करें। लेकिन यह सब ठीक ठीक कर सकने के लिए हमें बहुत कुछ जानना-समझना होगा।

यही बात सामान्यतया श्रमिक वर्ग पर और विशेषतया हर श्रमिक पर लागू होती है। अब काहिली के साथ, आराम के साथ काम करने का वक़्त नहीं। हमें चाहिए कि हम यथासम्भव अधिक से अधिक पढ़ें, लिखें, अध्ययन करें।

रूस कभी एक अपेक्षाकृत पिछड़ा हुआ देश था। भाग्य से हमें ही सब से पहले सामाजिक क्रान्ति का झंडा ऊंचा करने का मौक़ा मिला। हमने उसे इन पांच सालों तक ऊंचा रखा है। यदि रूस को विश्वक्रान्ति के गढ़ के रूप में बने रहना है तो यह ज़रूरी है कि वह अपने भौतिक आधारों को मज़बूत करे। ऐसा करने के लिए यहां के निवासियों को कमर कस कर अध्ययन करना होगा और तदर्थ समय और शक्ति की सबसे अधिक बचत करनी होगी।

युवक श्रमिकों और किसानों से जीवन की मांग है कि वे यह बचत करें। श्रमिक और किसान अपना अधिकांश समय मेहनत में लगाते हैं। वे अपने ख़ाली समय में ही स्वाध्ययन कर सकते हैं और ख़ाली समय उनके पास बहुत कम रहता है।

और इसलिए उस ऐतिहासिक युग की, जिसमें हम रह रहे हैं, रूस की विशेष स्थिति की और विद्यार्थियों के एक बड़े भाग की रहन-सहन की दशाओं की यह मांग है कि हम अपने समय और शक्ति में अधिक से अधिक बचत करें। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित बातें अपरिहार्य हैं:

(क) अपने समय को ठीक ठीक ढंग से विनियमित करना;

(ख) अधिक से अधिक अनुकूल कार्य दशाओं का सृजन करना;

(ग) पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए अपेक्षित आदतें डालना;

(घ) अध्ययन के लिए सम्यक् सामग्री चुनना;

(ङ) काम का विधिवत् वितरण करना;

(च) समय और शक्ति की बचत करने की दृष्टि से सामूहिक कार्यों के स्वरूपों को निश्चित करना;

(छ) आवश्यक साधन और सहायक सामग्री का प्रबन्ध करना;

क. पहले-पहल हम **समय को विनियमित करने के संबंध में कुछ कहेंगे।**

यह स्पष्ट है कि यदि हमें अपने समय का लाभप्रद रीति से उपयोग करना है तो हमारे लिए यह जानना ज़रूरी है कि हम उसे ठीक ठीक किस प्रकार विनियमित करें। सामान्यतया हम अपने समय का इस्तेमाल करते कैसे हैं?

हम नियमित घंटों में काम करते हैं सिर्फ़ फ़ैक्ट्रियों में या फिर दफ़्तरों में। बाक़ी समय हम किसी न किसी प्रकार गुज़ार देते हैं,— दोस्तों से गप्पें लड़ाते हैं, बिस्तरे में पड़े पड़े वाहियात उपन्यास पढ़ते हैं, आदि आदि। और रात को पता चलता है कि हमने अपना कितना समय बरबाद कर डाला। और तब हम कोई उपयोगी पुस्तक उठाते हैं लेकिन तभी हमें लगता है कि हम पूरी तरह थक चुके हैं और किसी काम के नहीं रहे। जगने के लिए हम धुआंधार सिगरटें पीते हैं, किताब एक तरफ़ रख देते हैं और किसी न किसी दोस्त के साथ सुबह तक गप लड़ाते हैं या फिर बहस में पड़ जाते हैं। और सुबह जब उठते हैं तो आंखों में ख़ुमारी होती है और शरीर में भारीपन।

विदेशी समय का मूल्य समझते हैं। वैज्ञानिक, लेखक तथा प्रोफ़ेसर जल्दी सोते और जल्दी उठते हैं, और सुबह को जब ताज़े होते हैं तब काम करते हैं, दूसरों के घर गप लड़ाने यथासम्भव कम से कम जाते हैं। वे समय को बड़ी कठोरता के साथ बांधते हैं। नियम से उठते हैं, काम करते हैं, भोजन करते हैं, आराम करते हैं और निश्चित समय तक सोते रहते हैं। इस व्यवस्था से उनकी कार्यक्षमता काफ़ी बढ़ जाती है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिकों और लेखकों ने अपने समय को कैसे विनियमित किया था इस बात की जानकारी सचमुच बड़ी दिलचस्प सिद्ध होगी।

उदाहरणार्थ, हम लेव तोलस्तोय को ले सकते हैं। उन्होंने उपन्यास लिखे, कहानियां लिखीं यानी ऐसी ऐसी रचनाएं की जो पूर्णतः मनुष्य की मानसिक, स्थिति पर निर्भर होती हैं। लेकिन फिर भी उनका जीवन बड़ा नियमित था। प्रातःकाल वह सख़्त मेहनत करते। कोई चीज़ एक

बार लिखते, फिर उसी को दुबारा लिखते, फिर तिवारा। लेखक साधु-सन्यासियों की तरह नहीं रह सकता। उसे तो लोगों के पास उठना बैठना चाहिए, उनके जीवन का निकट से अध्ययन करना चाहिए। तोलस्तोय ने इस प्रयोजन के लिए भी समय निर्धारित कर रखा था, पढ़ने के लिए भी, और दूसरी चीज़ों के लिए भी।

सेर्गेयेन्को ने 'तोलस्तोय कैसे रहते और काम करते हैं' शीर्षक अपनी पुस्तक में तोलस्तोय के जीवन के इसी पक्ष का सुन्दर चित्रण किया है।

एमिल ज़ोला ने भी उपर्युक्त पद्धति ही अपनाई थी। इस लेखक ने अनेकानेक उपन्यास लिखे जिनमें उसने पूंजीवादी समाज के विभिन्न वर्गों का चित्रण किया है। ज़ोला प्रातःकाल छः बजे उठता और तोलस्तोय की ही भांति प्रातःकाल लिखता तथा अपना बाक़ी समय उस सामाजिक संरचना का अध्ययन करने में व्यतीत करता जिसके बारे में वह लिखता था।

बड़े बड़े संगीतज्ञों, उदाहरणार्थ, बीथोवन की जीवनकथा ले लीजिये और आपको पता चलेगा कि इस संगीतज्ञ का अधिकांश समय पियानो-वादन में व्यतीत होता था। उसने अपने समय को बड़ी कठोरता के साथ बांट रखा था।

प्रकृतिवादी, डाक्टर, और वैज्ञानिक अपने समय के साथ दूसरों से कहीं अधिक सख़्त हैं। ये लोग अपनी अपनी प्रयोगशालाओं में यंत्रों और माइक्रास्कोप के साथ काम करते हैं या शरीरशास्त्रीय अनुसन्धानों में लगे रहते हैं। इस दृष्टि से एडिसन, पस्तेर तथा अन्य विद्वानों के बारे में जानकारी प्राप्त करना भी आवश्यक है।

प्रसिद्ध शल्य-चिकित्सक कोचर ने भी दिन-प्रति-दिन का एक निश्चित कार्यक्रम बना रखा था। इस कार्यक्रम के अनुसार वह उस समय भी काम करता रहा जब वह बूढ़ा हो चुका था। वह हमेशा निश्चित समय पर सोने जाता और शल्य-कर्म आदि के लिए अपने हाथों को मज़बूत बनाने के निमित्त टेनिस खेलता था।

एसे ही दूसरे उदाहरण भी हैं। मतलब यह कि जो सफलता प्राप्त करना चाहे उसे बड़ी होशियारी के साथ अपने समय को बचाना और व्यवस्थित करना होगा।

ख. बिना समय और शक्ति का अपव्यय किये हुए सम्यक् रूप से काम करने के लिए जिस दूसरी चीज़ की ज़रूरत है वह है **अधिक से अधिक अनुकूल कार्य-दशाओं का सृजन करना।**

ताज़ा और स्वस्थ रहना सब से ज़रूरी है। थकने के बाद आदमी जो काम करता है वह एक तो अधिक अच्छा नहीं होता और दूसरे धीरे धीरे होता है। बेशक, काम के लिए सब से उपयुक्त समय है प्रातःकाल। इस समय साधारण मनुष्य सर्वोत्तम ढंग से काम कर सकता है। स्वाभाविक है कि अगर आप प्रातःकाल ही अपने काम पर चल देते हैं तो आपके लिए अध्ययनार्थ सुबह का वक़्त निकालना मुश्किल होगा, लेकिन अगर आप १०, ११ बजे काम पर जाते हैं तो सुबह के घंटों का ज़रूर उपयोग कर लेना चाहिए। बहुत देर से सोना सारी ख़राबियों की जड़ है। यह आदत दूर करनी चाहिए। सायंकालीन अध्ययन थका डालता है। जागने के लिए मनुष्य को तेज़ चाय पीनी पड़ती है, सिगरेटों के कश लगाने पड़ते हैं या फिर तर्क-वितर्क में उलझना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि मनुष्य जल्दी ही थक जाता है और उसकी कार्य-क्षमता गिरती जाती है।

दूसरी शर्त है ताज़ी हवा। दिमाग़ तभी ठीक से और मेहनत के साथ काम करेगा जब दिल ठीक ठीक काम करे और दिल के लिए ज़रूरी है ताज़ी हवा। कमरा बहुत गर्म न हो। उसमें घुटन न हो। काम करने के पहले खिड़की खोल देना ज़रूरी है ताकि ताज़ी हवा कमरे में भर जाय। जिस कमरे में सिगरेटों का धुआं या कोयले की गैस होगी वहां काम करना बहुत कठिन है।

एक अन्य उपयोगी बात है—काम के समय ऐसी कोई चीज़ न हो जिससे मनुष्य का ध्यान बंटता हो। जब शोरगुल हो रहा हो, जब

आपके आस-पास लोग बातचीत में उलझे हों और जब आपसे बराबर छोटे-मोटे प्रश्न किये जा रहे हों तो आप नहीं पढ़ सकते। दूसरों की शान्ति में बाधा न पड़े, शोरगुल न किया जाय, जब कोई पढ़ रहा हो तो सीटी न बजाई जाय या बातचीत न की जाय। ये सारी बातें सीखनी चाहिए। पुस्तकालय या क्लब में अध्ययन करने का अभ्यस्त होना चाहिए। पुस्तकालयों में पाठक का ध्यान बंटाने के लिए ऐसी कोई बात नहीं होती। इसके अतिरिक्त पुस्तकालयों में आपको विश्वकोश, संदर्भ-ग्रंथ, नक़्शे, पाठ्यपुस्तकें और गम्भीर अध्ययन के लिए ज़रूरी दूसरी सारी चीज़ें मिल सकती हैं।

यह ठीक है कि कभी कभी लोग शोरगुल के बीच भी पढ़ सकते हैं लेकिन तभी जब वे पढ़ाई में इतने मशग़ूल होते हैं कि उन्हें दीनो-दुनिया की सुध-बुध नहीं रहती। यूनानी ज्यामितिशास्त्री आर्कमिडीज़ अपने सामने रखी हुई रूपरेखाओं में इतना खोया हुआ था कि जब दुश्मन का एक सिपाही उसके घर में घुस आया तो उसकी ज़बान से सिर्फ़ यही निकला था: "मेरे वृत्तों को मत छुओ।" लेकिन हर शख़्स तो अपने अध्ययन में इतना खो नहीं सकता कि उसे दीनो-दुनिया की ख़बर न रहे और वह अपने इर्द-गिर्द होने वाली बातों पर ध्यान न दे। इसी लिए यह ज़रूरी है कि उसकी पढ़ाई-लिखाई में ख़लल न पहुंचाया जाय। यहां यह उल्लेखनीय है कि अगर विद्यार्थी सफलता प्राप्त करना चाहता है तो दूसरी बातें उसे बाधा न पहुंचायें नहीं तो वह येवगेनी ओनेगिन की भांति हो जायेगा जिसके बारे में पुश्किन ने लिखा है–

"पढ़ रहा था आंख से वह
दूर थे उसके विचार..."

यही कारण है कि अध्ययन के लिए सर्वोत्तम समय है प्रातःकाल। उस समय पिछले दिन की सारी छापें प्रायः मिट चुकती हैं और शान्ति

भंग करने के लिए नयी छापों का अभाव रहता है। अगर वह शान्ति उपलब्ध न हो और पढ़ने में मन न लगे तो फिर ज़रूरी है कि मूड बनाने के लिए काम किया जाय। ऐसे में कमरे में तेज़ी के साथ टहलिये, चहल-क़दमी कीजिये, कोई सुन्दर-सी धुन गुनगुनाइये, अपने किसी चहेते लेखक के दो-एक पृष्ठ पढ़ डालिये या फिर ऐसा ही कोई दूसरा काम कीजिये।

ग. सफलता प्राप्त करने की दृष्टि से आवश्यक है **पुस्तकों का अध्ययन करने के लिए अपेक्षित आदतें डालना।**

इन आदतों में हैं—लिखने-पढ़ने, हिसाब-किताब तथा नक़्शे समझ सकने, आदि की योग्यता।

पाठक को चाहिए कि तेज़ पढ़े और मन ही मन पढ़े, मुश्किल बातों को संक्षेप में नोट करता रहे और पुस्तक को एक विशेष उद्देश्य से उठाये। आख़िर ऐसी आदतें डालने की ज़रूरत ही क्या? ज़रूरत इसलिए है कि समय और शक्ति का अपव्यय किये बिना काम किया जा सके।

आदत का लाभ यह है कि दिमाग़ पर ज़ोर नहीं पड़ता। पशुओं को देखिये। उनकी कितनी ही क्रियाएं यन्त्रवत् चलती हैं। जन्मते ही मनुष्य के स्नायु-मंडल में यन्त्रवत् क्रियाएं नहीं होने लगीं। प्रौढ़ यन्त्रवत् बहुत अधिक काम कर सकते हैं और इसका एक ही कारण है उनका श्रमसाध्य कार्य। यदि अभ्यास ने मनुष्य को पूर्ण बनाने, और आदत ने स्नायु एवं मांसपेशियों के श्रम में बचत करने में मदद न दी होती तो उसकी दशा सचमुच बड़ी शोचनीय होती। डाक्टर माड्सले का कथन है: "अगर कई बार कर चुकने के बाद भी काम आसान न जान पड़े, अगर हर बार ऐसे काम के लिए चेतनशीलता और एकाग्रता की उतनी ही ज़रूरत हो तो यह स्पष्ट है कि जीवन भर की क्रियाशीलता एक-दो कामों तक ही सीमित रह जायेगी, और मनुष्य का विकास न हो सकेगा। ऐसा भी

होता है जब आदमी कपड़े पहनने-उतारने में ही सारा दिन बिता डाले। वह अपने शरीर की देख-रेख में ही सारी शक्ति लगा देगा, सारा ध्यान उधर ही केन्द्रित कर देगा। उसके लिए प्रति बार हाथ धोना या बटन लगाना उतना ही कठिन होता है जितना कि किसी बच्चे के लिए पहली बार। नतीजा यह होगा कि वह थक कर चूर हो जायेगा... हां, यंत्रवत् होने वाले गौण कार्यों में अपेक्षाकृत कम थकान आती है—इस तरीक़े से मनुष्य की इच्छा बिना, उसके शरीर के अंगमात्र काम करते हैं, लेकिन मन:स्थिति का चेतनाशील प्रयास शीघ्र ही उसे थका डालेगा।" ('मनोविज्ञान के सिद्धान्त', ले० विलियम जेम्स।)

हमें मालूम है कि निरक्षर प्रौढ़ के लिए हिज्जे और अर्द्ध-साक्षर व्यक्ति के लिए अपना नाम लिखना कितना कठिन है तथा इसका अभ्यास करने में उसे कितना समय लगाना और कितनी मेहनत करनी पड़ती है। यह स्पष्ट है कि वह अपना सारा ध्यान इन्हीं कार्यों में लगाता है और इसी लिए वह अपनी पढ़ाई की ओर एकाग्र नहीं हो पाता। उसकी सारी शक्ति टेक्नीक की पटुता प्राप्त करने में ही ख़र्च हो जाती है। इसी लिए यह आवश्यक है कि ऐसे व्यक्ति में अच्छी आदतें पड़ें और वह अपने आप काम करना सीखे।

घ. समय और शक्ति की बचत करने की दृष्टि से **क्या क्या सामग्री चुनना चाहिए** इसके बारे में हम पहले ही कह चुके हैं। जो कुछ हम पहले कह चुके हैं उसे थोड़े-से शब्दों में फिर कह देना आवश्यक है।

हमें वही विषय उठाने चाहिए जिनमें हमारी पहुंच हो सकती हो— सर्वसाधारण की भाषा में लिखी गई पुस्तकें पढ़िये न कि वे विशेष पुस्तकें जिनके लिए विशेष ट्रेनिंग की ज़रूरत हो। अगर हम विशेष पुस्तकें पढ़ना ही चाहें तो पहले हमें उसके लिए अपेक्षित ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। किसी ऐसी चीज़ को उठाना जो हमारे पल्ले नहीं पड़ सकती महज़ समय और शक्ति का अपव्यय करना है।

मानव-ज्ञान अपरिमित है। उसमें से हमें वही चुनना चाहिए जो हमारे लिए विशेष महत्व का हो, जो इसलिए जरूरी हो कि हम अपने चारों ओर की क्रियाशीलता को समझ सकें और उसे आवश्यकतानुसार बदल सकने की क्षमता प्राप्त कर सकें। श्रमिकों तथा किसानों के पास उतना समय या शक्ति नहीं है कि वे उन्हें अनावश्यक ज्ञान प्राप्त करने में लगा सकें।

बेशक, किसी विषय का अध्ययन करने में यथासम्भव सर्वोत्तम पुस्तकें ही चुननी चाहिए, ऐसी पुस्तकें जो उस विषय का पूरी तरह और ठीक ठीक प्रतिपादन करती हों। अन्ततः, पाठक को उस विषय से आरम्भ करना चाहिए जिसमें उसकी सब से ज्यादा दिलचस्पी हो। धीरे धीरे उसे अपने ज्ञान क्षेत्र का विकास करना चाहिए, उस विषय की सब से निकटवर्ती प्रमुख शाखाओं का अध्ययन करना चाहिए और नव प्राप्त जानकारी को मुख्य विचार के साथ संबद्ध करना चाहिए।

ङ. एक निश्चित पूर्वायोजित योजना के अनुसार काम करना चाहिए। अनुभवहीन व्यक्ति प्रायः कई काम एक साथ उठा लेता है: वह कोई पुस्तक उठाता है, फिर उसे छोड़ कर दूसरी ले लेता है, एक विषय से दूसरे विषय पर कूदता है और दक्षता किसी में भी नहीं प्राप्त कर पाता। अध्ययन की इस पद्धति से न तो कुछ पल्ले ही पड़ता है और न उससे समय या शक्ति की बचत ही होती है। मनुष्य को इस प्रकार विषयों के संबंध में कूदाफांदी नहीं करनी चाहिए। उसे चाहिए कि अपने आगे एक लक्ष्य बना ले, जो सामर्थ्य के बाहर न हो, निश्चित हो, निर्दिष्ट हो। मान लीजिये आपको पूंजीवाद का अध्ययन करना है। यह एक बड़ा व्यापक विषय है। इसमें दक्षता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि उसे कई भागों ने विभाजित किया जाय और फिर एक को, उदाहरणार्थ, आधुनिक पूंजीवाद को, चुन लिया जाय। उसके बाद उसे, इस विषय को, भी कई भागों में बांट लेना चाहिए, उदाहरणार्थ, इंगलैंड जैसे देश

के आधुनिक पूंजीवाद का अध्ययन शुरू कीजिये। आपको इस मार्ग का अनुसरण करते हुए पूंजीवाद के वर्तमान चरण में ब्रिटिश श्रमिक वर्ग की स्थिति का अध्ययन करना चाहिए। इसे अच्छी तरह से जान समझ लेने के बाद फिर आगे किसी दूसरे संबद्ध विषय को उठाना चाहिए। इस प्रकार विषय का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है और समय और शक्ति का भी अपव्यय नहीं होने पाता। लेकिन इस योजना को तैयार करने के लिए विषय का सामान्य ज्ञान तो होना ही चाहिए, थोड़ा भी हो तो भी कोई बात नहीं।

श्रम संघटन के बारे में प्रसिद्ध अमेरिकी इंजीनियर फ़्रेडरिक टेलर का कथन है कि हर कर्मचारी को, हर श्रमिक को, एक निश्चित कार्य सौंपा जाना चाहिए। वह लिखता है, "किसी व्यक्ति का मस्तिष्क और आचरण जितना ही प्रारम्भिक अवस्था में होगा, उसके लिए यह बात उतनी ही ज़रूरी है कि वह सरल और छोटे छोटे काम उठाये। स्कूल का कोई भी अध्यापक बच्चों को सामान्य रूप से यह नहीं बतायेगा कि अमुक पुस्तक या अमुक विषय पढ़ लो। यह प्रायः एक सार्वभौमिक नियम-सा बन गया है कि प्रत्येक दिन के लिए एक एक सबक़ निश्चित किया जाता है, जैसे किसी पृष्ठ पर लिखी कोई कविता या कहानी पढ़ना, और इस प्रकार पाठ्यपुस्तक क्रमबद्ध ढंग से पढ़ाई जाती है।"

टेलर का कथन पूर्णतः सत्य है। पहले-पहल अध्ययन करते समय मनुष्य को अपने लिए आसान और सरल काम निश्चित कर लेने चाहिए। तभी उन कामों को पूरा किया जा सकता है।

आरम्भकर्ता के लिए योजना तैयार करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि वह यह नहीं समझ सकता कि उसे कितना पढ़ना चाहिए अथवा विषय को उपविषयों में कैसे बांटना चाहिए। इस मामले में उसे उन साथियों की मदद लेनी चाहिए जिन्हें सामान्य विषय का अच्छा ज्ञान है अथवा उपलब्ध मैनुअलों और सहायक सामग्री का सहारा लेना चाहिए।

इस संबंध में वे लोग कहीं अच्छे हैं जो विशेष कोर्सों के विद्यार्थी हैं। ऐसे लोगों के बारे में हमारे किसान कहते हैं कि "वे दूसरों के मस्तिष्क के सहारे जीते हैं।" उनकी योजनाएं उनके शिक्षकों द्वारा तैयार की जाती हैं। बेशक, आरम्भ में ऐसा करना आसान है, अनुभवहीन व्यक्ति के लिए तो बेहतर भी है क्योंकि इसमें उसके ग़लत क़दम उठाने का कोई ख़तरा नहीं। लेकिन अगर उसे खुद ही अपनी कार्य-योजना तैयार करनी पड़े तो उसकी स्थिति ऐसे व्यक्ति की अपेक्षा अधिक अनुकूल होगी जो कोर्सों का विद्यार्थी है, क्योंकि वह व्यक्ति ऐसी कार्य-योजनाएं तैयार करना सीख लेगा जो उसके अपने व्यक्तित्व और ज्ञान के अधिक अनुरूप होंगी।

च. हमें एक और प्रश्न पर भी विचार करना चाहिए: अकेले अथवा मंडल में पढ़ते हुए **क्या किसी व्यक्ति का समय और शक्ति बच सकती है?** इस प्रश्न का उत्तर इस बात पर निर्भर है कि मंडल में अध्ययन की कैसी व्यवस्था है? यदि मंडल के सदस्य पूरी लगन से अध्ययन करते हैं, यदि वे नियमित रूप से बैठकों में भाग लेते हैं और उन उत्तरदायित्वों को पूरा करते हैं जिन्हें वे उठाते हैं और यदि मंडल की अध्यक्षता कोई अनुभवी शिक्षक करता है, तो अध्ययन में विद्यार्थी का बहुत-सा समय और शक्ति बच जाती है। सामूहिक कार्य से हमेशा समय बचता है। एतदर्थ यह ज़रूरी है कि श्रम-वितरण-प्रणाली आरम्भ की जाय और कार्यों का सम्यक् वितरण किया जाय। विचार-विनिमय से बहुत-सी बातें स्पष्ट हो जाती हैं और समझ में आती हैं। अधिक विचार-विनिमय लोगों में रुचि और नये नये विचार पैदा करता है। एक बात और। सामूहिक कार्य लोगों में उमंग पैदा करता है और वे और भी अधिक अध्ययन करने लगते हैं। इन्हीं कारणों से मंडलीय अध्ययन उपयोगी है। मगर कब? जब उपर्युक्त शर्तें पूरी होती हों। लेकिन अगर मंडल के सदस्य देर में आयें या बिल्कुल न आयें, अगर वे घर पर अध्ययन न करें और मंडल में होने वाले विचार-विनिमय को ही काफ़ी समझ लें यानी अगर वे

स्वतंत्र रूप से कोई गम्भीर कार्य न करें तो अच्छा यही होगा कि मंडल से इस्तीफ़ा दे दिया जाय और स्वतंत्र रूप से अध्ययन शुरू कर दिया जाय।

छ. आप चाहे स्वतंत्र रूप से पढ़ें-लिखें या मंडल में मिल-जुल कर, आपके लिए यह ज़रूरी है कि अगर आप अपना समय और अपनी शक्ति बचाना चाहते हैं और क़ायदे से काम करना चाहते हैं तो आपको चाहिए कि आप आवश्यक मैनुअलों और संबद्ध सहायता-सामग्री की मदद लें। आपके पास एक अच्छा राजनीतिक कोश, विश्वकोश, उन समस्त पुस्तकों की, जिन्हें आप पढ़ना चाहते हों तथा जो सर्वाधिक महत्व की हों, सूची और इस संबंध में वे समस्त निर्देशपत्र होने चाहिए जिनमें इस बात का उल्लेख हो कि उन पुस्तकों को पढ़ने के लिए आपको क्या क्या जानना ज़रूरी है, आदि-आदि। अध्ययन संबंधी कुछ ऐसे आयोजनों का होना भी ज़रूरी है जिनमें भिन्न भिन्न शिक्षा-स्तरों के लोगों के लिए ज्ञान के विभिन्न विषयों के निमित्त बनी बनाई योजनाएं दी गई हों। ज्ञान की सब से प्रमुख शाखाओं के लिए छोटी छोटी पुस्तकें होना तथा स्वाध्याय पर ऐसी ऐसी मैनुअलें होना भी आवश्यक है जिनमें इस बात के निर्देश हों कि अमुक अमुक विषय पर स्वतंत्र रूप से कैसे कार्य किया जाय। यह सारी सहायता-सामग्री, मैनुअलें और छोटी छोटी पुस्तकें स्वतंत्र रूप से शिक्षा प्राप्त करने के लिए बड़ी उपयोगी हैं।

स्वतंत्र रूप से पढ़ने वालों को निर्देश

('पोवीसिम ग्रामोत्नोस्त' पत्रिका, अंक ३, १६३४)

सामान्य नियम

१. यदि स्वाध्याय को सफल बनाना है तो कई आदतें डालनी ज़रूरी हैं: मन ही मन पढ़ना, बहुत धीरे धीरे न पढ़ना, पुस्तकें, अख़बार, मैनुअल, लाइब्रेरी-कटलाग कैसे इस्तेमाल किये जाते हैं यह जानना और

इस बात का ज्ञान होना कि किन किन चीज़ों के उद्धरण लेने चाहिए और किनकी टिप्पणियां। दूसरे शब्दों में, अगर स्वयं ढंग से पढ़ना है तो पाठक को **स्वाध्याय की न्यूनतम टेक्निकल विधियों से परिचित होना चाहिए।**

२. सफल अध्ययन के लिए कुछ नियमों का पालन करना बड़ा ज़रूरी है।

पढ़ने का सर्वोत्तम समय वह है जब पढ़ने वाला अधिक थका न हो, यानी जब उसका दिमाग़ 'ताज़ा' हो। अतएव **अध्ययन का सब से अच्छा समय है प्रातःकाल अथवा विश्राम कर चुकने का समय।**

मनुष्य को **थोड़ी रोशनी वाले, अंधियारे और ज़रूरत से ज्यादा गर्म कमरे में नहीं पढ़ना चाहिए** अन्यथा शीघ्र ही थकान आ घेरेगी। जब आस-पास बातें हो रही हों, जब पाठक का ध्यान बराबर बट रहा हो उस समय पढ़ना-लिखना मुश्किल हो जाता है।

पढ़ना तभी सब से उपयोगी है जब पाठक के पास आवश्यक मैनुअलें हों, विश्वकोश आदि हों।

यही कारण है कि **किसी वाचनालय अथवा पुस्तकालय में पढ़ना सर्वोत्तम है।**

३. **आपको क्या पढ़ना चाहिए** इस संबंध में आपको पहले से ही निश्चय कर लेना चाहिए। कभी कभी मनुष्य अध्ययन करना चाहता है मगर क्या पढ़ा जाय यह वह नहीं जानता। सामूहिक फ़ार्म या फ़ैक्ट्री में काम ठीक ठीक चलता है क्योंकि वहां योजनानुसार काम होता है। इसी प्रकार अगर योजना हो, अगर आप जो भी पुस्तक आप के हाथ में पड़ जाय उसी को ले कर न बैठ जायं, यानी इतिहास से कूद कर साहित्य पर या साहित्य से कूद कर भौतिक विज्ञान पर न आयं-जायं तो स्वाध्याय से लाभ हो सकता है। कोई पार्टी के बारे में जानना चाहता है, कोई सामूहिक फ़ार्मों के बारे में, कोई टेक्नोलाजी के बारे में, कोई शिशु-पालन के बारे में, इत्यादि। कुछ लोग स्कूल का सप्तवर्षीय

कोर्स पूरा करना चाहते हैं तो कुछ माध्यमिक शिक्षा का और कुछ टेक्निकल स्कूल का।

४. आप क्या अध्ययन करना चाहते हैं इस संबंध में निश्चय भर कर लेना काफ़ी नहीं है। **अध्ययन संबंधी योजना** तैयार करना बहुत ज़रूरी है। और यही सब से कठिन चीज़ है। आरम्भकर्ता को न तो यही पता रहता है कि उसे कितना ज्ञान प्राप्त करना है और न यही कि यह ज्ञान उसे **किस ढंग से** प्राप्त करना है; अर्थात् वह नहीं जानता कि उसे किस क्रम से अध्ययन करना चाहिए, पुस्तकें पढ़नी चाहिए, आदि आदि।

इस सिलसिले में अभिस्तावित साहित्य, स्वाध्याय मैनुअलें, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तकें बड़ी सहायक सिद्ध हो सकती हैं। लेकिन **सब से अच्छा तो यह होगा कि पहले वह किसी विशेषज्ञ से बातचीत करे,** उससे सलाह करे। अध्यापकों, पुस्तकाध्यक्षों अथवा उन परामर्शदाताओं से भी सलाह-मशविरा किया जा सकता है जो पुस्तकालयों द्वारा उन लोगों की सहायता के लिए नियुक्त किये जाते हैं जो स्वतंत्र रूप से अध्ययन करते हैं। कृषिविदों, इंजीनियरों, चिकित्सकों आदि से भी अच्छी सलाह प्राप्त की जा सकती है।

अध्ययन आरम्भ करने के पहले ली जाने वाली सलाह बड़ी ज़रूरी है। इसका निश्चयात्मक प्रभाव आगे के अध्ययन पर प्रायः पड़ता है।

५. अध्ययन कैसे किया जाय?

(क) मनुष्य को जल्दबाज़ी नहीं करनी चाहिए अथवा जैसा कि लोग कहा करते हैं उसे "धीरे धीरे जल्दी" करनी चाहिए। स्वाध्याय के लिए जल्दबाज़ी बड़ी हानिकर है।

(ख) मनुष्य को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह **सारे अस्पष्ट स्थलों को स्पष्ट कर लें।** एतदर्थ उसे विश्वकोशों का उपयोग करना चाहिए, जानकारों से सलाह लेनी चाहिए या परामर्शदाताओं से मिलना चाहिए।

(ग) **आपने जो कुछ पढ़ा है उसे आप फिर से पढ़ लें**, विशेष रूप से पहले पढ़ी हुई चीज़ ज़रूर दुहरा लें।

(घ) **लम्बी अन्तरावधियां दे कर नहीं पढ़ना चाहिए**, विशेष रूप से आरम्भ में, यानी उस समय जब पढ़ी गई चीज़ दिमाग़ में न जमी हो। पढ़ना नियमित रूप से चाहिए।

(ङ) **उद्धरण याद करने में सहायक होते हैं** – यह आवश्यक है कि अपनी कापी में पढ़ी गई चीज़ों के सर्वाधिक महत्वपूर्ण भाग, मुश्किल शब्दों और वाक्-व्यवहारों के स्पष्टीकरण, नगरों और लोगों के नाम तथा आंकड़े लिख लिये जायं और उद्धरणों को बार बार पढ़ा जाय। लिखावट साफ़ हो ताकि उसे समझने में समय न नष्ट हो।

६. यदि मुमकिन हो तो पत्र-व्यवहार-पाठ्यक्रम के लिए उपयोगी वे पाठ्यपुस्तकें इस्तेमाल में लाई जायं जिनमें इच्छित विषय में दक्षता प्राप्त करने के लिए **आवश्यक सलाह-मशविरा** तो रहता ही है साथ ही ऐसी भी अनेक बातें रहती हैं जिनसे पाठक को काफ़ी सहायता मिल सकती है।

स्वाध्याय के विषय में

('तरुण कम्यूनिस्ट' पत्रिका, अंक ४, १६३४)

१६१६ में मैंने स्वाध्याय विषय पर पहला लेख 'तरुण कम्यूनिस्ट' के लिए लिखा था। उसमें स्पष्ट रूप से बताया गया था कि "अपने को सर्वोत्तम ढंग से शिक्षित करने का तरीक़ा है सामूहिक कार्यों में भाग लेना न कि कक्षाओं में बैठ कर काम करना"। यह ठीक भी है। परन्तु यह लेख १६१६ में उस समय लिखा गया था जब गृह-युद्ध ज़ोरों पर था, जब हम सोवियत सत्ता के लिए लड़ रहे थे, जब कि देश अधिकतर निरक्षर और आर्थिक रूप से अस्तव्यस्त था, जब पाठ्यपुस्तकों के लिए काफ़ी काग़ज़ न मिलता था और अख़बारों के वितरण तक को परिमित करना पड़ता था, जब स्कूलों की संख्या बहुत थोड़ी थी। और इसी लिए

उस समय मेरे लेख का मुख्य विषय था शिक्षा के क्षेत्र में पारस्परिक सहायता का प्रश्न।

उस ज़माने में लोगों में ज्ञान प्राप्त करने की उत्कंठा थी, किन्तु अवसरों की कमी।

तब से अब तक देश की काया-पलट हो चुकी है—अब हमारे यहां सार्वभौम अनिवार्य शिक्षा है, बहुत बड़ी संख्या में निकलने वाले अख़बार हैं, बड़े बड़े संस्करण वाली पाठ्यपुस्तकें हैं, सभी तरह के पाठ्यक्रम हैं और रेडियो का जाल-सा बिछा हुआ है। मुख्यतया देश साक्षर है, लोग अधिक चेतनाशील हैं। परन्तु पारस्परिक सहायता के संबंध में मैंने जो बात १६१६ में कही थी वह आज भी उतनी ही उपयोगी है। देश मुख्यतया साक्षर है। फिर सांस्कृतिक तक़ाज़े भी तो काफ़ी बढ़ गये हैं और यह भी ज़रूरी है कि निरक्षरता के विरुद्ध चलने वाले संघर्ष में सफलता मिले क्योंकि अब भी गोर्की प्रदेश के सेम्योनोव्स्की जैसे ज़िले मिलते हैं जहां शताब्दियों से चम्मच बनाने की दस्तकारी विकसित होती आई है और जहां बच्चों का अधिक से अधिक शोषण हुआ है। वहां अब भी बहुत-से निरक्षर हैं। उन राष्ट्रीय क्षेत्रों में भी शत प्रतिशत साक्षरता नहीं है जहां अभी हाल ही तक लोग मुख्यतया बंजारों जैसा जीवन व्यतीत करते थे, जहां गांव अनन्त स्टेपी में खो जाते थे, और जहां राष्ट्रभाषाओं में पुस्तकें छपाने की अब भी बड़ी ख़राब व्यवस्था है। अर्द्ध-साक्षरता के बारे में भी यही कहा जा सकता है। तरुण कम्यूनिस्ट लीग द्वारा चलाये गये साक्षरता आन्दोलन ने प्रारम्भिक शिक्षा के क्षेत्र में बड़ी सहायता की और देश से निरक्षरता भगाने में बड़ा योग दिया। मगर सारा काम कुछ इतनी जल्दबाज़ी में किया गया कि शिक्षा की क़िस्म पर बहुत थोड़ा ध्यान दिया जा सका और साक्षरता की धारणा संकुचित हो कर रह गई। हमें शिक्षा के प्रारम्भिक रूपों में अपनी रुचि कम नहीं करनी चाहिए। हमें याद रखना चाहिए कि अब भी हमारे देश में स्वयं

युवकों में भी, बहुत-से अर्द्धसाक्षर हैं। शिक्षा के प्रत्येक चरण में सामूहिक हित तथा पारस्परिक सहायता अपरिहार्य है। जो कुछ मैंने १९१९ में कहा था वह आज भी उतना ही सत्य है।

परन्तु इस लेख में मैं **एक दूसरे प्रश्न, अर्थात् स्वाध्याय के प्रश्न, इस प्रश्न की ओर, कि स्वतः ज्ञान कैसे प्राप्त करना चाहिए, ध्यान आकृष्ट करना** चाहूंगी। सोवियत सरकार के आरम्भिक वर्षों में हमारे स्कूलों ने अध्ययन की अपेक्षा बच्चों के सामान्य विकास पर अधिक ध्यान दिया था। उस समय कुल मिला कर शिक्षा की व्यवस्था बहुत बुरी थी। अध्यापन के कोई अच्छे कैडर न थे। हमें समस्त शिक्षण-प्रणाली का संघटन करना पड़ा था और इस कार्य ने हमें विशेष रूप से व्यस्त रखा था। पिछले कुछ वर्षों में हमने अपना ध्यान पढ़ाई-लिखाई, दूसरों में ज्ञान का प्रसार करने, व्याख्यान देने, अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों को दिये गये, और पाठ्यपुस्तकों में सन्निहित, ज्ञान में दक्षता प्राप्त करने की ओर दिया था। शिक्षा हमारे लिए सब से महत्वपूर्ण विषय है। 'ज्ञान ही शक्ति है' शीर्षक अपने पैम्फ़्लेट में विल्हेल्म लीब्क्नेख़्त ने, जो मार्क्स और एंगेल्स का निकट का सहयोगी था, लिखा था कि ग़ुलामों के मालिक, ज़मींदार और पूंजीपति ज्ञान के सहारे अपने स्वार्थों को प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं, इसे अपने विशेषाधिकार का प्रश्न बना रहे हैं और जनता को ज्ञान प्राप्त करने से रोकने के लिए यथासम्भव सभी कुछ कर रहे हैं।

लेनिन ने यही बात १८९५ में 'रबोचेये देलो' नामक अवैध अख़बार के लिए लिखी थी। पुलिस ने छापा मार कर इस लेख की हस्तलिपि ज़ब्त करके लेनिन को गिरफ़्तार कर लिया था। यह लेख सोवियत शासन की स्थापना के बाद पुलिस संग्रहालय में मिला और पहले-पहल लेनिन की मृत्यु के बाद १९२४ में प्रकाशित किया गया। लेख का शीर्षक था 'हमारे मंत्री क्या सोच रहे हैं?' लेख के अन्त में लिखा था: "श्रमिको, तुम ख़ुद देखो कि हमारे मंत्री इस बात से कितने

भयभीत हैं कि तुम्हें ज्ञान प्राप्त होगा! तुम हर शख्स को दिखा दो कि कोई भी शक्ति श्रमिकों को चेतनाशील बनने से नहीं रोक सकती। ज्ञान के बिना श्रमिक असहाय से रहते हैं परन्तु ज्ञान का आधार लेकर वे शक्तिशाली बनते हैं।"* इस हस्तलेख के ज़ब्त हो जाने के बावजूद बाहर काम करने वाले साथियों ने इस विचार को अपने प्रचारात्मक कार्यों का अंग बनाने का ख़्याल नहीं छोड़ा। १८९६ में, अपनी गिरफ़्तारी के छः महीने बाद, इल्यीच ने मई दिवस पत्रक लिख कर इस प्रबन्ध का विस्तार सहित उल्लेख किया था और इसे चोरी चोरी जेल के बाहर भी भेज दिया था। पत्रक में कहा गया था: "हम श्रमिकों को अंधेरे में रखा जाता है, ज्ञान के प्रकाश से वंचित, क्योंकि वे नहीं चाहते कि हम यह सीखें कि अच्छी दशाओं के लिए कैसे लड़ा जाता है।" तब से, संघर्ष के लिए ज्ञान प्राप्त करने की आवश्यकता पार्टी के कार्यकर्ताओं की समस्त प्रचारात्मक और आन्दोलनकारी क्रियाशीलता का सिद्धान्त बन गई है। और अन्यथा होता भी क्या? मार्क्स और एंगेल्स के कथन, जिन्होंने श्रमिक वर्ग को उनके संघर्षों के लिए शस्त्र दिया है, न तो दैविक संदेश ही हैं और न आविष्कार ही। वे **वैज्ञानिक** ग्रन्थ हैं जिनमें इस बात पर प्रकाश डाला गया है कि समाज किस दिशा में बढ़ रहा है और विजय कैसे प्राप्त की जा सकती है।

युवक लीग के समक्ष क्या क्या कार्य हैं इस संबंध में भाषण करते हुए, १९२० में, लेनिन ने कहा था: "और अगर आप यह पूछें कि मार्क्स के उपदेश लाखों और करोड़ों क्रान्तिकारियों के दिलों पर क्यों छा जाते हैं तो आपको बस एक जवाब मिलेगा—क्योंकि मार्क्स ने पूंजीवाद के अधीन प्राप्त मानव-ज्ञान के ठोस आधार पर क़दम रखा था। मानव समाज के विकास के सिद्धान्तों का अध्ययन कर चुकने के बाद मार्क्स इस निष्कर्ष

*व्ला० इ० लेनिन, ग्रन्थावली, चतुर्थ रूसी संस्करण, खंड २, पृष्ठ ७६।

पर पहुंचा था कि पूंजीवाद का विकास अनिवार्य है जो साम्यवाद की ओर बढ़ रहा है। और ख़ास बात यह है कि यह बात उसने इस पूंजीवादी समाज के सब से शुद्ध, सब से विस्तृत और सब से गम्भीर अध्ययन के आधार पर, और उन सब बातों को आत्मसात् करने के बाद, कही थी जिन्हें पहले के विज्ञान ने जन्म दिया था।"*

अवसरवादी लोग बराबर यही सिद्ध करने की कोशिश करते रहे कि मार्क्स और एंगेल्स के कथनों का कोई भी वैज्ञानिक आधार नहीं है।

चालीस वर्ष पहले, १८९५ में, ब्रेसलाऊ (जर्मनी) में एक पार्टी कांग्रेस में कुख्यात अवसरवादी डेविड ने कहा था कि श्रमिक वर्ग की पार्टी (उस समय उसे सामाजिक-जनवादी पार्टी कहते थे) एक ऐसी पार्टी है जिसमें संकल्प है, ज्ञान नहीं। क्लारा ज़ेतकिन ने इस बात का सख़्त विरोध किया था। उसने कहा था: "मेरा विचार है कि सामाजिक-जनवादी पार्टी सोद्देश्य संकल्प वाली पार्टी है, इसलिए कि वह सोद्देश्य ज्ञान वाली पार्टी है।"

१९०८ की पार्टी कांग्रेस में इस बात पर फिर विचार-विमर्श हुआ। बूर्जवा समाचारपत्रों के लिए अवसरवादी मायेरब्रेहर ने एक लेख लिखा था जिसमें उसने कहा था: "उत्पादन के समाजवादी तरीक़े की कार्यान्विति ऐतिहासिक अनुभव का परिणाम न होगी; यह एक पूर्णतः 'संयोजित विचार' है, यह मामला है निष्ठा और आशा का।" इस धारणा की आलोचना करते हुए क्लारा ज़ेतकिन ने क्रोध में आकर कहा था—

"यह सिवा इस दृष्टिकोण के निषेध के और कुछ भी नहीं है कि भविष्य का तथाकथित समाजवादी राज्य एक ऐसी चीज़ है जो ऐतिहासिक दृष्टि से अपरिहार्य और समाज के प्राकृतिक विकास का परिणाम है। और भी आसान शब्दों में हम कह सकते हैं कि यह समाजवाद को कल्पनावादी-समाजवादियों के सिद्धान्तों तक पीछे ढकेलना ही नहीं बल्कि

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ ४७८।

सीधे सीधे उसे पुरोहिती व्यवस्था में परिवर्तित करना है। मैं समझती हूं कि यह बड़ा ज़रूरी है कि पूरी दृढ़ता के साथ घोषित किया जाय कि जो लोग मार्क्सवाद के सैद्धान्तिक आधारों के बारे में इतने कोरे और चकराये हुए हैं वे सर्वहारा वर्ग को समाजवाद का ज्ञान देने तथा उसके शिक्षक और नेता बनने के लिए बिल्कुल अयोग्य हैं। (**जोर की तालियां।**) जो व्यक्ति भी इन विचारों से सहमत है, ऐसे विचारों से जो उस स्पष्ट, गहरे, वैज्ञानिक ज्ञान के लिए एक आघात हैं जिसे सामाजिक-जनवाद जनता में लाने और अपनी व्यावहारिक क्रियाशीलता का आधार बनाने का प्रयास कर रहा है उस व्यक्ति को चाहिए कि वह समाजवादी सांसारिक दृष्टिकोण में संशोधन करने की हिम्मत करने से पहले किसी कोने में चुपचाप और विनम्रता के साथ बैठ कर समाजवादी सिद्धान्त का अध्ययन और मनन करे।" (**देर तक तालियां।**)

अब जर्मनी के अवसरवादी फ़ासिस्टवाद के हामी बन गये हैं जो वैज्ञानिक समाजवाद से किसी दूसरी चीज़ की अपेक्षा कहीं अधिक घृणा करता है। फ़ासिस्टवादी मार्क्सवादी साहित्य को जलाते हैं परन्तु मार्क्सवाद के संस्थापकों द्वारा प्रकाश में लाई गई ऐतिहासिक प्रक्रिया को रोकना, उस प्रक्रिया को रोकना, जिसका अन्त निश्चय ही समाजवाद की विश्वव्यापी विजय में होगा, उनकी ताक़त के बाहर है।

हमारी पार्टी का इतिहास बताता है कि पार्टी ने मार्क्सवाद के सिद्धान्तों के लिए, उसकी विकृति के विरुद्ध, संघर्ष किये हैं।

उदाहरणार्थ, हम लेनिन का पहला बड़ा ग्रन्थ ''जनता के मित्र' क्या हैं और वे सामाजिक-जनवादियों के विरुद्ध कैसे लड़ते हैं?' (खंड १) ले सकते हैं। यह ग्रन्थ मार्क्सवाद के वैज्ञानिक मूल्य के संबंध में नरोदनिकों की भ्रान्तियों से मोर्चा लेने के लिए १८९४ में लिखा गया था।

१८९५ में लेनिन ने एंगेल्स की मृत्यु के अवसर पर 'फ़्रेडरिक एंगेल्स' शीर्षक एक लेख श्रमिकों के एक अवैध पत्र के लिए लिखा था

जिसमें उन्होंने वैज्ञानिक मार्क्सवाद के बहुत अधिक महत्व पर ज़ोर दिया था।

सिद्धान्त का महत्व न्यूनतम करने के कुछ प्रयास रूसी श्रम आन्दोलन में भी किये गये थे। १८९०-१९०० के अन्त में 'रबोचया मीस्ल' नामक एक अवैध अख़बार ने श्रम आन्दोलन की क्रियाशीलता को छोटी छोटी मांगों के लिए होने वाले संघर्ष के रूप में चित्रित करने की कोशिश की थी। इस अख़बार ने श्रमिकों का नाम ले ले कर यह भी कहा था: "हमें किन्हीं मार्क्सों अथवा एंगेल्सों की ज़रूरत नहीं। हम श्रमिक अच्छी तरह जानते हैं कि हमें क्या करना है।"

शताब्दी के मोड़ लेते ही रूसी सामाजिक-जनवाद में एक अवसरवादी प्रवृत्ति, तथाकथित 'अर्थवाद', का जन्म हुआ। 'अर्थवादियों' का कहना था कि श्रमिकों को सिद्धान्तों के चक्कर में अथवा राजनीतिक संघर्षों में नहीं पड़ना चाहिए। उन्हें तो अपने को सिर्फ़ आर्थिक संघर्ष तक, जीवन के गुज़र-बसर के लिए ज़रूरी और अधिक अच्छी दशाओं के संघर्ष तक ही सीमित रखना चाहिए।

लेनिनवादियों ने इस प्रवृत्ति का ज़ोरदार मुक़ाबला किया।

बाद में, १९०५ की क्रान्ति के बाद की प्रतिक्रिया और वैचारिक अस्थिरता के युग में बोल्शेवीकों में एक ऐसी प्रवृत्ति दिखाई पड़ने लगी जिसने मार्क्सवाद के वैज्ञानिक आधार—द्वंद्वात्मक भौतिकवाद—की वैधता को ललकारा और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि प्राकृतिक विज्ञान के क्षेत्र में होने वाले आधुनिकतम आविष्कारों ने दुनिया की घटनाओं के भौतिक निर्वचन का खंडन किया है और इसी लिए एक नये सिद्धान्त को जन्म देना 'ज़रूरी' है। इल्यीच ने उन्हें एक वैज्ञानिक संघर्ष में घसीटा और यह दिखा दिया कि उनके निष्कर्ष बिल्कुल ग़लत थे और उनका कोई वैज्ञानिक आधार भी न था। यह बात १९०८-१९०९ की है। जिस पुस्तक में लेनिन ने उपर्युक्त बातें कही थीं उसका नाम है 'मैटीरियलिज़्म

ऐंड एम्पीरिग्रोक्रिटिसिज़्म' (खंड १४)। उन्होंने मार्क्सवादी प्रचार पर विशेष ज़ोर दिया था। वे चाहते थे कि पार्टी और तरुण कम्यूनिस्ट लीग के सभी सदस्य मार्क्सवाद की मूल धारणाओं का अध्ययन करें।

युवक लीगों के कामों के संबंध में लेनिन ने जो भाषण दिया था उसमें यह बात अच्छी तरह समझाई गई थी कि युवकों को मार्क्सवाद का अध्ययन कैसे करना चाहिए। वे क्या और कैसे अध्ययन करें, उनके अध्ययन का प्रयोजन क्या हो, तदर्थ आवश्यक सामग्री का चुनाव कैसे किया जाय, और अगर कोई चेतनाशील कम्यूनिस्ट बनना चाहता है तो उसके लिए अध्ययन कितना अपरिहार्य है, आदि बातों पर उन्होंने अपने विचार प्रकट किये थे। उन्होंने समझाया था कि अध्ययन के लिए चुनी गई सामग्री का कैसे उपयोग किया जाय और किस प्रकार कार्य किया जाय कि "कम्यूनिज़्म महज़ तोतारटन्त वाली चीज़ न रह जाय बल्कि एक ऐसी चीज़ बने जिसपर आपने ख़ुद विचार किया हो"।

उन्होंने कहा था: "हमें हर विद्यार्थी के दिमाग़ को मूलभूत तथ्यों का ज्ञान करा कर विकसित करना और उसे पूर्ण बनाना है। उसने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है अगर वह उसके मस्तिष्क में न जमा तो कम्यूनिज़्म शून्य-सी चीज़, महज़ एक साइनबोर्ड बन कर रह जायेगी और कम्यूनिस्ट घमण्डी हो जायेगा। आपको यह ज्ञान न सिर्फ़ ऐसे ही आत्मसात् करना है अपितु इस आलोचनात्मक ढंग से करना है कि आपके दिमाग़ में बेकार का कूड़ा-करकट ही न भरे वरन् वह उन तथ्यों से समृद्ध भी हो जो आधुनिक शिक्षित व्यक्ति के लिए अपरिहार्य हैं। अगर कोई कम्यूनिस्ट पूर्वनिश्चित निष्कर्षों का ज्ञान प्राप्त कर लेने के कारण, परन्तु साथ ही बिना गंभीर और कठोर मेहनत किये हुए, बिना उन तथ्यों को समझे हुए जिनकी उसे आलोचनात्मक दृष्टि से जांच करनी थी, अपने कम्यूनिज़्म की शेखी बघारता है तो ऐसा व्यक्ति एक शोचनीय कम्यूनिस्ट साबित होगा। ऐसी अल्पज्ञता का परिणाम बड़ा घातक होगा। अगर मैं यह जानता हूं

कि मुझे बहुत कम ज्ञान है तो मैं और अधिक सीखने की कोशिश करूंगा। परन्तु यदि कोई व्यक्ति यह कहता है कि वह कम्यूनिस्ट है और उसे कोई भी बात पूरी पूरी जानने की ज़रूरत नहीं तो वह कम्यूनिस्ट नहीं हो सकता।"*

यह एक स्वतः स्पष्ट बात है कि अगर आप कोई सामग्री चुनते हैं और उसके सब से महत्वपूर्ण अंशों को छांटते हैं तो आपको उनपर मनन करके आवश्यक निष्कर्ष स्वयं निकालने चाहिए न कि उन्हें यन्त्रवत् आत्मसात् ही कर लेना चाहिए। दूसरे शब्दों में यह ज़रूरी है कि आप स्वतंत्र रूप से काम करने की आदत डालें और यह कैसे किया जाय इसके बारे में कुछ सोच-विचार करें।

उक्त भाषण में लेनिन ने जिस दूसरे प्रश्न पर विचार प्रकट किये थे वह था सिद्धान्त को व्यवहार के साथ संबद्ध करना। उन्होंने कहा था: "पुराने पूंजीवादी समाज ने हमारे लिए जो अनेकानेक दुर्गुण और संकट छोड़े हैं उनमें से एक सब से बड़ा संकट है पुस्तकों का व्यावहारिक जीवन से पूर्ण संबंध-विच्छेद; हमारे पास ऐसी पुस्तकें थीं जिनमें यथासंभव हर चीज़ अच्छी से अच्छी समझाई गई थी, फिर भी अधिकांशतः ये पुस्तकें उन अनेकानेक घृणित एवं आडम्बरपूर्ण झूठों से भरी हुई थीं जिनके आधार पर पूंजीवादी समाज का मनगढ़ंत चित्रण किया गया था।

"यही कारण है कि कम्यूनिज़्म के बारे में पुस्तकों में जो कुछ लिखा है उसी को घोट डालना एक ग़लत-सी चीज़ होगी। अब हम अपने भाषणों और लेखों में वही बातें नहीं दुहराते जो पहले कम्यूनिज़्म के बारे में कही गई थीं क्योंकि हमारे भाषणों और लेखों का संबंध हमारे दैनिक जीवन से है। बिना काम के, बिना संघर्ष के कम्यूनिस्ट पैम्फ़लेटों और पुस्तकों को पढ़ कर कम्यूनिज़्म के बारे में जो ज्ञान होगा वह बिल्कुल बेकार होगा क्योंकि इसका परिणाम यह होगा कि हम व्यवहार को सिद्धान्त से अलग कर देंगे। यह एक पुरानी चीज़ थी और पुराने बूर्जवा समाज की एक

*व्ला० इ० लेनिन, चुने हुए ग्रन्थ, खंड २, भाग २, पृष्ठ ४७६।

घृणित विशेषता।"* सिद्धान्त को व्यवहार के साथ, सार्वजनिक लाभ के लिए मेहनत के हर क्षेत्र में रोज़मर्रा के कामों के साथ समन्वित करने की कला सीखने के लिए मनुष्य को अधिक और स्वतः अध्ययन करना चाहिए। व्यावहारिक कामों में ऐसे बहुत-से सवाल उठते हैं जो तभी हल किये जा सकते हैं जब कि मनुष्य को काफ़ी ज्ञान हो। मनुष्य को जानना चाहिए कि यह कार्य स्वतंत्र रूप से किस प्रकार किया जाय। ऐसा करने के लिए मनुष्य को कुछ निश्चित और कम से कम ज्ञान ज़रूर होना चाहिए। साथ ही उसे स्वतः अध्ययन करने की आदत भी डालनी चाहिए।

हमने अनेकानेक सफलताएं प्राप्त की हैं। हमारे देश की काया पलट चुकी है। लोग संघटित और जागरूक बन चुके हैं। लेकिन और अधिक प्रगति के लिए और अधिक ज्ञान की ज़रूरत है। इसके अतिरिक्त, श्रमिक जनता को ज्ञान प्राप्त करने की ज़रूरत है, ऐसा-वैसा ज्ञान नहीं, परन्तु वह ज्ञान जो सम्पूर्णता का निर्माण करता है, जो हमारे व्यावहारिक कामों को और भी ऊंचे स्तर तक बढ़ाने के लिए ज़रूरी है।

हमें ज्ञान की ज़रूरत है दूसरे देशों की श्रमिक जनता पर अपने प्रभाव को मज़बूत बनाने के लिए, अपने देश को अत्यधिक समृद्ध, सुसंघटित और सशक्त बनाने के लिए, और इसलिए कि हमारी सफलताओं में सभी को और भी अधिक विश्वास हो।

हमें ज्ञान की ज़रूरत है इसलिए कि हम अपनी समाजवादी मातृभूमि की रक्षा कर सकें, इसलिए कि हम दुनिया की समाजवादी क्रान्ति के लिए होने वाले संघर्ष को आगे बढ़ा सकें।

और पहले से कहीं अधिक अब ...

---

* वही, पृष्ठ ४७६।